

“स्त्री विमर्श के संदर्भ में महादेवी का गद्य साहित्य”

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी० एच० डी० उपाधि
के लिए प्रस्तुत

निर्देशक

डॉ० आशुतोष कुमार

रीडर, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

शोध-सार

शोधार्थी

ममता सिंह

हिन्दी विभाग

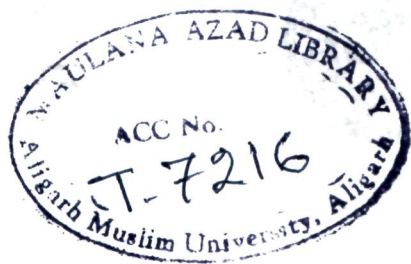
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

2007

महाराष्ट्र राज्य सरकार, मुंबई

विश्व हिंदू परिषद, मुंबई



05 MAR 2011

महाराष्ट्र सरकार

विश्व हिंदू परिषद

मुंबई

२००८

शोध-सार

संस्कृत-
शोध-सार

शोध-सार

स्त्री-विमर्श के सन्दर्भ में महादेवी वर्मा के साहित्य पर विचार पिछले दो दशकों में शुरू हुआ है। उसके पहले तक महादेवी वर्मा को विरह और पीड़ा की छायावादी कवयित्री के रूप में ही देखा जाता रहा। आज भी महादेवी की इस परंपरागत छवि को अस्वीकार करने वाले कम ही हैं। महादेवी की इसी बनी बनाई छवि ने आलोचकों और पाठकों का ध्यान उनके महान गद्य-सृजन की ओर न जाने दिया। इस ओर हिंदी जगत का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय डॉ० मैनेजर पाण्डेय को है। सबसे पहले उन्होंने ही 'शृंखला की कड़ियाँ' में निहित प्रखर स्त्री-चेतना को उद्घाटित किया। उनका यह महत्त्वपूर्ण निबंध उनके आलोचनात्मक लेखों के एक महत्त्वपूर्ण चयन 'अनभै साँचा' में संकलित है।

डॉ० मैनेजर पाण्डेय ने इस निबंध में उदाहरण, तर्क और विश्लेषण के जरिये अकाट्य रूप से सिद्ध किया है कि महादेवी की स्त्री-चेतना उस चेतना के प्रायः समकक्ष है, जिसे आजकल स्त्री-विमर्श की संज्ञा दी जाती है। डॉ० पाण्डेय के इस निबंध ने न केवल महादेवी की एक नयी छवि प्रस्तुत की, बल्कि उनकी रहस्यवादी समझी गयी कविताओं के पुनर्पाठ के भी दरवाजे खोले। इस शोधकार्य के पीछे तात्कालिक प्रेरणा यही थी। महादेवी वर्मा के संपूर्ण गद्य-साहित्य का गंभीर अनुशीलन स्त्री-विमर्श के संदर्भ में करना अब समकालीन शोध और आलोचना का आवश्यक कर्तव्य हो चला है। प्रस्तुत शोधकार्य इसी दिशा में एक छोटी-सी शुरुआत मात्र है।

इस शोधकार्य को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। ये चार अध्याय इस प्रकार हैं। पहला-स्त्री-विमर्श और हिंदी साहित्य। दूसरा महादेवी वर्मा की

साहित्य दृष्टि और स्त्री-विमर्श। तीसरा महादेवी वर्मा के निबंधों में स्त्री-प्रश्न। चौथा महादेवी वर्मा के संस्मरणों और रेखाचित्रों में स्त्री की छवि। इन्हीं अध्यायों में पाये गये निष्कर्षों को संयोजित करना इस 'उपसंहार' का उद्देश्य है।

महादेवी के संपूर्ण गद्य-साहित्य से गुज़रकर यह बात प्रामाणिक रूप से कही जा सकती है कि स्त्री की मुक्ति की चिंता ही गद्यकार महादेवी वर्मा की केन्द्रीय चिंता है। उनका समस्त गद्य लेखन न केवल अपनी अंतर्वस्तु में बल्कि अपनी शैली में भी स्त्री के द्वारा स्त्री की मुक्ति के लिए लिखा गया साहित्य है। महादेवी की गद्य रचनाओं की अंतर्वस्तु सर्वत्र एक ही है। स्त्री शोषण की बहु-आयामी प्रक्रियाओं को उद्घाटित करना जो जितनी सूक्ष्म हैं उतनी ही जटिल हैं। इसी के अनुरूप महादेवी एक ऐसी सहज और स्वच्छ भाषा-शैली ईजाद करती हैं, जहाँ भाषा की उस छल-कपट और बनावट-बुनावट की कोई गुंजाइश नहीं है जो पुरुषवादी लेखन की पहचान है।

पहला अध्याय विषय की पृष्ठभूमि की खोज करता है। इसमें एक ओर तो अंतर्राष्ट्रीय स्त्री-आंदोलन के विकास पर नज़र डाली गयी है तो दूसरी ओर हिंदी साहित्य में स्त्री की छवि, स्त्री-कल्याण की भावना और स्त्रीवादी चेतना के विकास-क्रम को पहचानने का प्रयास किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि स्त्री की मुक्ति की आकांक्षा गार्गी-मैत्रेयी के युग से मीरा और महादेवी तक भारतीय साहित्य के इतिहास में एक अंतर्वर्ती धारा के रूप में मौजूद है। फिर भी स्त्रीवादी चेतना के विकास अंतर्राष्ट्रीय स्त्री आंदोलन की ऐतिहासिक भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। इस पहले अध्याय में स्त्री-चेतना और हिंदी साहित्य में स्त्री-छवि के विकास के बीच के संबंध की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया गया है।

दूसरे अध्याय में स्त्री विमर्श के संदर्भ में महादेवी वर्मा की साहित्य-दृष्टि को समझने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि महादेवी की स्त्री-दृष्टि ने ही उनकी साहित्यिक दृष्टि का निर्माण किया है। यह एक पुरुषवादी साहित्य-संसार में एक स्त्री का हस्तक्षेप है। इसकी सीमाएं हो सकती हैं, लेकिन इसका होना ही महत्वपूर्ण है। इस अध्याय में महादेवी की इसी साहित्यिक दृष्टि को उनकी कविताओं और उनकी गद्य रचनाओं के संदर्भ में विश्लेषित किया गया है। स्वाभाविक रूप से इस अध्याय में 'शृंखला की कड़ियाँ' पर विशेष ध्यान दिया गया है।

तीसरे अध्याय में स्त्री-प्रश्न के संदर्भ में महादेवी के समस्त निबंधों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। यहाँ न केवल 'शृंखला की कड़ियाँ' के निबंधों का, बल्कि महादेवी के सभी उपलब्ध निबंधों का पुनर्पाठ करते हुए उनकी प्रखर स्त्री-चेतना को रेखांकित किया गया है।

चौथा अध्याय महादेवी के संस्मरणों और रेखाचित्रों पर केन्द्रित है। प्रायः आलोचक महादेवी की इन रचनाओं को उनके लालित्य के लिए सराहते आए हैं। प्रायः उनकी चिंताएं इस प्रश्न तक सीमित रही हैं कि इन रचनाओं को संस्मरण विधा के अंतर्गत रखा जाए, अथवा 'रेखाचित्र' समझा जाए। इस अध्याय में एक तो इस अकादमिक बहस की व्यर्थता को रेखांकित करने के लिए संस्मरण और रेखाचित्र का विधागत विश्लेषण करते हुए उनके बीच मौजूद एक समान तत्वों के महत्व पर बल दिया गया है। दूसरे सबसे अधिक जोर इस बात पर दिया गया है कि इन रचनाओं को ललित निबंधों की तरह केवल आनंद के लिए पढ़ना इनका कुपाठ करना है। संस्मरण-रेखाचित्र की सारी जीवंतता और सरसता लिए हुए भी ये

रचनाएं लगभग संपूर्णतः एक स्त्री की उस चिंता को दिखाती हैं जो स्त्री-जाति की दशा और दिशा से संबंधित हैं।

महादेवी के गद्य के इन सभी आयामों का अनुशीलन महादेवी के लेखन में स्त्री-मुक्ति के प्रश्न की केन्द्रीयता को प्रामाणिक रूप से स्थापित करता है।

Monta Singh
(ममता सिंह)

“स्त्री विमर्श के संदर्भ में महादेवी का गद्य साहित्य”

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी० एच० डी० उपाधि
के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० आशुतोष कुमार

रीडर, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

शोधार्थी

ममता सिंह

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

2007

THESIS

THESIS



05 MAR 2017

Dr. Ashutosh Kumar
(Reader)



Department of Hindi,
Aligarh Muslim University,
Aligarh-202002 (India)

Dated... 24.12.2007

CERTIFICATE

Certified that the thesis entitled "Stri Vimarsha Ke Sandarbh Mein Mahadevi Ka Gadya Sahitya" presented by Mamta Singh is an original work for Ph.D. degree. It is the result of Mamta Singh's own efforts.

Mamta Singh has fulfilled all the conditions laid in the ordinances of Aligarh Muslim University, Aligarh.

Ashutosh Kumar

(Dr. Ashutosh Kumar)
Supervisor



CHAIRMAN

**DEPARTMENT OF HINDI
FACULTY OF ARTS
ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY, ALIGARH-202 002**

Telex : 564-230 AMU IN
Phones: Off. 2700920 } Ext.
2700921 } 1460
2700922 } 1461
Res. (0571) 2740041

Dated: 24.12.2007

CERTIFICATE

Certified that *Mamta Singh* has submitted her Ph.D. Thesis entitled "*Stri Vimarsha Ke Sandarbh Mein Mahadevi Ka Gadya Sahitya*" on 24.12.2007.

She has been a regular research scholar for a period of two years since the date of her admission i.e. 30.12.2002, in the department and has completed her thesis under the Supervision of Dr. Ashutosh Kumar, Reader, Department of Hindi, AMU, Aligarh.

(Prof. P.K. Saxena)
Chairman

विषय-सूची

	पृ० सं०
भूमिका	1-7
प्रथम अध्याय : स्त्री-विमर्श और हिन्दी साहित्य	8-61
क) अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री-आंदोलन	
ख) हिन्दी साहित्य और स्त्री-विमर्श	
ग) साहित्य और स्त्री-छवि	
1. पूर्व आधुनिक साहित्य में स्त्री-छवि	
2. आधुनिक साहित्य में स्त्री-छवि	
द्वितीय अध्याय : महादेवी वर्मा की साहित्य-दृष्टि और स्त्री-विमर्श	62-107
* महादेवी वर्मा की स्त्री-दृष्टि: पृष्ठभूमि	
* महादेवी: कविता में स्त्री-स्वर	
* महादेवी का स्त्री विमर्श: 'शृंखला की कड़ियाँ'	
* महादेवी की साहित्य-दृष्टि और स्त्री-दृष्टि	
तृतीय अध्याय : महादेवी वर्मा के निबन्धों में स्त्री प्रश्न	108-151
* निबंध और स्त्री-प्रश्न	
* महादेवी वर्मा के निबन्ध और स्त्री-संघर्ष	
* शृंखला की कड़ियाँ और महादेवी की स्त्री चेतना	
* उपसंहार	
चतुर्थ अध्याय : महादेवी वर्मा के संस्मरणों और रेखाचित्रों में स्त्री की छवि	152-190
संस्मरण और रेखाचित्र: साम्य और विभेद	
* संस्मरण का अर्थ	
* रेखाचित्र	
संस्मरणों और रेखाचित्रों में महादेवी की स्त्री चिन्ता	
उपसंहार	191-194
संदर्भ ग्रंथ-सूची	195-203

भूमिका

भूमिका

साहित्य और आलोचना में स्त्रीवादी दृष्टि और स्त्री-विमर्श आज चर्चा के केन्द्र में है। पिछले दशक में अनेक लेखिकाओं ने सचेत रूप से स्त्रीवादी दृष्टि से रचनाएँ की हैं और आलोचना से यह मांग की है कि वह स्वयं को परम्परागत पुरुषसत्तावादी पूर्वाग्रहों से मुक्त करें। इसमें सन्देह नहीं कि यह समूचा स्त्री-विमर्श पश्चिम में विकसित स्त्रीवादी दर्शन से प्रभावित है, जिसकी यह मान्यता रही है कि मानव सभ्यता का अब तक का पूरा विकास पुरुषसत्ता को प्रतिष्ठित करने वाला रहा है। इस पुरुष-वर्चस्व ने संस्कृति के सभी रूपों और साहित्य को प्रभावित किया है। इसके चलते साहित्य में कभी भी स्त्री की वास्तविक छवि और स्त्री जीवन का प्रामाणिक इतिहास उभर कर नहीं आ सका, लेकिन अब भारतीय स्त्री ऐसी स्थिति में आ गयी है कि वह अपने हर प्रकार के शोषण के बुनियादी कारणों को पहचाने और उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए व्यापक आन्दोलन छेड़ दे तथा सदियों से छीने गये अपने अधिकारों को प्राप्त कर लेने तक अपना संघर्ष जारी रखे। किन्तु यह संघर्ष पुरुष-मात्र के विरुद्ध न होकर उन रूढ़ियों, परम्पराओं, जड़-संस्कारों तथा शोषण के विरुद्ध होना चाहिए। यह कार्य कठिन तो है, पर असंभव नहीं। यह लम्बे संघर्ष की अपेक्षा रखता है।

नयी चेतना ने एक ओर समकालीन रचना को प्रभावित किया है तो दूसरी ओर यह मांग भी उठी है कि अतीत में स्त्री रचनाकारों द्वारा रचे गये श्रेष्ठ साहित्य को नई दृष्टि से देखा जाये और इसी प्रकार अपनी देशज परम्परा में जो स्त्री-विमर्श उपलब्ध है, उसे उद्घाटित किया जाये। इस उद्घाटन से आज के स्त्री-विमर्श को निश्चय ही शक्ति मिलेगी क्योंकि युगों से स्त्री ने जिन विडंबनाओं

और संघर्षों का सामना किया है, इससे उनकी समझ और बेहतर होगी। इस दृष्टि से डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी और डॉ० मैनेजर पाण्डेय ने क्रमशः मीराबाई के काव्य और महादेवी वर्मा के गद्य की जो नई व्याख्या की है वह महत्त्वपूर्ण है।

काव्य के क्षेत्र में छायावाद के आधार स्तम्भों में शामिल महादेवी वर्मा की गद्य रचनाएं ध्यान आकर्षित करने लगी हैं। स्त्री-विमर्श की दृष्टि से उनकी गद्य रचनाओं का नया पाठ तैयार करने के प्रयत्न चल रहे हैं। डॉ० मैनेजर पाण्डेय ने उनके निबन्धों की पुस्तक 'शृंखला की कड़ियाँ' की ओर इसी संदर्भ में पाठकों का ध्यान खींचा है। हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा की ख्याति एक कवयित्री के रूप में ही अधिक है। उनकी कविताओं की प्रसिद्धि में उनका गद्य दबकर रह गया है। अगर महादेवी वर्मा का मूल्यांकन करना हो तो वह गद्य के बिना नहीं हो सकता। अपने गद्य में वे सीधे सामाजिक सरोकारों से जुड़ती हैं। जिन्होंने केवल महादेवी वर्मा की अपारदर्शी व्यावहारिक जगत से दूर रहस्यमयी कविताओं को पढ़ा है, वे उनके गद्य के यथार्थ, व्यावहारिक और तार्किक ठोस धरातल का अनुमान नहीं लगा सकते। इसलिए महादेवी वर्मा के पद्य और गद्य को एक साथ पढ़ा जाना ज़रूरी हो जाता है। डॉ० बच्चन सिंह ने महादेवी वर्मा को रहस्यवादी कहे जाने पर विरोध प्रकट किया है—'उन्हें रहस्यवादी कहने का अभिप्राय है, उनके आत्मसंघर्ष पर, जो समूची नारी जाति का आत्मसंघर्ष है, पर्दा डालना। उनकी कविता को 'शृंखला की कड़ियाँ', 'स्मृति की रेखाएँ' आदि के साथ पढ़ना चाहिए'।

'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'शृंखला की कड़ियाँ' नामक गद्य रचनाओं में महादेवी वर्मा ने भारतीय स्त्री के बहुत से चित्र अंकित किए

हैं। महादेवी वर्मा स्त्री के उस रूप की चर्चा करती हैं जो अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही है। उपेक्षित एवं उत्पीड़ित नारी की आंतरिक वेदना का मार्मिक आख्यान भी वे प्रस्तुत करती हैं। महादेवी ने जो रेखाचित्र और संस्मरण लिखे, उनमें कोई भी लेखन नेता और महापुरुष पर नहीं है। वे सभी समाज के गरीब और अनाथ लोगों, अछूतों, अशिक्षितों और निम्न वर्ग के व्यक्तियों पर लिखे गए हैं। इन सब में जीवन का जो सौंदर्य है, उसे महादेवी वर्मा ने अपनी विस्तृत संवेदनशीलता के साथ पहचाना।

महादेवी वर्मा अपने गद्य साहित्य में भारतीय नारी के पीड़ित जीवन के वास्तविक अनुभवों को अभिव्यक्ति देती हैं। महादेवी ने समस्त भारतीय नारी के दुखों, कष्टों का अनुभव कर उसे अभिव्यक्त किया है। महादेवी वर्मा 'मैं नीर भरी-दुख की बदली' कहकर जब अपनी व्यथा कहती हैं तो वह सिर्फ अपनी ही व्यथा नहीं कहतीं, अपने युग की समस्त भारतीय नारियों की व्यथा कहती हैं। महादेवी की व्यथा सम्पूर्ण नारी जाति की व्यथा थी। डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं, 'कोई अपनी वास्तविक स्थिति निश्छल ढंग से व्यक्त करे तो उसमें सामाजिकता अपने आप खिंच आएगी, क्योंकि व्यक्ति की स्थिति भी विशिष्ट सामाजिक स्थितियों या संदर्भों का परिणाम है।'

स्त्री-मुक्ति से जुड़े अनेक प्रश्न, उन प्रश्नों से जुड़ी उसकी सामाजिक, परिवारिक और आर्थिक बेबसी और उससे उत्पन्न स्त्री की मनःस्थिति का चित्रण अनेक स्तरों पर हुआ है। स्त्री की रचनात्मकता में अंतर्जगत और बाह्यजगत की कठोर भूमि पर हो रहे संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है। स्त्री लेखन की मूल संवेदना

स्त्री-मुक्ति के प्रश्नों से बड़ी गहराई के साथ जुड़ी है। सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, अमृता प्रीतम, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, आशापूर्णा देवी, महाश्वेता देवी, इस्मत् चुगताई आदि ने इन प्रश्नों को बार-बार उठाया है।

शोध-प्रबंध में कुल चार अध्याय हैं। पहला अध्याय 'स्त्री-विमर्श और हिन्दी साहित्य' है। इस अध्याय में विभिन्न लेखिकाओं के मतों का संदर्भ देकर स्त्री-विमर्श के सभी पक्षों पर विस्तार से विचार किया गया है। स्त्री-विमर्श हिन्दी साहित्य का केन्द्रीय विषय बन चुका है। विभिन्न परिस्थितियों के कारण एक ओर समाज में नैतिकता, प्रेम और ईमानदारी जैसे मूल्यों के लिए स्थान नहीं रहा है तो दूसरी ओर नारी को केवल उपभोग की वस्तु बनाने की कोशिश की जा रही है। पूंजीवादी व्यवस्था में आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होकर भी स्त्री को मानवीय गरिमा प्राप्त नहीं हो सकी है। स्त्री-विमर्श के प्रश्नों को समझने के लिए सभ्यता के विकास को और स्त्री-शोषण के ऐतिहासिक कारणों को पहचानना होगा। इसके लिए वैज्ञानिक सोच को विकसित करना होगा।

दूसरा अध्याय है 'महादेवी वर्मा की साहित्य-दृष्टि और स्त्री-विमर्श'। साहित्य एक जीवंत प्रक्रिया है, रचना एक सामाजिक कर्म है और साहित्य सृजन मनुष्य के सामाजिक व्यवहार का एक विशेष रूप है। महादेवी वर्मा के साहित्य में उद्देश्य एवं विचारधारा की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। महादेवी वर्मा के साहित्य में उनकी सामाजिक दृष्टि का पता चलता है। साहित्यकार का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह अपने समय और युग की समस्त विसंगतियों का विरोध करे। महादेवी वर्मा ने अपने युग की सम्पूर्ण राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक एवं नष्ट होने वाले

सांस्कृतिक मूल्यों की पीड़ा को स्वर देने की ईमानदार कोशिश की है। महादेवी वर्मा ने अपनी पुस्तक 'शृंखला की कड़ियाँ' में भारतीय स्त्री की हैसियत और उसकी अस्मिता से जुड़े विषय को उठाया है। महादेवी वर्मा स्त्री की पराधीनता और उसके कारणों की तलाश करते हुए ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर स्त्री-स्वाधीनता की बातें करती हैं।

तीसरा अध्याय है 'महादेवी वर्मा के निबन्धों में स्त्री प्रश्न'। निबन्ध एक ऐसी विधा है जिसमें विषय की विविधता और विस्तार के लिए पर्याप्त गुंजाइश होती है। किन्तु यह विधा जितनी सहज है उतनी ही चुनौतीपूर्ण भी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है'। निबन्ध-लेखन में महादेवी वर्मा ने निबन्ध के पारम्परिक रूप-सीमा को तोड़कर उसे पर्याप्त विस्तार दिया है। स्त्री-प्रश्न की दृष्टि से महादेवी वर्मा के निबन्धों के उतने ही वर्ग किये जा सकते हैं जितने कि समाज में व्याप्त सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विसंगतियों के। वर्तमान समय में स्त्री विषय का शायद ही कोई ऐसा पक्ष शेष हो जिसे महादेवी वर्मा के निबन्धों में अभिव्यक्ति न मिली हो। महादेवी वर्मा ने जीवन की वास्तविकता से परिचित होकर निबन्ध लिखना प्रारम्भ किया था। उनके निबन्ध बौद्धिक चिन्तन को बढ़ाते हैं। महादेवी के निबन्ध भारतीय स्त्री की सम्पूर्ण मुक्ति तथा बन्धन को व्यक्त करते हैं। इसलिए यह अध्याय महादेवी वर्मा के निबन्ध को समर्पित है।

चौथे अध्याय का शीर्षक है 'महादेवी वर्मा के संस्मरण और रेखाचित्रों में स्त्री की छवि'। महादेवी वर्मा अपने संस्मरण और 'रेखाचित्रों' में भारतीय स्त्री के सुख-दुख, दीनता, विषमता आदि के साथ विधवा-विवाह, बाल-विवाह, परित्यक्त

स्त्री, अनाथ, विमाता के अत्याचारों से दुःखी स्त्री की कथा को बड़े ही मार्मिकतापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करती हैं। महादेवी वर्मा ने गद्य की विधाओं में संस्मरण और रेखाचित्र को एक नया स्थान दिलाया। अब तक जो संस्मरण या रेखाचित्र लिखे गए उनमें से अधिकांश देश के किसी बड़े राष्ट्रीय नेता, ऐतिहासिक पुरुष या किसी महान् विभूति के ही हुआ करते थे। समाज के निम्न वर्ग की ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। महादेवी वर्मा ने अपने रेखाचित्र अछूतों, अशिक्षित और निम्न व्यक्तियों पर लिखे जिनकी ओर पहले किसी की दृष्टि नहीं गयी थी। महादेवी वर्मा ने अपने संस्मरणों में समाज की व्यवस्था तथा परम्परागत संस्कारों पर गहरी चोट करते हुए भारतीय समाज में नारी की स्थिति को दिखाया है। महादेवी के संस्मरणों में स्त्री की जो छवि उभर कर आती है वह एक निर्बल प्राणी, सर्वाधिक उपेक्षिता, पीड़िता और पराश्रिता की है।

अंत में 'उपसंहार' है जिसमें महादेवी वर्मा के सम्पूर्ण साहित्य पर विचार करते हुए शोध के निष्कर्षों का उल्लेख किया गया है।

मैं अपने शोध-निर्देशक डॉ० आशुतोष कुमार के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने शोध कार्य में आनेवाली कठिनाइयों को दूर किया।

हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो० प्रदीप कुमार सक्सेना ने इस शोध-प्रबंध को प्रस्तुत करने में हर संभव मदद की। उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

शोध-कार्य में रत रहते हुए जिन गुरुओं एवं आत्मीय स्वजनों से मुझे सहायता मिली उनके प्रति अपना आभार प्रकट करना चाहूँगी। विशेष रूप से डॉ० वेद प्रकाश, प्रो० एम०ई० जुबेरी, श्री अजय बिसारिया, डॉ० मेराज अहमद, डॉ० तसलीम सुहैल और डॉ० इफ्फत असगर की मैं आभारी हूँ जिन्होंने मुझे सभी प्रकार

की सहायता और प्रेरणा प्रदान की और मैं उचित समय पर अपने कार्य को पूरा कर सकी।

मुझे शोध कार्य की प्रेरणा मेरी दादी से मिली। यह उन्हीं का सपना है जो मेरे पति के भरपूर समर्थन से पूरा हुआ है। उनके सहयोग के बिना मैं इस कार्य को पूरा कभी नहीं कर पाती। इस अवसर पर अपने पूजनीय माता-पिता और सास-ससुर को विस्मृत नहीं कर सकती, जिन्होंने मुझे जीवन में किसी तरह का अभाव महसूस नहीं होने दिया और हमेशा शोध कार्य को पूरा करने के लिए प्रेरित करते रहे।

शोध-प्रबंध के लिए सामग्री संचयन का काम मैंने मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी, अलीगढ़, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, साहित्य अकादमी, दिल्ली से किया। यहाँ के कर्मचारियों ने भी मेरी काफ़ी सहायता की। मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी अलीगढ़ के कर्मचारियों में विशेष रूप से भाई पीर मुहम्मद और नदीम भाई का स्नेह हमेशा याद रहेगा।

शोध-प्रबंध की कम्प्यूटरकृत टंकण व्यवस्था का श्रेय श्री शशांक भाई और रेहान भाई को है जिसके लिए मैं शशांक भाई और रेहान भाई को धन्यवाद देती हूँ।

Mamta Singh
(ममता सिंह)

प्रथम अध्याय

स्त्री-विमर्श और हिन्दी साहित्य

स्त्री-विमर्श और हिन्दी साहित्य

स्त्री-विमर्श क्या है? उसका अर्थ क्या है? अचानक ये सवाल तब उठ खड़ा हुआ जब हिन्दी में यह आन्दोलन बारह-पंद्रह वर्षों तक निरन्तर चलने के बाद लगभग सर्वमान्य हो गया। स्त्री-विमर्श का अर्थ साधारणतया तो यही हो सकता है कि स्त्री की जो पूर्व-स्थिति है, उससे निकाल कर आर्थिक और सामाजिक रूप से स्त्री को स्वतन्त्रता देना। स्त्री-विमर्श को साहित्यकारों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार—“स्त्री-विमर्श वह बातचीत है, तर्क-वितर्कों से भरी बहस और बहसों से निकलकर आने वाला वह निष्कर्ष है जो स्त्री के जीवन को पुरुष जीवन के साथ समानता के स्तर पर लाना चाहता है।”¹ स्त्री-विमर्श को लेकर निर्मला जैन लिखती हैं—“स्त्री-विमर्श की प्रेरणा इस बात से आती है कि भारत ही नहीं दुनिया के सभी समाजों में स्त्री और पुरुष के बीच भेदभाव होता है। कुछ गिने-चुने समुदायों को छोड़ दें तो स्त्री को प्रायः दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता रहा है। भारत में समस्या दुहरी है। एक ओर उसे देवी, पूज्य और माँ का दर्जा देकर एक छद्म की सृष्टि की जाती है। लेकिन ये सारी बातें केवल सैद्धान्तिक हैं। व्यवहार में जब भी निर्णायक क्षण आते हैं तभी यह पूज्य भाव काफूर हो जाता है। पुरुष अपना वर्चस्व बनाए रखने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देता।”²

भारतीय समाज में स्त्री-विमर्श के संदर्भ में राजी सेठ का कहना है कि “जीवन एक चीज़ है, साहित्य दूसरी चीज़। समाज में लोग जब समस्याओं के प्रति सचेत होने लगते हैं तो उनकी परिभाषाएं बनती हैं, विमर्श बनने लगते हैं। इसका एक लाभ यह होता है कि किसी विमर्श के हवाले से लोग एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं और समस्याओं को सामूहिक चेष्टा और जागरूकता से देखने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। संगठित शक्ति बढ़ती है। दूसरे देशों की तरह भारत में भी स्त्री-विमर्श को

एक ऐसी ही जागरूकता अभियान की तरह देखा जाना चाहिए।”³

लेकिन भारत में स्त्री-उद्धार या स्त्री-मुक्ति सम्बन्धी जितने भी प्रयत्न होते रहे हैं, वे इकहरे रहे हैं। घर से लेकर बाहरी दुनिया तक हर तरह के सुरक्षा नियमों से आरक्षित स्त्री के लिए भारतीय संसद में आरक्षण अब तक क्यों नहीं संभव हो पा रहा है? जो लोग गरीब, दलित, पिछड़े, असहाय और वंचित समाज का नेतृत्व कर रहे हैं वे, स्त्री-सम्बन्धी आरक्षण नियमों के विरोध में क्यों हैं?

हिन्दी-साहित्य में स्त्री-लेखन को लेकर बहुत विचार-विमर्श हो रहा है। पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था की उपस्थिति के कारण नारी को उसका उचित स्थान कभी नहीं मिला है। यह तथ्य तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था और राजनैतिक व्यवस्था के चलते व्यवहारिक रूप में स्पष्ट दिखाई पड़ता रहा है। लेकिन जहाँ तक भारतीय सभ्यता, संस्कृति, चिंतन और साहित्य के ऐसे क्षेत्र भी हैं जहाँ स्त्री पुरुष के समकक्ष खड़ी दिखाई देती है।

भारतीय इतिहास में अंग्रेजों के आने के बाद 18वीं-19वीं शताब्दी में एक साथ इतने परिवर्तन होते हैं, जिनके प्रभाव व्यक्ति, परिवार, समाज और इनसे जुड़े सार्वजनिक जीवन पर भी दिखाई पड़ते हैं। बाल-विवाह, सती-प्रथा, विधवा-विवाह का विरोध और टूटती हुई वर्ण-व्यवस्था पुनः एक बार स्त्री को केन्द्र में लाने की प्रक्रिया शुरू करती है। भले ही यह प्रक्रिया बहुत धीरे-धीरे संपन्न हुई हो और आज भी पूरी न हो सकी हो, किन्तु फिर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दी साहित्य में स्त्री की उपस्थिति दिखाई पड़ने लगी है। साहित्य के इतिहास में स्त्रियों, दलितों और आदिवासियों के न होने के सवाल उठ रहे हों, तो इसके भी कुछ कारण हैं। हिन्दी साहित्य में लगभग सन् 1965 के बाद विचारधारा के स्तर पर सामाजिक अस्मिता को लेकर रचनात्मक लेखन की प्रक्रिया की शुरुआत होती है।

तब खेतिहर, मजदूरों, गैर सवर्ण किसानों और निम्न वर्गीय श्रमिकों को लेकर जारी संघर्ष नक्सलवाद के माध्यम से अपनी चरम सीमा पर था और सम्भवतः इसी कारण हिन्दी के लेखकों का ध्यान सामाजिक समूहों की ओर भी गया। यह कहना ग़लत नहीं होगा कि साहित्य को नक्सलवाद ने गहराई से प्रभावित किया है।

लंबे संघर्ष के बाद स्त्री आज पहले से थोड़ी बेहतर स्थिति में पहुँची है। अभी भी समूचा परिवेश स्त्री-विरोधी भावबोध से भरा हुआ है। स्त्री से बात करना, स्त्रियों का आपस में बैठकर बातें करना, स्त्री की समस्याओं पर बातें करना, स्त्री से जुड़े गंभीर सवालों पर बहस आदि आयोजित करना बेहद चुनौतीपूर्ण हो गया है। स्त्री-विरोधी परिवेश के कारण या तो हमलों का सामना करना पड़ सकता है या उपहास का पात्र बनना पड़ेगा। स्त्री गंभीर विषय है, उस पर हमला करके उसे चुप कराना संभव नहीं है और न ही उपहास करके उसकी सामाजिक भूमिका एवं ज़रूरतों से आँखें चुराई जा सकती हैं। स्त्री कोई निष्क्रिय शरीर नहीं है और न वह गुलाम ही है, बल्कि वह मानव है। हँसती, रोती, खिलखिलाती, पढ़ती-पढ़ाती, खेती करती, मेहनत-मजदूरी करती, उत्पादन एवं पुनरुत्पादन करती साक्षात् मानव। वह स्वतंत्र व्यक्ति है, उसकी स्वतंत्र इच्छाएँ हैं, स्वतंत्र सोच है, स्वतंत्र दृष्टि है, स्वतंत्र परंपरा है और स्वतंत्र साहित्य भी है फिर भी उसे मुख्य धारा में अभी तक शामिल नहीं किया गया।

९/ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 1975 का वर्ष अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया गया था। यह दुनिया भर में विभिन्न स्तर पर महिलाओं के प्रति बरती जा रही असमानता व उसके कारणों की ओर ध्यान दिलाने की संयुक्त राष्ट्र संघ की कोशिश थी। स्त्री किस हद तक गुलाम व शोषित है, और उसका शोषण कर रही व्यवस्थाएं कितनी सशक्त और उनके खिलाफ संघर्ष कितना कठिन, यह भी संयुक्त राष्ट्र संघ

समझ गया था। इसलिए उसने सन् 85 तक पूरे दस साल महिला के नाम पर दिए। यही नहीं 1975 से ही अगले बीस साल बाद 95 में चीन में विश्व महिला सम्मेलन होने की घोषणा भी कर दी, ताकि सम्मेलन इस कोशिश में लग सके कि दुनिया भर में महिलाओं को हर क्षेत्र में समानता का दर्जा दिया जाए और समाज को, दुनिया को, उनके रहने लायक बनाया जाए। इसीलिए उसके तमाम महिला सम्मेलनों का नारा है— समानता, विकास और शांति।

ज्यादातर महिला संगठन 1975 को महिलाओं के पुनर्जागरण का वर्ष होने से इंकार करते हैं पर मुझे यह इस अर्थ में पुनर्जागरण लगता है कि विश्व-स्तर पर इसी साल से महिलाओं ने संगठित होकर अपने लिए संघर्ष की शुरुआत की थी। मेरा मानना है कि 1975 से महिला आंदोलन की धारा ने देश की स्त्री को उसकी मौलिक स्थिति का बोध कराया है। आज वह मौजूदा सामाजिक ढाँचे को ही नहीं, हर व्यवस्था को बदलने की माँग कर रही है। जब विभिन्न स्तरों पर आंदोलन चला रही सभी महिला नेता पिछले 20 साल की उपलब्धि के नाम पर कहें कि आज हमें सुना जा रहा है, हर स्तर पर हमें स्वीकृति मिल रही है, अब हमें नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता तो इसका अर्थ यही है कि वह बोल रहीं हैं और अपने लिए बोल रहीं हैं।

1975 में अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन के ज़रिए देश में जिस महिला आंदोलन की शुरुआत हुई थी, वह 20 साल बाद 1995 में विश्व-महिला सम्मेलन के आते-आते पूरी तरह पश्चिमी ताकतों की चपेट में आ गया। 'ग्लोबलाइज़ेशन' के नाम पर पश्चिमी ताकतें अपने मुद्दे उस पर थोपने की कोशिश में हैं। इस तरह इस समय वह भीतरी —बाहरी दोहरी चुनौतियों का सामना कर रहा है। जनसंख्या, परिवार-नियोजन, पर्यावरण, उदार आर्थिक नीतियाँ और ढाँचागत समन्वय कार्यक्रम

ये सभी ऐसे मुद्दे हैं, जो उसका ध्यान खींच रहे हैं। जातिवाद, सांप्रदायिकता, उपभोक्तावाद और राजनीति का अपराधीकरण ये सभी भीतरी तत्व उससे ज्यादा संगठित होने की माँग करते हैं, वहीं उसे भी जातिगत, धर्मगत व दलगत राजनीति में सीमित भी कर रहे हैं। ऐसे में बाहरी खतरे व चुनौतियाँ तो बढ़ी ही हैं आंदोलन को भी भीतर से चुनौती मिल रही है।

साहित्य का अर्थ है कि जीवन का पुनर्सृजन। पुनर्सृजन के सौंदर्यपरक मानदंड हैं। इन मानदंडों की कसौटी पर साहित्य जब खरा साबित होता है, तब ही वह व्यापक अर्थ में अपनी भूमिका निभा पाता है। साहित्य हमारे अनुभव, जीवन-जगत और भाषा को परिमार्जित करता है, उन्हें नई शकल देता है। यही वजह है कि स्त्रीवादियों की साहित्य में गहरी दिलचस्पी है।

स्त्री के व्यक्तित्व, मन एवं व्यवहार की अनेक पर्तें होती हैं। कौन सी पर्त किस अवस्था को व्यक्त करती है, यह बात पुस्तकीय ज्ञान से समझ में आने वाली नहीं है। स्त्री-जगत का यथार्थ रूप में बारीकी से किया गया अध्ययन ही इसमें बुनियादी रूप से मदद कर सकता है। स्त्री अनुभूतियों एवं बाहरी व्यवहार में से चुनने का प्रश्न हो तो अनुभूतियों को चुना जाना चाहिए। अनुभूतियाँ ही उसके वास्तविक मन को उद्घाटित करती हैं। यही कारण है कि स्त्रीवादी आलोचना ने अनुभूति की प्रामाणिक अभिव्यक्ति को स्त्री-साहित्य का बुनियादी तत्व माना। अनुभूति को सर्वस्व मानने के कारण ही स्त्री-साहित्य सैद्धांतिकी ने स्थूल यथार्थवाद की कोटि को अस्वीकार किया। वैविध्य को अनुभूति की धुरी बताया। अनुभूति के वैविध्य को सार्वभौम रूप में बदलने से इनकार किया। इसका प्रधान कारण था 'सार्वभौम' का पुरुष सत्तावादी होना। स्त्री अपने को सार्वभौम मनुष्य की कोटि से जोड़ने में असमर्थ पाती है। स्त्री-अनुभूति का सार्वभौम से पृथक रूप स्वयं में ही इस बात की गवाही

है कि 'सार्वभौम' पुंसवादी है।

स्त्री-साहित्य के इतिहास पर सोचते समय ऐतिहासिक दृष्टिकोण और द्विजात्मक प्रणाली को मूलाधार बनाया जाना चाहिए। इससे स्त्री-साहित्य की ऐतिहासिक चेतना एवं युगीन चेतना के बीच के रिश्ते एवं अंतराल को समझने में मदद मिलेगी। स्त्री-साहित्येतिहास के निर्माण के क्रम में स्वभावतः एक प्रकार के सामान्यीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। स्त्री-साहित्य का इतिहास लिखने का अर्थ है स्त्री-संबंधी यथार्थ का जटिल-रूपों में रूपांतरण। स्त्री-साहित्य का इतिहास आज से बीस साल पहले एकदम नया-नया इतिहास-रूप था। इसमें स्त्री का समसामयिक यथार्थ निर्देशक की भूमिका अदा करता है। स्त्री साहित्येतिहास किस परिप्रेक्ष्य से लिखा जाए, यह बहुत कुछ इस बात से तय होगा कि हम समसामयिक जीवन में स्त्री को किस रूप में देखना पसंद करते हैं। समसामयिक स्त्री-साहित्य और जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण होगा वही स्त्री-साहित्येतिहास के प्रति भी होगा। इसी अर्थ में स्त्री-साहित्य का इतिहास युगीन दस्तावेज है स्त्री की अस्मिता के संघर्ष का प्रतीक है। स्त्री साहित्येतिहास की समस्याएं वस्तुतः स्त्री-साहित्य समीक्षा की समस्याएँ भी हैं।

स्त्री-साहित्य का इतिहास निर्मित करते समय 'पुरुष निर्मित सिद्धान्त को न मानना' इस तरह के दुराग्रहों से संघर्ष किया जाना चाहिए। साहित्य-समीक्षा के जो मानदंड स्त्री-साहित्य को समझने, विश्लेषित करने में मदद करें उनका पूरी तरह उपयोग होना चाहिए। पुरुषों को लेकर लेखिकाओं की उग्रता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए डॉ० नामवर सिंह कहते हैं—'साहित्य स्त्री के शोषण का विरोधी है और पुरुष लेखकों ने अपनी रचनाओं में स्त्री के शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाई है। कुछ लेखिकाएँ और कवयित्रियाँ स्त्री-अधिकारों को लेकर बहुत उग्र दिखाई देती

हैं। उनकी उग्रता से प्रतीत होता है कि वे सभी पुरुषों के खिलाफ है। इसका कोई अर्थ नहीं है। मैं मानता हूँ कि औरत ही पुरुष को मुक्त कर सकती है पर ऐसा वह उसमें भय पैदा करके नहीं कर सकती। स्त्री आज आक्रमक मुद्रा में है। उसके लिए नये रास्ते खुल रहे हैं। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में उसकी भागीदारी बढ़ रही है शायद इसलिए उसे अधिक संयमित होने की ज़रूरत है।⁴

इसी क्रम में स्त्री की सत्ता की स्वतंत्र पहचान खंडित न हो, यह बात ध्यान रखें। इसका प्रधान कारण यह है कि पुरुष के परिप्रेक्ष्य में स्त्री हमेशा उसकी पूरक के रूप में आती रही है। स्त्री पूरक नहीं है। उसकी व्यक्ति और मनुष्य के रूप में स्वतंत्र पहचान है, स्वायत्त जिंदगी है और ख़ास तरह की समस्याएँ भी हैं।

स्त्री का संघर्ष बहुस्तरीय होता है। वह पुरुष की तरह एकायामी नहीं होता। घर के अंदर एवं बाहर, मन के अंदर और मन के बाहर इस संघर्ष की अभिव्यक्ति होती है। छोटे-छोटे मामलों में स्त्री-अस्मिता की जद्दोजहद व्यक्त हुई है। छोटी-छोटी बातों, चीज़ों एवं संकुचित सुख की कामना उसकी अस्मिता की लड़ाई का अंग है। इसलिए स्त्री की प्राथमिकताएँ तय करना मुश्किल है।

दरअसल स्त्रियों के साथ सबसे बड़ी त्रासदी उसका 'स्त्री' होना है। उपभोक्तावादी संस्कृति के बढ़ते दबाव ने उसकी पुरानी महत्ता को समाप्त कर दिया तथा नयी बाज़ार व्यवस्था ने संबंधों को भी नये ढंग से विकसित करने के लिए बाध्य कर दिया। इसका सीधा और गहरा असर उन स्त्रियों पर पड़ा जो आर्थिक रूप से कमज़ोर होने के कारण पुरुषों पर निर्भर होकर अपना जीवनयापन करती हैं। स्त्रियों को दबाकर और गुलाम रखकर उनसे मुक्ति और स्वतंत्रता की बात करना हमारी संस्कृति के आधुनिक लोगों की बातचीत और क्रियाकलापों का एक मुख्य हिस्सा होता है। इस मानसिकता के पुरुष इस बात से अच्छी तरह वाकिफ़ होते हैं कि

पारंपरिक जीवन में 'विवाह' स्त्री की एक नियति होती है, जिससे मुक्त होना उसके लिए असंभव होता है। विवाह के बंधन में पड़कर वे मजबूर होती हैं तथा घर-गृहस्थी संभालना उनकी इसी मजबूरी का एक महत्वपूर्ण पक्ष होता है। आत्मनिर्भरता के अभाव में वे आजीवन न तो 'स्त्री-जीवन' की गरिमा प्राप्त कर पाती हैं और न ही अपने जीवन का मौलिक अधिकार।

स्त्री-विमर्श के सवाल पर छिड़ी बहस को सार्थक परिणामों की खोज में दिशाबद्ध होने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वर्चस्ववादी समाज के आइने में स्त्री-छवि को बिना किसी पक्षपात के उभारा जाए। स्त्री छवि को लेकर पुरुष की उस सामंतवादी सोच की विस्तृत विवेचना की जाए जिसने उसे गुलाम, दलित व अन्य की उपाधि दी है। इस समाज की सीमा में सिर्फ भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों की पुरुष मानसिकता को ही हम न उभारें, बल्कि विश्व-पटल पर उन पूंजीवादी देशों की पुरुषवादी सोच को भी खुलकर समाने आने के लिए विवश करें, जो अपने ज्ञान व तकनीकी श्रेष्ठता का ढिंढोरा पीटते हुए दुनिया को सभ्यता व संस्कृति का पाठ पढ़ा रहे हैं। नारीवाद के नारों की आड़ में स्त्री की दैहिक स्वतंत्रता की गुहार लगाकर उसे बाज़ार के पक्ष में ढालने को विवश कर रहे हैं।

स्त्री-विमर्श के मुद्दे को साहित्य में किसी ऐसी ठोस व समतल ज़मीन की ज़रूरत है जो एक सफल निष्कर्ष की कसौटी बनकर उभरे। प्रेमचंद, शरत्चन्द्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, गोपीनाथ मोहंती ने इन सवालों को गहरी जिम्मेदारी और भरपूर मानवीय लगाव के साथ उठाया, किंतु स्त्री सवालों के प्रति उनकी भावुक दृष्टि ने यह साबित कर दिया कि स्त्री उनके लिए एक भावुकतापूर्ण विषय है। उसके प्रति न्याय की दृष्टि से वे उसके अभाव एवं दमन के प्रति एक भाववादी दृष्टि अपना लेते हैं। इसलिए अतिवादिता की स्थिति आ जाती है और वे उसे ऊँचे शिखर पर

प्रतिष्ठित कर देते हैं, या फिर उसके प्रति करुणा या सहानुभूति का भाव अभिव्यक्त कर स्त्री की आज़ादी को प्रेम या वरण की आज़ादी तक सीमित कर देते हैं। स्त्री के दिन-प्रतिदिन के जटिल यथार्थ को समझ पाने की संपूर्ण संभावना पुरुषवादी दृष्टिकोण की पकड़ से छूट जाती है। ज़्यादातर पुरुष साहित्यकार विवाह, तलाक़, दहेज व देह-शोषण या शारीरिक उत्पीड़न की समस्या को ही स्त्री-जाति की मूल समस्या मान उसे अपनी रचनाओं के केन्द्र में रखते हैं। स्त्री को मानसिक धरातल पर शोषण की सूक्ष्म से सूक्ष्म विसंगतियाँ, उनकी दिन-प्रतिदिन की जटिलताएँ, उनकी उपेक्षा के महत्वपूर्ण बिंदु, उनकी मानसिक आज़ादी की पुरुष-निर्धारित सीमा रेखा, उनकी अभिव्यक्ति के बदलाव पर पहरे, उनके भाव-जगत की जटिलता का अविश्वसनीय अनुभव और इन सबके साथ व्यक्तित्व और सामाजिक तौर पर लगातार विरोध की स्थितियों को समझने, इन चोटों से निर्मित तड़प का एहसास कर आगे बढ़ने का साहस उनका नितान्त निजी मामला है। इन बारीकियों को भला एक पुरुष मन व मस्तिष्क कैसे समझेगा, महसूस करेगा? स्त्री के आँसू यानी उनकी लाचारी ही पुरुष को ज़्यादातर आकर्षित करती है।

(क) अंतर्राष्ट्रीय स्त्री-आंदोलन

हिन्दी-साहित्य में स्त्री-विमर्श अब हाशिए से उठकर केन्द्र में आ चुका है। हिन्दी की कई लेखिकाएँ जैसे-प्रभा खेतान, नासिरा शर्मा, अर्चना वर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, क्षमा शर्मा, मनीषा, अलका आर्य, मणिमाला, मृणाल पाण्डेय, मन्नू भण्डारी, ममता कालिया आदि अपने-अपने ढंग से इसमें योगदान दे रही हैं। वैसे तो साहित्य और सामाजिक-दोनों क्षेत्रों में यही माना जाता है कि स्त्री विमर्श पश्चिमी धारा है। पश्चिम के व्यक्तिवाद, उदारवाद, भौतिकवाद एवं उपयोगितावाद ने नवीन विचारों को बढ़ावा दिया। पश्चिम से ही स्त्री-पुरुष की समानता के विचार उठे। यह पहले

यूरोप और बाद में अमेरिकी स्त्री-आंदोलनों का विस्तार है। विश्व-स्तर पर घटने वाली चार घटनाएँ भारतीय स्त्री-आंदोलन के मूल में हैं। एक 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति, जिसमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसी चिरवांछित मानवीय आकांक्षाओं को नैसर्गिक मानवीय अधिकार की गरिमा देकर राजतंत्र और साम्राज्यवाद के बरअक्स लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के स्वस्थ और शिक्षित विकल्प को प्रतिष्ठित किया गया। दूसरे, भारत में राजा राममोहन राय की लम्बी जद्दोजहद के बाद 1829 में सती-प्रथा का कानूनी विरोध, जिसने पहली बार स्त्री के अस्तित्व को मनुष्य के रूप में स्वीकारा। तीसरे 1848 में सिनेका का फॉक्स-न्यूयार्क में ग्रिमके बहनों की रहनुमाई में आयोजित तीन सौ स्त्री-पुरुषों की सभा जिसने स्त्री दासत्व की लम्बी शृंखला को चुनौती देते हुए स्त्री-मुक्ति आंदोलन की नींव रखी और 1867 में प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक और चिंतक जान स्टुअर्ट मिल द्वारा ब्रिटिश पार्लियामेंट में स्त्री के वयस्क मताधिकार के लिए प्रस्ताव रखा जाना, जिसने कालांतर में स्त्री-पुरुष के बीच स्वीकारी जाने वाली अनिवार्य कानूनी और संवैधानिक समानता की अवधारणा को बल दिया। असल में इस फेमवर्क के बिना स्त्री-विमर्श को उसकी समग्रता में जाना ही नहीं जा सकता। पूरे विश्व में स्त्री-उत्पीड़न की लगभग एक-सी परम्परा है तो दूसरी ओर इससे मुक्ति की लगभग एक-सी तड़प और अकुलाहट भरी संघर्ष-कथा।

19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में स्त्रियों ने पुरुषों के साथ समानता और समान अवसर की माँग करनी शुरू कर दी थी। साथ ही उन्होंने अपनी शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने का भी प्रयत्न करना शुरू कर दिया। 1848 से 1894 तक उनके लिए कई कॉलेज खोले गये। विश्वविद्यालयों में उन्हें प्रवेश प्राप्त करने की अनुमति दे दी गई। पहले मिल ने 1867 में और बाद में अन्य ने स्त्री-मताधिकार की

माँग भी बार-बार उठाई। स्त्रियों की सोसायटियाँ बन गईं। 1894 में स्त्रियों की नियुक्ति, शिक्षा, विवाह तथा निर्धनता-सम्बन्धी राजकीय आयोगों में भी होने लगी। 1892 में आस्ट्रेलिया और 1893 में न्यूजीलैंड में स्त्रियों को मताधिकार मिल गया।

इंग्लैण्ड में सन् 1903 में मिसेज फ्रैंक हर्स्ट ने स्त्रियों को संगठित करना शुरू कर दिया था। वह मध्यम वर्ग की एक शिक्षित महिला थीं तथा गणतंत्रीय समाजवादी मोर्चे से संसदीय चुनाव भी लड़ चुकी थीं। उनके संगठन पर किसी भी मर्यादा, कानून या परंपरा का प्रभाव नहीं था। उन्होंने संसद के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। काफी स्त्रियों को पकड़ा गया, जुर्माना न देने पर जेल भी भेजा गया। इनको 'नारी मतार्थिनी' कहा जाने लगा। लोकप्रिय समाचार-पत्रों ने इसका जमकर प्रचार किया। सरकार ने तंग आकर 1909 में वयस्क मताधिकार अधिनियम संसद में रखा लेकिन बजट के कारण दूसरा वाचन न हो सका। आंदोलन और भी उग्र हो गया। 1913 में 'बिल्ली और चूहा' विधेयक भी पास किया गया जिसके अनुसार गृह सचिव, बिना मुकदमे के ही, अपराधी स्त्रियों को जेल भेज सकता था लेकिन इसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। स्त्रियों की आक्रामक नीति के कारण जनमत उसके विरुद्ध था। 1914 में विश्व युद्ध आरंभ हो गया और आंदोलन स्थगित कर दिया गया। युद्धकाल में स्त्रियों ने डॉक्टर, नर्स, मजदूर आदि के रूप में देश की बहुत सेवा की। अतः देश ने अपना आभार प्रकट करने के लिए 1918 में एक विधेयक पास किया। वयस्क मताधिकार की स्थापना। लेकिन केवल 30 वर्ष से ज़्यादा उम्र की स्त्रियों को मताधिकार। यह अवस्था भेद 1928 के नियम द्वारा समाप्त कर दिया गया।

(ख) हिंदी साहित्य और स्त्री-विमर्श

हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श का विकास भी विश्व-साहित्य की तरह

आधुनिक काल ही में जाकर हो पाया। यद्यपि भक्तिकाल की मीराबाई (लगभग 1498–1546) की कविता में स्त्री की पीड़ा मिलती है। छायावादी लेखिका महादेवी वर्मा (1907–1987) के लेखन में स्त्री-मुक्ति का स्वर जिन्दगी की समस्याओं से जुड़कर पाठकों के सामने आया है, खासकर 'शृंखला की कड़ियाँ' (1942) और कविताओं में। हिन्दी साहित्य के विचारक यह मानते हैं कि महादेवी के भावबोध का संबंध उस विशिष्ट स्थिति से भी है जिसे इस देश की स्त्रियाँ सदियों से झेल रही हैं। 'हमारी शृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी वर्मा भारतीय समाज में स्त्रियों के लिए उचित स्थान की माँग करते हुए लिखती हैं—“हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुता चाहिए, न किसी का प्रभुत्व। केवल अपना वह स्थान, वह स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी। हमारी जागृति और साधना सम्पन्न बहिर्न इस दिशा में विशेष कार्य कर सकेंगी, इसमें सन्देह नहीं।”⁵

जाहिर है, महादेवी की सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि पारम्परिक भारतीय समाज में स्त्रियों को उसका सही स्थान कब मिलेगा जिसकी वे हकदार हैं और जिसके लिए वे सदियों से संघर्ष करती रही हैं। यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि वे मानती हैं कि स्त्रियों की मुक्ति की इस लड़ाई में स्त्रियाँ ही सबसे अधिक सहयोगी हो सकती हैं।

परन्तु हिन्दी साहित्य में स्त्रीवादी लेखन का विकास स्वाधीनता के बाद ही हो पाया। खासकर सन् 65 के बाद जब देश के अनेक हिस्सों में सामाजिक समस्याओं को लेकर तरह-तरह के जन-आन्दोलन हुए। कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्बदा और बाद में मृदुला गर्ग, ममता कालिया, मृणाल पाण्डे, चित्रा मुद्गल, मंजुल भगत, अर्चना वर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, अनामिका,

गीतांजलि श्री और कौशल्या बैसन्त्री स्त्रियों की नयी दुनिया लेकर हिन्दी समाज के सामने आती हैं, जिसमें सामाजिक रूढ़िवादी बन्धनों से मुक्ति की छटपटाहट तो है ही, साथ ही एक ऐसी ऐतिहासिक दुनिया रचने की आकांक्षा है, जहाँ पर स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के समकक्ष हों। कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी', मन्नू भण्डारी के 'आपका बन्टी', गीतांजलि श्री के 'माई' कौशल्या बैसन्त्री के 'दोहरा अभिशाप' आदि उपन्यासों में सामंती व्यवस्था, पुरुषवाद और रूढ़िवादी परम्पराओं की जकड़न से मुक्त स्त्रियों की एक नयी और ऐतिहासिक दुनिया की परिकल्पना है जहाँ वे स्वतंत्र होकर रह सकें। कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रो मरजानी' में भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति, उनकी जिन्दगी और आकांक्षाओं को 'मित्रो' के माध्यम से लेखिका ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—“मित्रो पहले सास को घूरती रही। फिर पालथी मारकर नीचे बैठ गई और मुण्डी हिला-हिला बोली, “भिगो-भिगोकर और मारो, अम्मा पाँच-सात क्या मेरे तो सौ-पचास होंगे”—ओंठों पर आड़ी-तिरछी कुटिल मुस्कान फैल गई। आँखे मटकाकर कहा, “मेरा बस चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूँ। पर अम्मा, अपने लाडले बेटे का भी तो आड़तोड़ जुड़ाओ, निगोड़े मेरे पत्थर के बुत में भी कोई हरकत तो हो।”⁶

इसी प्रकार मन्नू भण्डारी के उपन्यास 'आपका बन्टी' में स्त्री की एक अन्य स्थिति का उद्घाटन किया गया है—“तुम तो जानती हो, मैं बहुत साफ़ और दो टूक बात करने वाला आदमी हूँ। ज़रा सोचो, स्कूल के अलावा बन्टी सारे दिन तुम्हारे साथ रहता है या तुम्हारी उस फूफी के साथ। तुम्हारे यहाँ अधिकतर महिलाएँ ही आती होंगी, यानी इसकी क्या कम्पनी है? बहुत हुआ पड़ोस के एक दो बच्चों के साथ खेल लिया। पर एक आठ-नौ साल के ग्रीइंग बच्चे के लिए यह तो कोई बात नहीं हुई न। ही शुड ग्रो लाइक ए मैन।”⁷

इन दोनों संदर्भों में विवाह संस्था से उत्पन्न दो स्थितियाँ हैं जो भारतीय समाज में स्त्रियों की ज़िन्दगी में सन्तान के माध्यम से पुरुषवाद के वर्चस्व को प्रमाणित करती हैं। कृष्णा सोबती जहाँ सन्तान न होने के लिए सदियों से स्त्रियों को दोषी ठहराए जाने की दलील को चुनौती देती हैं वहीं मन्नू भण्डारी सन्तान की देखरेख में पुरुष के एकाधिकार को। ज़ाहिर है जिस समाज में सिर्फ पुरुष ही समस्त गतिविधियों का केन्द्र हो, वहाँ स्त्री हाशिये पर नहीं तो और कहाँ रहेगी।

अगर इतिहास को देखा जाए तो पता चलेगा कि पुरुषों ने स्त्री को आगे बढ़ने से रोका है। उसके विकास के मार्ग में अवरोध पैदा किया है, जिससे स्त्री जीवन में अनेक जटिलताएँ पैदा हुई हैं। स्त्री की पहचान के सन्दर्भ में पुरुष की अब तक की भूमिका की पूरी तरह कलई खुल गयी है। उसने स्त्री की अस्मिता को दबाये रखने के लिए अनैतिक और बेईमान तरीके अपनाए हैं तथा पाखण्ड किए हैं। सामाजिक, आर्थिक तथा संस्कृति के सैकड़ों स्तर ऐसे हैं जिनसे स्त्री को वंचित रखा गया है। इसीलिए जब स्त्री की अस्मिता की बात की जाती है तो सबसे जरूरी यह है कि पहले पुरुष स्वयं पितृ-सत्तात्मक संस्कारों से मुक्त हो। पुरुष स्त्री का स्वामी है, इस रूढ़ि से मुक्त हो। 'स्वामी' का भाव आते ही स्त्री को वह लगभग एक पालतू पशु में परिवर्तित कर देता है और उसे पालतू पशु की कोटि में डाल देता है। स्त्री की मुक्ति से पहले पुरुष की मुक्ति आवश्यक है। यदि वह अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त हो जाता है तो स्त्री स्वयं मुक्त हो जायेगी। उसकी मानसिकता स्त्री के विकास के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध है। यदि वह स्त्री के आगे बढ़ने के मार्ग से हट जायेगा तो वह स्वयं आगे बढ़ने का प्रयास करने लगेगी।

एक सवाल यह उठता है— मान लीजिए कि स्त्री को पूरी स्वतंत्रता मिल जाती है, तब क्या इतने भर से स्त्री को उसका अभीष्ट मिल जायेगा? नहीं, हमें

यह नहीं भूलना चाहिए कि स्वातंत्र्य अधिकार ही नहीं, एक चुनौती भी है। एक बहुत बड़ा जीवन-मूल्य भी है जिसकी रक्षा करना सरल नहीं होगा। स्त्री को स्वतंत्रता का उपयोग करना आना चाहिए। नये समय की नयी चुनौतियों का सामना करने के लिए स्त्री को तत्पर रहते हुए अपनी अस्मिता को नयी अर्थवत्ता प्रदान करने का प्रयास करना चाहिए। अपनी स्वतंत्रता का उपयोग करते हुए उसे अपनी प्रतिभा और संघर्ष के रास्ते आगे बढ़ना है।

साहित्यिक क्षेत्र पर प्रायः पुरुषों का एकाधिकार रहा है लेकिन जब साहित्य में महादेवी वर्मा का आगमन होता है तो स्थितियाँ बदलती हैं और फिर साठ के दशक और उसके बाद में स्त्री-विमर्श का अधिकांश इतिहास जागरूक होती हुई स्त्री का अपना रचा इतिहास है। नगरों एवं महानगरों में शिक्षित एवं नवचेतनायुक्त स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया, जो समाज के विविध क्षेत्रों में अपनी कार्य क्षमता प्रमाणित करने के लिए उत्सुक था। उसकी कुशाग्र मेधा ने सर्जनात्मकता की अपनी अपार क्षमताओं को पहचाना और स्त्री-विमर्श का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य स्वचेतना की विविध आन्तरिक एवं बाह्य धाराओं से सिंचित होने लगा।

स्त्री-मुक्ति से जुड़े अनेक प्रश्न, उन प्रश्नों से जुड़ी उसकी सामाजिक, परिवारिक और आर्थिक बेबसी और उससे उत्पन्न स्त्री की मनःस्थिति का चित्रण अनेक स्तरों पर हुआ। उसने घर से बाहर कदम रखा था। अतः स्त्री की रचनात्मकता में अन्तर्जगत और बाह्यजगत की कठोर भूमि पर हो रहे संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार स्त्री लेखन की मूल संवेदना स्त्री-मुक्ति के प्रश्नों से बड़ी गहराई के साथ जुड़ गई। महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, अमृता प्रीतम, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, आशापूर्णा देवी, महाश्वेता देवी, इस्मत चुगताई आदि नाम बार-बार लिए जा सकते हैं।

‘अतीत के चलचित्र’, ‘स्मृति की रेखाएँ’ और ‘शृंखला की कड़ियाँ’ नामक गद्य रचनाओं में महादेवी वर्मा ने स्वतंत्रतापूर्व की भारतीय स्त्री के बहुत से चित्र अंकित किए हैं। महादेवी वर्मा स्त्री के उस रूप की चर्चा करती हैं जो अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही है। उपेक्षित एवं उत्पीड़ित नारी की आन्तरिक वेदना का मार्मिक आख्यान भी वे प्रस्तुत करती हैं, “अनेक बार नारी की बाह्य परिस्थितियों के परिवर्तन की ओर ध्यान न देकर मैं उसकी शक्तियों को जाग्रत करके परिस्थितियों में साम्य लाने वाली सफलता सम्भव कर सकती हूँ। समस्या का समाधान समस्या के ज्ञान पर निर्भर है और यह ज्ञान ज्ञाता की अपेक्षा रखता है।”⁸

अपनी जिन विशेषताओं की रक्षा स्त्री करती आई है पुरुष वर्ग उसकी उन्हीं विशेषताओं को अपने सुख और वर्चस्व की प्रतिष्ठा के लिए अपने हक में भुनाता रहा है। मर्यादा, लज्जा और शालीनता की दुहाई देकर उसकी क्षमताओं और आकांक्षाओं को कैद करता रहा है। इसी के चलते स्त्री क्षीण से क्षीणतर होती चली गई।

सन् सत्तर और अस्सी के दशक में लेखिकाओं ने जैसे पूरे आकाश को अपनी मुट्ठियों में भर लेना चाहा। इस समय स्त्रियों के जीवन से जुड़े अनेक सवाल जैसे—विवाह समस्या, बेमेल विवाह, दहेज समस्या, विधवा—विवाह आदि को लेकर विश्व-भर में हलचल मची थी। जूलिया क्रिसतोबा, जर्मेन ग्रीयर, सिमोन व बोउवार और हिन्दी की प्रबुद्ध लेखिकाएँ स्त्री को सिर्फ लिंग के कारण महत्त्व न देने और इसी कारण उसका दमन करने का विरोध करती हैं। लिंग को आधार बनाकर मनीषा लिखती हैं—“औरतों के पास क्योंकि लिंग नाम का हथियार नहीं, सिर्फ इसलिए वह दायम नहीं हो सकतीं। संस्कृति परम्पराओं और मर्यादा के नाम पर औरतों के भावात्मक शोषण की जड़े इस कदर गहरी हैं कि वे इन्हीं संकीर्णताओं और

कायदे-कानूनों के बीच अपनी 'स्वतंत्रता' के छोटे-मोटे जश्न मना लेती है। औरत के अभाव में परिवार नहीं बसता पर इस परिवार नाम की संस्था का मुखिया मर्द ही होता है, चाहे वह उम्र में सबसे छोटा ही क्यों न हो।"⁹

स्त्रियों के बहुआयामी जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं को कतरा-दर कतरा निचोड़ता हुआ रेशा-दर-रेशा बुनता हुआ साहित्य उनकी ज़िन्दगी के अंधेरे कोनों में सूर्य रश्मियों की भांति घुस कर आर-पार देखने का जोखिम उठा रहा है। बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक से प्रारम्भ हुआ महादेवी वर्मा या उर्दू लेखिका इस्मत चुगताई का कथा-लेखन उस समय स्त्री के पक्ष में जाँच-पड़ताल और विचार-विमर्श कर रहा था, जब पश्चिम के नारीवादी आंदोलन का कहीं अता-पता भी नहीं था। सामंती ढाँचे के अन्तर्गत समूची स्त्री जाति के उपेक्षित जीवन की पीड़ा को चुगताई बचपन से ही महसूस करती आई थी। सामाजिक वर्जनाओं और नैतिक अनैतिक विधि निषेधों से छलनी होते हुए कुंठापूर्ण वजूद को थोड़ी-सी आज़ादी देकर और उसके होठों पर लगे तालों को तोड़ कर चुगताई ने रचनात्मक स्तर पर युग की स्त्री को जुबान देने का प्रयास किया। लेखन जगत में तूफान खड़ा कर देने वाली 'लिहाफ़' इस संदर्भ में एक चर्चित कहानी है।

इस प्रकार स्वतंत्र भारत की स्वावलम्बी स्त्री की चेतना में निरंतर परिवर्तन होते रहे जिनके चलते महानगरीय स्त्री अनेक रूपों में प्रकट हुई। स्त्री स्वचेतना और स्त्री-विमर्श से जुड़ी प्रसिद्ध लेखिका चित्रा मुद्गल के दो उपन्यास हैं—'एक ज़मीन अपनी' और 'आवाँ'। दोनों उपन्यासों में लेखिका ने मुक्तिकामी, स्त्री की दशा, दिशा और छवि पर गम्भीरतापूर्वक विचार-विमर्श करते हुए बहुत से प्रश्न उठाए हैं। मीडिया के सारे माध्यम विशेषकर विज्ञापन आदि पुरुषों के सामंती दृष्टिकोण से अनुकूलित हैं। स्त्री के अंग-प्रत्यंग मुद्रा-चेष्टा और हाव-भाव को इस

व्यवसायी सामंती समाज ने अपने हितों के चलते ऐसे निर्लज्ज रूप में पेश किया है कि एक सोची-समझी नीति के तहत उसे चकाचौथ उत्पन्न करने वाली एक वस्तु के रूप में बदल दिया गया है। उपन्यास की एक पात्र 'नीता' एक स्वच्छन्द-स्वतंत्र युवती है। परंपरा विरोधी, प्रतिक्रियावादी। जिसे वह आधुनिकता कहती है उसका बेबाक खुलासा एक अन्य युवती पात्र 'अंकिता' इस प्रकार करती है—“मैं तो विशेष रूप से इस बात को रेखांकित करना चाहती हूँ कि स्त्री मर्द बन कर समाज में समानता चाहती हैं, स्त्री बने रह कर क्यों नहीं? स्त्रीत्व के गुणों को बरकरार रखते हुए..... संघर्ष का यह ग़लत मोड़ है नीतू। चेतने की ज़रूरत है। स्त्री को स्त्रीत्व से मुक्ति नहीं चाहिए। उन रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए जिन्होंने उसे वस्तु बना रखा है... तुम वर्जनाहीनता के तर्क से लैस होकर पुरुष की उसी पिपासा को संतुष्ट करने जा रही हो, जो स्त्री को भोग की वस्तु मानकर उसे इस्तेमाल करता आया है। यह शुद्ध काम संबंधों की सुविधा है।.....”¹⁰

नीता जैसी स्त्रियाँ स्वतंत्रता और वर्जनाहीन समाज की खोज में जिस दिशा में जा रहीं हैं उसका परिणाम एक अवैध बच्चे को जन्म देकर और फिर नींद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या करना ही है। तो स्त्री ने क्या पाया और उससे समाज का कौन सा पक्ष छूट रहा है? यह एक बड़ा प्रश्न है। इस भयावहता को स्त्री ही महसूस कर सकती है।

इसी क्रम में नासिरा शर्मा के उपन्यास 'शाल्मली' में स्त्री-मुक्ति की अवधारणा उपन्यास की मुख्य पात्र 'शाल्मली' के माध्यम से उजागर होती है। 'शाल्मली' अपनी मित्र सरोज से कहती है—“मेरी नजर में सही नारी-मुक्ति और स्वतंत्रता, समाज की सोच और स्त्री की स्थिति को बदलने में है। बाहर निकलो या घर में रहो, हर स्थान पर पुरुष तुमसे टकराएगा। तलाक़ लेना समस्या का समाधान

नहीं है। स्त्री-पुरुष के संबंधों की सामाजिक परिकल्पना को ही बदलना है।¹¹

पुरुषवादी स्त्री चेतना व बौद्धिकता की साकल्ल खटखटा कर उन्हें जगाना नहीं चाहते, बल्कि उन्हें अपनी परंपराओं की याद दिला कर आज भी सीता, सावित्री बनने की कामना करते हैं। इसीलिए पुरुष-वर्चस्ववादी धारणा के तहत स्त्री के जटिल संघर्ष व गुलामी की कथा का सही-सही बयान असंभव सा हो जाता है। पुरुष को स्त्री से उसके उन अधिकारों के दायरे में बने रहकर, जो पुरुष समाज द्वारा दिए गये हैं, कठोर जीवन जीने व त्याग करने की उम्मीद ज्यादा की जाती है। उसका अहंकार औरत की आजादी का पूर्ण हिमायती नहीं बनना चाहता। रोने-धोने की परंपरा अब स्त्री-चेतना का एक कमजोर स्वर बन चुकी है। इस कमजोर स्वर को चुनौतियों से जूझना है, अपना अधिकार प्राप्त करना है। जो मनुष्य होने के नाते उन्हें बहुत पहले मिल जाना चाहिए था।

स्त्रियों को समाज में स्थान दिलाने और पुरुष वर्चस्व से स्त्रियों को आजाद करने के लिए मृदुला गर्ग अपने लेख 'स्त्री विमर्श से दूर स्त्रीवाद' में लिखती है कि "स्त्रीवाद शुरू से हर जगह आंदोलन की तरह उभरा। फिर आंदोलन को बल और आधार देने के लिए विचारधारा ने जन्म लिया। अब चूंकि लिंग दो ही है इसलिए जो आघात, स्त्रियों ने स्त्री होने के अलावा वर्ग या जाति विशेष की सदस्या होने के नाते सहे हैं, उनका संबंध सत्ता और व्यवस्था से है। चूंकि सत्ता में पुरुष का वर्चस्व रहा है इसलिए यह संबंध भी पुरुष से जा जुड़ा है। स्त्रीवाद का मुख्य मुद्दा स्त्री को वे अधिकार दिलवाना है जो पुरुष को प्राप्त हैं, पर स्त्री को नहीं।"¹²

स्त्री अपनी लड़ाई आँसुओं के माध्यम से नहीं बल्कि पूरे साहस के साथ लड़ना चाहती है। वह निरंकुश समाज और सत्ता के चरित्र का पर्दाफाश करना चाहती है। स्त्री रचनाकारों के साहित्य में उनके तीखे स्वर उभर कर आए हैं। यह

अपने आप ही स्त्री पर लगाए गए बंधनों को उजागर कर देता है। हालांकि बहुत सारी स्त्री रचनाएँ अपने आक्रोश के तीखे तेवर को एक समन्वयवादी दृष्टिकोण के तहत डूबने-उतरने को छोड़ देती हैं। इसलिए ऐसा लगता है जैसे स्त्रियों द्वारा रचा गया साहित्य भी स्त्री-विमर्श को सही तरह से उजागर नहीं कर सका है। “बिना किन्ही आंदोलनों या वैचारिक बहस के आधुनिकीकरण की दौड़ में भागती-फिरती हम औरतों की भीड़ अभी तक अपना मुकाम नहीं तय कर पाई है।”¹³

भारत में स्त्री-विमर्श के अनेक पहलू सामने आये हैं। इसमें एक तसलीमा नसरीन का पहलू है और इस पहलू के कई-कई पहलू हैं, जो शोभा डे, सरलादास के तर्कों में दिखाई पड़ते हैं। दूसरी ओर कमल, चित्रा मुद्गल, पुष्पा शर्मा, अनामिका जैसी सैकड़ों हिन्दी लेखिकाओं की पुरुष स्त्री-भेद से जुड़ी परिकल्पना में दिखायी पड़ते हैं। साहित्य में स्त्री-विमर्श पर सृजनात्मक साहित्य लिखने की जिम्मेदारी मुख्यतः स्त्रियों की मान ली गयी है। वे कई बार स्त्री जाति का सच न लिखकर आरोपित सच लिखने लगती हैं। इस ओर संकेत करते हुए ममता कालिया ने लिखा है—“साहित्य का स्पेस आज अन्तर्राष्ट्रीय बल्कि वैश्विक है। ऐसे समय में महिला-लेखन में स्त्री कार्ड खेलना खतरनाक सिद्ध हो सकता है। हम सब साथी सर्जक जो समानता, सुयोग्यता और सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के संघर्ष में साधनारत हैं, महिला होने की दूर का साथ नहीं लेना चाहते। सृजन की स्पर्धा में अचानक स्त्री-कार्ड खेल डालना वैसा ही है जैसे चुनाव के समय जाति-कार्ड खेलना।”¹⁴

नारी के संदर्भ में विविध काल-खंडों का ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय निष्कर्ष निकाला जाए तो कहना पड़ेगा कि चाहे कोई युग रहा हो, पुरुषवादी समाज ने स्त्री जाति को श्रम करने और भोग करने के उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया है। आज भारतीय समाज में नारी, साहित्य में नारी, कला में नारी, वेद और पुराण में नारी

जैसे प्रचारी विषयों को लेकर जितना भी लिखा जा रहा है, वह सभी नारी-सांत्वना पुरस्कार के पुरुषवादी वितरण से अधिक कुछ नहीं है। स्त्री के अधिकारों को लेकर मनीषा ने लिखा है—“आज की शिक्षित, कामकाजी औरत भी मर्द की बराबरी पर नहीं खड़ी है। इसका सीधा-सा सामाजिक कारण है, उसे उसके हिस्से के अधिकारों से वंचित रखना। औरत को अधिकार देने के नाम पर क़ानून तो तमाम बनाए गए हैं, परन्तु उन पर अमल यदि 50 प्रतिशत भी हो पाता तो आज स्थिति इतनी विषम न होती।”¹⁵ आज के परिवेश ने नारियों को यह सोचने के लिए विवश कर दिया है कि उन्हें भी उन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक मूल्यों की प्राप्ति हो जिन्हें पुरुषों ने परंपरा से अपने लिए सुरक्षित कर लिया है। आज भी नारी-समाज विवशता की परिधि से बाहर नहीं निकल सका है। नारियों के स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन तो हैं लेकिन उनमें क्रान्ति करने की क़ूवत नहीं आई है। नारियाँ आपस में विभाजित हैं। पुरुषों द्वारा बनाए गए राजनैतिक संगठन इन्हें विभाजित अवस्था में रखकर इन पर अपना अधिकार कायम करने के नये-नये हथकंडे प्रयुक्त कर रहे हैं।

स्त्री-विमर्श को पुरुषों ने अपनी सुविधा के अनुसार व्याख्यायित करना शुरू कर दिया है जैसे यह उनकी सोची समझी चाल हो। इसी को लेकर ममता कालिया लिखती हैं—“पिछले कुछ दशकों से स्त्री-विमर्श एक अजीब शक़ल अख़्तियार कर रहा है खुद स्त्रियों की ही समझ में नहीं आ रहा है कि वे अब तक के अपने पढ़े लिखे को भूलकर कैसे इस नये ढंग में ढलें। ऐसा लगता है नारी-विमर्श का ठेका उठा लिया गया है। बौद्धिक ठेकेदारी के अन्तर्गत कुछ बुद्धिजीवी तय कर रहे हैं कि स्त्री को क्या सोचना-बोलना है, क्या लिखना है, कब चुप लगानी है, कितना विद्रोह करना है, किसका समर्थन करना है। अर्थात् कमान फिर पुरुष के हाथ में चली गई

है।¹⁶

नारी को गुलाम बनाने में सफल होकर पुरुष ने नारी को उन गुणों से वंचित कर दिया, जो उसे अधिक वांछित बना सकते हैं। समाज और परिवार के बंधनों के बीच नारी की मोहिनी शक्ति नष्ट हो गयी, वह दास-स्वरूप बन गयी। वह एक अजेय शक्ति नहीं रही, जिसमें प्रकृति की सभी निधियाँ निहित हो। इसी बात को प्रभा खेतान ने 'स्त्री: उपेक्षिता' नामक पुस्तक के 'प्रस्तुत संदर्भ' में इस प्रकार रेखांकित किया है— 'स्त्री को अमीर हो या गरीब, श्वेत हो या काली, अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। यह दुनिया पुरुषों ने बनाई, पर स्त्री से पूछकर नहीं। फ्रांस की राज्य-क्रांति हो या विश्व-युद्ध स्त्री से पुरुष सहारा लेता है। और पुनः उसे घर लौट जाने को कहता है। वह सदियों से ठगी गई है। यदि उसने कुछ स्वतंत्रता हासिल भी की है, तो उतनी ही, जितनी कि पुरुष ने अपनी सुविधा के लिए उसे देना चाहा।'¹⁷

स्त्री-मुक्ति आंदोलन और स्त्रीवादी चेतना के फलस्वरूप नारी जीवन में एक नयी ऊर्जा दिखायी पड़ी एक नई चमक आयी। इसका प्रभाव दुनिया-भर की लेखिकाओं पर पड़ा। पुरुष-लेखन के वर्चस्व को चुनौती देती हुई स्त्रियों की एक लाईन खड़ी है—विश्व-स्तर पर देखे तो महाश्वेता देवी, अनिता देसाई, प्रतिभा राय, अरुंधती राय आदि स्त्री की समस्याओं को उजागर कर रही हैं। स्त्रीवादी लेखन को लेकर वर्जीनिया वुल्फ ने लिखा है—'स्त्री का लेखन, स्त्री का होता है, स्त्रीवादी होने से बच नहीं सकता। अपने सर्वोत्तम में वह स्त्रीवादी ही होगा।'¹⁸

समाज की मुख्यधारा में शामिल हुए बिना केवल निजी समस्याओं का रोना स्त्री-विमर्श का लक्ष्य नहीं होना चाहिए। उनके संघर्ष के लिए इतने सारे मुद्दे हैं। समाज, संसद, सत्ता, सम्पत्ति, कानून, धर्म, दर्शन सब मर्दों के चुंगुल में हैं। हमारी

कोशिश होनी चाहिए कि राजनीति, अर्थनीति और विधि नीतियों में हमें निर्णयकारी स्थान और अवसर दिये जाए। स्त्री-अधिकारों को ध्यान दिलाते हुए 'सिमोन द बोउवार' लिखती हैं—“एक ऐसी दुनिया, जिसमें स्त्री-पुरुष के अधिकार समान हों, अब हमारे सोच और चिन्तन का मुख्य विषय है। सोवियत संघ इसका प्रमाण है, जहाँ स्त्री और पुरुष को एक ही तरह का काम करना पड़ता है। यदि स्त्रियाँ अधिक शक्ति की माँग करने वाले कार्य नहीं कर सकती तो ऐसी स्थिति कई पुरुषों की भी होती है।”¹⁹

स्त्री-साहित्य व्यक्ति के वरण की स्वतंत्रता और स्वायत्ता का साहित्य है जहाँ प्रजातंत्रात्मक मूल्यों की स्थापना की गई है। समता, स्वतंत्रता, सौहार्द, वर्गहीन मानवतावाद के सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। स्त्रीवादी साहित्य एक ऐसा साहित्य है जो समाज, वर्ग, नस्ल, जाति, राष्ट्र आदि की संकुचित सीमाओं को पाट देता है। वास्तव में जहाँ भी दमन है, आतंक है, संताप और शोषण है वहाँ उसके विरोध में स्त्री-साहित्य है। जर्मन ग्रीयर ने अपनी पुस्तक 'विद्रोही-स्त्री' के 'सार-संक्षेप' में स्त्रियों की स्थिति और उनके कर्तव्य को आधार बनाकर कहा है—“हम जानती हैं कि हम क्या हैं, लेकिन हम यह नहीं जानती कि हम क्या हो सकती हैं या हो सकती थी। विज्ञान की मतांधता यथास्थिति को नियम के अपरिहार्य परिणाम के रूप में अभिव्यक्त करती है: स्त्रियों को, स्त्रैण सामान्यता की एकदम मूलभूत मान्यताओं के बारे में प्रश्न करना सीखना होगा ताकि विकास की वे संभावनाएँ जिन्हें अनुकूलन द्वारा लगातार बंद रखा गया है, फिर से खोली जा सकें।”²⁰

इस प्रकार हम स्त्री-विमर्श की भूमिका में देखते हैं कि संसार भर में लिखा जा रहा स्त्री-साहित्य पुरुष की निरंकुशता के विरुद्ध और समाज में सामंतवादी

ढाँचे के खिलाफ रचा जा रहा है। ये साहित्य अपनी सत्ता के प्रति सचेत होने का साहित्य है। अस्तित्व के तलाश की यात्रा है जो हिंसा, अन्याय सहते-सहते कहीं खो गया था। दलित साहित्य में दलित की इंसानी पहचान के लिए वैचारिक आंदोलन हुए हैं। स्त्री की स्थिति दलित से भी दलित की है। स्त्री-साहित्य की आधार भूमि मानवीय मूल्य और मानवीय जीवन बोध है। इस प्रकार स्त्री-विमर्श का साहित्य हिंसा, उत्पीड़न, अत्याचार, आर्थिक और सामाजिक विषमता तथा वर्गभेद के विरोध में है।

(ग) साहित्य और स्त्री-छवि :

1. पूर्व-आधुनिक साहित्य में स्त्री-छवि:

आज के समय आधुनिक युग में स्त्री-विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा हो गया है। यह आज के समय में एक तरह से अब तक की परिभाषित स्त्री की भूमिका को बदलने वाला विमर्श भी है। स्त्री-विमर्श आधुनिक युग की देन है इससे इंकार नहीं किया जा सकता। इस विमर्श ने शताब्दियों से चली आती स्त्री छवि को तोड़कर उसे आधुनिक समाज में एक अलग स्थान दिया है। प्रसन्नता की बात यह है कि स्त्रियों को समाज में स्थान दिलाने में जितनी मेहनत खुद स्त्री वर्ग ने की है उतनी ही भूमिका पुरुष वर्ग की भी है लेकिन स्त्री-विमर्श पर बात करने से पहले आधुनिक युग से पूर्व भारतीय समाज में स्त्री की क्या स्थिति थी इस पर भी बात करना आवश्यक हो जाता है।

भारतीय संस्कृति एक विशाल संस्कृति हैं इसे परिभाषित करना कठिन है। यह लगातार गतिमान रही है भारतीय संस्कृति ने अपने अन्दर बहुत सी संस्कृतियों को समाहित कर लिया है इस संस्कृति को बनाये रखने में भारतीय स्त्री का भी बहुत योगदान है। उसने अनेक दुख-दर्द झेलकर भी इस संस्कृति की गरिमा को उच्च आसन

पर पहुँचाया। भारतीय स्त्री की जीवन जीने की कला उसकी धर्य और संस्कृति के प्रति आस्था और विश्वास ने सदैव उसके आचरण का रूप निर्धारण किया है। जब भी भारतीय समाज पर कोई भी संकट आया है स्त्रियों ने भी समाज की रक्षा में स्वयं को पीछे नहीं रहने दिया है उन्होंने भारतीय समाज को उजाले की ओर प्रशस्त करने का प्रयास किया है। हर युग में वह माता, सखी, प्रेयसी, पत्नी और पुत्री किसी न किसी रूप में प्रेरक और सहायक रही है।

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही स्त्रियों के प्रति सम्मान की भावना विद्यमान रही है। परिवार और समाज में स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले योगदान का सदैव महत्त्व रहा है लेकिन युग परिवर्तन के साथ-साथ स्त्री की स्थिति में भी बदलाव आता रहा है लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है—“भारतीय समाज में नारी का स्थान सदैव एक सा नहीं रहा। परिवर्तित परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार उसकी स्थिति में भी अनेक परिवर्तन हुए। मुसलमानी आक्रमण से पूर्व नारी की जो स्थिति भी वह बाद को बनी न रह सकी।”²¹ स्त्री की स्थिति में वैदिक युग से लेकर आज तक अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। वैदिक युग की बात करें तो इस युग में पिता परिवार का प्रमुख होता था। पर इस काल में माता अथवा गृह-पत्नी का स्थान गौण नहीं था। माता के रूप में गृह-पत्नी का पद अत्यन्त प्रशंसनीय था लेकिन वैदिक ऋषियों ने देवताओं को पुरुष के रूप में ही स्वीकार किया। इस काल में स्वतंत्र रूप से युवक-युवतियाँ मिला करते थे। कुमारियाँ अपने मन से विवाह कर लेती थी। सामाजिक, धार्मिक तथा युद्ध आदि के क्षेत्र में स्त्रियों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। लेकिन इस युग में स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकारी न होना वास्तविक कष्ट का कारण था। इस समय स्त्री धन के रूप में संभवतः कोई वस्तु नहीं थी जिस पर स्त्री का एकमात्र अधिकार हो। वैदिक युग के लिए उषा पाण्डेय की युक्ति

है—“उस समय (वैदिक युग) के समाज का आधार पितृ सत्ताप्रधान परिवार था पुरुष और नारी विवाह के अविच्छिन्न पवित्र संस्कार के बंधन में बद्ध हो जीवन-पथ पर अग्रसर होते थे।.. सामाजिक जीवन में स्त्रियों को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था। यह उन्मुक्त प्रेम का युग था। वैदिक संस्कृति में स्त्रियाँ पुरुषों के ही समान उच्च शिक्षा प्राप्त करती थी। वेद और शास्त्रों में पारंगत होने के अतिरिक्त वे ऋचाओं की रचना भी करती थीं।”²²

उत्तर वैदिक काल से ही हमें स्त्रियों की स्थिति में हास होता दिखाई पड़ता है। इस काल की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के लिए जो प्राप्त सामग्री है, उसमें कभी-कभी आन्तरिक मतभेद दिखाई पड़ता हैं जिससे कुछ स्थानों पर स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के अनुसार दिखाई पड़ती है और कहीं-कहीं स्त्रियों का जीवन-निर्वाह निम्न स्तर का लगता है। इस काल में स्त्रियों को शैक्षिक सुविधाएँ पुरुषों के समान ही उपलब्ध थीं। शिक्षित कन्याओं के लिए विशेष अनुष्ठान का आयोजन किया जाता था। उत्तम पति की प्राप्ति के लिए स्त्रियाँ देवताओं की स्तुति करती थीं। अशिक्षित कन्याओं की स्थिति अच्छी नहीं थी। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति पर निष्कर्ष देते हुए डॉ० उषा पाण्डेय ने लिखा है—“यद्यपि अब भी समाज में नारी को समादरणीय स्थान प्राप्त था, उसे पुरुष की समानता प्राप्त थी। विवाह में पति निर्वाचय की स्वतंत्रता थी। बाल-विवाह का प्रचार नहीं था, बौद्धिकता में भी पुरुषों से हीन न थी, तो भी इस युग में उसकी अवस्था में क्रमिक हास होने लगा था और कन्या का जन्म दुख का कारण समझा जाने लगा था।”²³

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक और उत्तर-वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के बराबर रही हैं पितृसत्तात्मक होते हुए भी समाज में स्त्री का आदरपूर्ण और स्नेहपूर्ण स्थान था। डॉ० गजानन शर्मा ने वैदिक युग में पितृ सत्ता का

वर्णन करते हुए लिखा है—“मातृसत्तात्मक परिवार का वर्णन वैदिक साहित्य में नहीं मिलता। पिता की स्थिति इतनी ऊँची थी कि देवों की उपमा भी पिता से ही दी जाती थी। वेदकालीन पितृप्रधान समाज में पुत्र, पुत्री, पत्नी तथा पुत्र-बधू सब गृहपति की छत्र-छाया में रहते थे। मुखिया होने के कारण भी पिता का ही सम्पत्ति पर भी एकाधिकार माना जाता था। इतना ही नहीं, उसे परिवार के प्राणियों पर भी असाधारण अधिकार प्राप्त थे।”²⁴

सूत्रों एवं स्मृति काल में स्त्रियों की स्थिति और भी दयनीय हो गयी थी। स्त्रियों पर अनेक प्रकार के अंकुश लगा दिये गये जिससे स्त्रियों की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं पर बंधन लग गये। स्त्री जन्म से मृत्यु तक पुरुषों के नियन्त्रण में ही रहने को बाध्य की गई। कन्या, माता और पत्नी जैसी स्थितियों में वह क्रमशः पिता, पुत्र और पति द्वारा नियंत्रित मानी गई। पुरुषों द्वारा इस नियंत्रण के लिए स्त्री की सुरक्षा का तर्क दिया गया। स्त्रियों के संबंध में जो वैदिक मान्यताएँ थी वह यहाँ तक आते-आते बहुत कुछ परिवर्तित हो गयी थी। परिवर्तित परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार स्त्री की स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए। इससे घर के अन्दर समानता की वह भावना नहीं रह गयी जो पहले से चली आ रही थी। यद्यपि कुछ ऐसी हिन्दू स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने राजनीति तथा प्रशासनिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परन्तु स्त्री को समाज में उसका न्यायपूर्ण स्थान नहीं दिया गया। स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया गया। धीरे-धीरे उनके जो अधिकार बचे थे उन्हें भी हरण कर मानसिक रूप से दुर्बल बनाया गया। स्त्रियों की स्थिति को गिराने में शास्त्रकारों ने प्रमुख भूमिका निभायी। धर्म और संस्कृति के नाम पर उन पर अनेक कठोर प्रतिबन्ध लगाए गए। डॉ० भवदेव पाण्डेय ने स्मृति काल का वर्णन करते हुए लिखा है—“स्मृति काल में सामूहिक मत के तहत जो स्त्री नीति बनाई गई उसमें स्त्री को पराधीन रखते हुए उसके लिए

केवल कर्त्तव्यों का ही विधान किया गया। घर के सदस्यों और अतिथियों के लिए भोजन तैयार करना, बर्तन माँजना, झाड़ू लगाना, घर की वस्तुओं को सुरक्षित रखना, संतान उत्पन्न करना और उनका पालन-पोषण करना और इन सबसे ऊपर पति-सेवा करना स्त्रियों का अनिवार्य कर्त्तव्य बतलाया गया।²⁵

परम्परागत भारतीय सभ्यता की जानकारी के लिए रामायण और महाभारत का भारतीय साहित्य में बहुत महत्त्व है दोनों ग्रन्थों को बड़े ही आदर और सम्मान से देखा जाता है। रामायण की रचना वाल्मीकि ने मानव-जीवन में सर्वोच्च आदर्श की शिक्षा प्रदान करने के अभिप्राय से की थी। महाभारत में भी न केवल कौरव-पाण्डवों के मध्य युद्ध का वर्णन है बल्कि उस काल के समस्त क्षेत्रों पर भी उसके द्वारा प्रकाश पड़ा है। वैदिक कालीन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति और भी बदल गयी अर्थात् और भी बद से बदतर हो गयी। समाज में उसका मान-सम्मान कम हो गया था। वो भोग-विलास की सामग्री समझी जाती थी। बहु-विवाह की प्रथा भी मिलती है। उच्च कुल के लोग कई पत्नियाँ रखते थे। सती प्रथा का भी प्रचलन प्रारंभ हो गया था। उषा पाण्डेय ने लिखा है—“महाभारत में नारी के ये दो रूप स्पष्ट हैं—एक ओर नारी को अनन्त गौरव और सम्मान की पात्री बताया गया, दूसरी ओर उन्हें व्याभिचारिणी, पाप और अब दोषों का मूल बताया गया है। इस काल में बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। नैतिकता के मापदण्ड परिवर्तित हो गए थे। स्त्री के भी कई पति होते थे स्त्री के लिए पतिव्रत ही सर्वोच्च धर्म, पूजा, उपासना एवं स्वर्ग प्राप्ति का साधन था।²⁶

महाभारत में स्त्री को धर्म, अर्थ और काम का मूल बताया गया है। मनुस्मृति तथा महाभारत में ग्रहणी पद का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। महाभारत में स्त्री को अवध्य बताया गया है। रामायण में भी रावण ने सीता का वध नहीं

किया, कारण यह था कि स्त्री वध नैतिकता के विरुद्ध था। मनु ने भी स्पष्ट रूप से लिखा है कि जिस कुल में नारी को अपमानित किया जाता है, उस कुल का विनाश हो जाता है। मनुस्मृति तथा महाभारत में पतिव्रता के आदर्श की प्रशंसा की गई है।

वैदिक और उत्तर वैदिक काल में समस्त अधिकारों से वंचित स्त्री को बौद्धकाल में कुछ अधिकार मिलने लगे थे। ब्राह्मणों के कर्मकाण्डों में पुत्रवती ही केवल भाग ले सकती थी। बुद्ध द्वारा इस बात का खंडन किया गया जिससे विधवाओं आदि की स्थिति में अन्तर आया। महात्मा बुद्ध द्वारा ब्राह्मणों की इस बात का भी विरोध किया गया कि जो स्त्री पुत्र पैदा करती है उसे ही स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है। इस विरोध से पुत्र की तुलना में अत्यन्त दीन और हीन दयनीय पुत्री की स्थिति में अन्तर आया। बौद्ध-धर्म का द्वार विवाहित, अविवाहित, विधवा, वैध्या, वेश्या और पतिता सभी के लिए उन्मुक्त था। दीक्षा लेने के बाद उसके प्रति किसी प्रकार की अनादर भावना नहीं रह जाती थी। रोमिला थापर ने अपने इतिहास ग्रन्थ 'भारत का इतिहास' में बौद्ध धर्म का वर्णन करते हुए लिखा है—“यह मूलतः एक सामूहिक धर्म था और इसमें भिक्षु प्रणाली का सूत्रपात किया गया। भिक्षु उपदेश देते तथा भिक्षा ग्रहण करते हुए स्थान-स्थान पर घूमते थे, जिससे इस धर्म को प्रचारात्मक स्पर्श मिल गया। आगे चलकर भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के लिए विहारों का निर्माण नगरों के निकट किया गया, जिससे उन्हें भिक्षाटन में सुविधा हो गई। बौद्ध-विहारों के निर्माण से शिक्षा का प्रसार बढ़ा, क्योंकि ब्राह्मणों के अतिरिक्त ये भी अब शिक्षा के स्रोत बन गए। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि, चूँकि वे समाज के हर वर्ग के स्त्री-पुरुषों को भिक्षुणी तथा भिक्षु बना लिया करते थे इसलिए, शिक्षा केवल कुछ उच्चस्थ लोगों तक ही सीमित नहीं रही। इस बात को दृष्टि में रखते हुए कि ब्राह्मण रुढ़िवादिता धीरे-धीरे स्त्रियों की गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने का प्रयत्न कर रही थी, स्त्रियों

को भिक्षुणियों के रूप में स्वीकार करना उनकी अवस्थिति के विचार से एक क्रांतिकारी कदम था।²⁷

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि बौद्ध धर्म ने अपने सर्वजन हिताय वाले सिद्धान्त से स्त्री की स्थिति में सुधार किया लेकिन समय के साथ भिक्षु संस्थाओं में स्त्रियों के ऊपर अनेक प्रतिबन्ध लगाए गए। व्यस्क एवं योग भिक्षुणी को भी अपने से लघु भिक्षु के समक्ष झुक कर नमस्कार करना पड़ता था। एक भिक्षुणी किसी भी परिस्थिति में भिक्षु की अवज्ञा नहीं कर सकती थी। बुद्ध के जीवन की किवदंती के साथ-साथ महात्मा बुद्ध की पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल के जीवन की भी किवदंतियों का वर्णन मिलता है। बुद्ध-विहारों में भी भिक्षुणियों का वर्णन मिलता है वह सब-भिक्षुओं के अनुकरण मात्र हैं उनका न तो अलग व्यक्तित्व मिलता है न ही किसी प्रकार के योगदान का वर्णन मिलता है। लेकिन बुद्ध की गोपा एक स्वतंत्र स्त्री है और वह अपने अधिकार और कर्तव्यों के प्रति भी सचेत है। इस बात का वर्णन महादेवी वर्मा ने इस प्रकार किया है—“त्यागी बुद्ध की करुण कहानी की आधार सती गोपा भी केवल उनकी छाया नहीं जान पड़ती, वरन् उसका व्यक्तित्व बुद्ध से भिन्न और उज्ज्वल है। निराशा में, ग्लानि में और उपेक्षा में वह न आत्महत्या करती है, न वन-वन पति का अनुसरण। अपूर्व साहस-द्वारा अपना कर्तव्य-पथ खोज कर स्नेह से पुत्र को परिवर्धित करती है और अन्त में सिद्धार्थ के प्रबुद्ध होकर लौटने पर धूलि के समान उनके चरणों से लिपटने न दौड़कर कर्तव्य की गरिमा से गुरु बनकर अपने ही मन्दिर में उनकी प्रतीक्षा करती है।”²⁸

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में स्त्री की स्थिति का जो वर्णन मिलता है वह बौद्ध धर्म के विचारों से संबद्ध है चाहे वह सिद्ध हो, नाथ हो या फिर जैन। हर किसी ने स्त्री के अधिकारों और सीमाओं का वर्णन अपने-अपने अनुसार किया है।

सिद्धों का जीवन—दर्शन स्त्री के भोगवाद में आध्यात्मिक चेतना की समाविष्टि करता है। किन्तु समय के अनुसार सांकेतिक अर्थों में बदलाव आता गया, जिससे सिद्धों की विकासशील परम्परा क्रमशः जर्जर होती चला गई। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सिद्ध का विकास बौद्ध धर्म से ही हुआ है।

सामंतवादी समाज व्यवस्था में स्त्री—स्वतंत्रता पर सबसे अधिक प्रहार हुआ। उसकी सुरक्षा के बहाने उसके ऊपर बन्धन और कसते गये। धर्म की आड़ लेकर उसके अधिकारों को कम किया गया और उसके कर्तव्यों की संख्या बढ़ती गयी। साथ ही स्त्री शिक्षा से वंचित होती गई। मुगल काल में उसकी सुरक्षा के लिए परदा प्रथा का आरम्भ हुआ। शोषण और अपहरण से बचाने के लिए बाल—विवाह प्रारम्भ हुआ। बाल—विवाह के कारण विधवाओं की समाज में संख्या बढ़ने लगी। युद्ध में विजयी राजा स्त्री को भी जीती हुई सम्पत्ति मानकर स्त्री पर अपना अधिकार मानते थे। अपने सम्मान की रक्षा के लिए स्त्रियों को सती प्रथा के लिए बाध्य किया गया तो कभी उसे धार्मिक गौरव का रूप देकर इसके लिए प्रेरित किया गया। इन स्थितियों में स्त्री की सामाजिक स्थिति में हास होता गया। स्त्री—स्वतंत्रता में जब कमी आयी तो उसका क्षेत्र भी सीमित होता गया। पुरुष वर्ग का समाज में वर्चस्व इतना बढ़ा कि स्त्री को भारतीय समाज में पशुओं जैसा जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ा।

पुरुष प्रधान समाज में नारी की दुर्दशा के अनेक उदाहरण मध्यकाल में मिलते हैं। स्त्री को इस दुर्दशा से निकाल कर समान स्थिति में लाने का काम भक्ति आंदोलन ने किया। मध्यकाल में संतों भक्तों ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया। डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी ने भक्ति आंदोलन में स्त्री—पुरुष की समानता को लेकर लिखा है—“भक्ति आंदोलन नारी को भी घर से उसी तरह बाहर आने का

निमंत्रण देता था जिस प्रकार पुरुष को। भक्ति की दृष्टि में नारी और पुरुष में अंतर नहीं। दोनों अंशी के अंश हैं। लेकिन सामंती व्यवस्था नारी को— विशेषतः उच्च वर्ग की नारी को घर से बाहर निकालने की आज्ञा नहीं दे सकती थी। मीरा के भक्त जीवन का यही मूल भौतिक संघर्ष था वह यदि निम्नवर्ण में जन्मी होती तो उनके बाहर निकलने पर रुढ़िग्रस्त समाज इतना कुपित और क्षुब्ध न होता। वह आंदोलन कैसा था, जो राणाकुल की स्त्री को बाहर निकालने की प्रेरणा देता था”²⁹

2. आधुनिक साहित्य में स्त्री-छवि:

सन् 1857 की क्रान्ति भारतीय इतिहास में एक नये युग का आगमन थी। लगभग यही समय साहित्य में आधुनिक काल के शुरुआत का भी है। हिन्दी-साहित्य के आधुनिक युग में नारी-स्वतंत्रता के लिए बहुत सा साहित्य रचा गया परन्तु वह नारी-मुक्ति के अपेक्षित वातावरण नहीं बना सका। यहाँ तक की इस युग की स्त्री-विषयक ‘स्त्री-दर्पण’, ‘गृह-लक्ष्मी’, ‘स्त्री-धर्म-शिक्षक’, ‘महिला हितकारक’, ‘स्त्री-शिक्षा’, ‘कुमारी’ और ‘महिला-महत्त्व’ जैसी पत्रिकाओं के स्वर भी क्षीण थे, क्षीण ही नहीं बल्कि पुरुषवादी थे। नारी-स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में आज के उत्तर-आधुनिक युग में विमर्श का विषय यह है कि 21 वीं सदी की नारी किस सीमा तक पुरुष-जाति को शत्रु मानेगी। पुरुषों द्वारा रचित साहित्य को स्त्री-विमर्श के अन्दर रखा जाये या नहीं। अब इसका निर्णय तो आज की स्त्रियों को करना है कि पुरुष-जाति को नारी-जाति का शत्रु माना जाए या नहीं। आज नारी-मुक्ति के नये पाठों की रचना नारियों के जिम्मे है। रास्तों और शैलियों की खोज भी उन्हें ही करनी है।

20वीं सदी में स्त्री-प्रश्नों को लेकर बराबर बहस चलती रही है तथा स्त्री को परिभाषित करने के लिए विश्व-भर में अनेक वैचारिक आंदोलन भी हुए हैं। भारत में भी स्त्री की पहचान को लेकर अनेक स्तरों पर विमर्श और संघर्ष चलता रहा

है। स्त्री-अस्तित्व के लिए लगातार संघर्षरत रहने के बावजूद क्या स्त्रियों की स्थिति में कोई सार्थक तब्दीली आई है? क्या पुरुष वर्चस्व, पुरुष-सत्ता की ईंट तनिक भी हिली है? क्या वह उसी तरह से अपने अनुभवों, अनुभूतियों, विचारों, प्रस्तावों, प्रेक्षणों और मतव्यों को उजागर कर सकती है जैसे पुरुष? क्या वह अपने सबल होने के बावजूद समाज में विद्यमान 'बेटे की कामना' को कम कर पाई है। ये सारे सवाल स्त्री अस्मिता के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं और आज जब स्त्री-विमर्श के बहाने स्त्री की स्वतंत्र छवि को लेकर नये सिरे से विचार हो रहा है, इन स्थितियों पर बार-बार गौर करने की आवश्यकता है।

पुनर्जागरण काल में राजा राममोहन राय, विद्या सागर, कर्वे आदि की प्रेरणा से स्त्री-मुक्ति तथा उनके अधिकारों के प्रति जागरुकता लाने के लिए विभिन्न स्त्री संगठनों की स्थापना की गयी तथा कई स्त्री से सम्बन्धित पत्रिकाओं का प्रकाशन किया गया भारतेन्दु ने स्त्री-शिक्षा के लिए 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिका का सफल सम्पादन किया। लेकिन इस काल में स्त्री-मुक्ति पुरुष वर्चस्व के घेरे में ही की गई। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है—“स्त्री की स्वधीनता का सवाल हिन्दी नवजागरण का मुख्य सवाल कभी नहीं बन पाया। वह हमेशा हाशिए पर ही रहा। आरम्भ में स्त्रियों की पराधीनता और उनकी दारुण स्थिति के बारे में जो चिन्ता थी, वह भी बाद में कम हो गई।”³⁰ महावीर प्रसाद द्विवेदी को नवजागरण पुरुष कहा जाता है, उनके स्त्री के सम्बन्ध में विचार निष्कर्ष रूप में इस प्रकार हैं। जापान की स्त्रियाँ शिक्षित हैं, पर लड़कपन में अपने माता-पिता की आज्ञा में रहती हैं, विवाह हो जाने पर पति की आज्ञा में रहती हैं और विधवा हो जाने पर पुत्र की आज्ञा में रहती हैं। अपने पति की हृदय से सेवा करती हैं।

यह वक्तव्य यह बताता है कि द्विवेदी जी तथा मनु के विचारों में विशेष

अन्तर नहीं है। यह बात द्विवेदी जी के बारे में ही सही नहीं बल्कि पूरे द्विवेदी युग में नारी की क्या स्थिति थी यह बताने के लिए कविता को आधार बनाकर डॉ० नामवर सिंह लिखते हैं—“छायावाद के पूर्ववर्ती काव्य में नारी-संबंधी रचनाएँ न हों ऐसा तो नहीं है, किन्तु वे रचनाएँ पुरुष-प्रधान की ही घोटक है। द्विवेदी युग की कविता में नारी के प्रति दया का भाव तो है पर यथोचित सम्मान का भाव नहीं है, उस युग में निःसंदेह विधवाओं को लेकर अनेक कविताएँ लिखी गई, लेकिन उन कविताओं में विधवा को खाना-कपड़ा दिलाने का ही आग्रह अधिक है।”³¹

इससे पता चलता है कि द्विवेदी युग में स्त्री के अधिकारों की बात नहीं की गयी है बल्कि उसे आश्रय देने के साथ ही वंदिनी भी बना दिया गया और इसलिए अपने जीवन के बारे में निर्णय लेने के लिए पूर्ण रूप से वे स्वतंत्र नहीं थी।

एक स्त्री द्वारा स्त्री-अधिकारों को सर्वप्रथम वाणी देने में बंग महिला (राजेन्द्र बाला घोष) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ‘बंग-महिला’ ने ‘दुलाई वाली’ कहानी में स्त्री-भावना, संघर्ष और मुक्ति को वाणी देने की कोशिश की है। लेकिन बंग-महिला की इस कोशिश को महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा रामचंद्र शुक्ल जैसे आलोचकों की असहमति तथा विरोध का सामना करना पड़ा था। मीरा तथा बंग-महिला की अगली-कड़ी के रूप में महादेवी वर्मा का नाम लिया जाता है। महादेवी वर्मा को मात्र ‘नीर-भरी दुख की बदली की कवयित्री’ के रूप में ही जाना जाता है। ये ऐसा पूर्वाग्रह है जो ‘महादेवी को आँसू-करुणा-रहस्य की कवयित्री’ मानकर उन्हें तथा साथ ही समस्त भारतीय नारी की वास्तविक स्थिति को सामने नहीं आने देता है। महादेवी लिखती हैं—‘आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिम जल के’। उनके ये आँसू सहज सरल वेदना के आँसू नहीं हैं। इनके पीछे आग, झंझावत, प्रलय-मेघ का विद्युत-गर्जन, संघर्ष, आक्रोश, विद्रोह छिपा है।

महादेवी वह स्त्री हैं जो युग-युग से मूक, दूध, आहत और भीगी भारतीय स्त्री की ऐसे वक्त उठी आवाज़ थीं जब औरत की स्वाधीनता और उसके विमर्श का प्रायः कोई बोल-बाला नहीं था। स्त्री-विमर्श जैसे शब्द ही हिन्दी साहित्य में नहीं थे। महादेवी ने स्त्री की अस्मिता के लिए अपनी तरह से संघर्ष किया। लेखिका के लेखन रूप में 'शृंखला की कड़ियाँ' हिन्दी स्त्रीवादी लेखन का अप्रतिम उदाहरण है शृंखला की प्रत्येक कड़ियाँ स्त्री की गुलामी की कड़ियाँ हैं। प्रो० मैनेजर पाण्डेय ने 'शृंखला की कड़ियाँ' का महत्त्व बताते हुए कहा कि "ऐसा लगता है कि नारीवादी और अन्य लेखिकाएं भी 'शृंखला की कड़ियाँ', के महत्त्व से पूरी तरह परिचित नहीं हैं। वे सिमोन द बोउवार की किताब पढ़ती हैं, लेकिन महादेवी वर्मा की 'शृंखला की कड़ियाँ' नहीं क्योंकि वह हिन्दी में लिखी गई है, फ्रेंच या अंग्रेजी में नहीं।"³²

भारतीय नवजागरण के दौरान स्त्री की स्वाधीनता का प्रश्न तभी प्रखरता के साथ सामने आया है। जब भारतीय स्त्री अपने स्वाधीनता की माँग करती हुई आगे आई है। इस दृष्टि से सन् 1882 का वर्ष भारतीय स्त्री के जागरण के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 'वुमेन राइटिंग इन इंडिया' से ज्ञात होता है कि 1882 में बंगाल की मोक्षदामिनी मुखोपाध्याय का बंगला में कविता संग्रह 'बनप्रसूत' प्रकाशित हुआ था जो अपने नाम से लेकर रचनादृष्टि तक स्त्री की स्वाधीनता और आलोचनात्मक चेतना का प्रमाण था। उस संग्रह की एक कविता 'बंगाली बाबू' में बंगाली के तथाकथित स्वतंत्र पुरुष समुदाय की प्रदर्शनाप्रियता, खोखलापन, अंग्रेजों की नकल, दासता और पतनशील प्रवृत्तियों का पर्दाफाश किया गया है, साथ ही स्त्रियों के उद्धार के दावों पर तीखा व्यंग्य भी है। 1882 ई० में ही महाराष्ट्र की एक क्रान्तिकारी महिला 'ताराबाई शिन्दे' की पुस्तक 'स्त्री-पुरुष तुलना' छपी थी, जिसमें

स्त्री दृष्टि से महाराष्ट्र की पितृसत्तात्मक समाज-व्यवस्था संस्कृति और पुरुषों की मानसिकता की तीखी आलोचना है। ताराबाई शिन्दे ने एक ओर स्त्रियों पर पुरुषों द्वारा लगाए गए तरह-तरह के आरोपों का उत्तर दिया है। तो दूसरी ओर पुरुषों के पूर्वाग्रहों, अन्यायों और अत्याचारों का विवेचन भी किया है।

यद्यपि 19वीं सदी में हिन्दी क्षेत्र में नारी जागरण का रूप वैसा न था, जैसा बंगाल और महाराष्ट्र में था, फिर भी सन् 1882 में ही हिन्दी में भी एक पुस्तक छपी थी, जिसमें नारी के जागरण का स्वर अत्यन्त प्रबल है और उसकी आज़ादी की आवाज़ अत्यन्त बुलन्द। वह पुस्तक है 'सीमंतनी उपदेश'। इस पुस्तक को खोजकर 1988 में संपादित और प्रकाशित करने का काम डॉ० धर्मवीर ने किया है। सीमंतनी उपदेश जब पहली बार सन् 1882 में छपी थी तब उस पर लेखिका का नाम न था, इसलिए 1988 में डॉ० धर्मवीर ने उसकी लेखिका को एक अज्ञात हिन्दू औरत माना था, लेकिन जून 1999 के हंस में छपे अपने लेख 'सीमंतनी उपदेश की लेखिका कौन थी' में यह संभावना प्रकट की है कि उस लेखिका का नाम 'भाई भगवती' हो सकता है जो 19 वीं सदी के अंतिम दशक के पंजाब में एक लोकप्रिय लेखिका के रूप में प्रसिद्ध थी।

'सीमंतनी उपदेश' के बारे में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है—“सीमंतनी उपदेश हिन्दू समाज में स्त्री की गुलामी और यातना के विभिन्न रूपों के व्यापक ज्ञान और अनुभवों के आधार पर लिखी गई किताब है। उसमें विधवा-जीवन की दुर्दशा का मार्मिक वर्णन है, सती प्रथा का जोरदार विरोध है, पवित्रता तथा सतीत्व सम्बन्धी भ्रामक विचारों का खंडन है, पुरुषों के दोहरे चरित्र की पोल खोली गई है और धर्म के नाम पर स्त्री की गुलामी के लिए फैलाए गए जाल को तर्क की कसौटी पर कसकर छिन्न-भिन्न किया गया है। सीमंतनी उपदेश के प्रत्येक पन्ने से हिन्दू स्त्री की

गुलामी की पीड़ा से पैदा हुई चीख सुनाई पड़ती है और आज़ादी की दूर तक गूँजने वाली पुकार भी।”³³

भारतीय स्त्री की पराधीनता, उनकी खुशी और पीड़ा को व्यक्त करने के लिए मैनेजर पाण्डेय ने ‘सीमंतनी उपदेश’ नामक पुस्तक से कथन लिया है जो इस प्रकार है—“अगर इस दुनिया में कुछ खुशी है तो उन्हीं को है जो अपने तर्ज आज़ादी रखते हैं। हिन्दुस्तानी औरतों को तो आज़ादी किसी हालत में नहीं हो सकती। बाप, भाई, बेटा, रिश्तेदार सभी हुकूमत रखते हैं। मगर जिस क़दर ख़ाविन्द जुल्म करता है, उतना कोई नहीं करता। लौंडी तो यह सारी उम्र सब ही की रहती है पर शादी करने से तो बिल्कुल ज़रख़रीद हो जाती है। इस दुनिया में चाहे बादशाहत की नियामत मिले और आज़ादी न हो, नर्क के बराबर है।”³⁴

स्वाधीनता संग्राम में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी गाँधी जी के प्रभाव से हुयी, इसे सभी मानते हैं। गाँधीजी का ध्यान महिलाओं की जुझारू क्षमता पर पहली बार दक्षिणी अफ्रीका में खिंचा था। गाँधीजी ने कई बार इसका ज़िक्र किया कि दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रह आंदोलन में उन्होंने महिलाओं के गुणों पर ज़ोर दिया कहा कि उनसे बहुत कुछ सीखा जा सकता है और कुछ काम ऐसे हैं जो केवल वही कर सकती हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि गाँधीजी ने केवल यही नहीं कहा कि दक्षिणी महिलाएँ भारतीय महिलाओं से बहुत कुछ सीख सकती हैं बल्कि भारतीय पुरुष भारतीय महिलाओं की कुलीनता श्रेष्ठता और अहिंसा आदि कई गुणों की सीख उनसे ले सकते हैं।

महिलाओं के आत्मत्यागी एवं बलिदानी स्वभाव के हिमायती गाँधीजी पहले व्यक्ति नहीं थे, इससे पहले समाज सुधारकों और पुनरुद्धारकों ने भी इस पर कमज़ोर नहीं दिया था। गाँधीजी का विशेष योगदान यह था कि उन्होंने लोगों की

सोच बदली। लेकिन गाँधीजी की सोच भी महिलाओं को लेकर हिन्दू पितृसत्ता की जड़ों से बाहर नहीं निकल सकी। इसी बात को लेकर लता सिंह ने लिखा है—“महिला आंदोलन में गाँधीजी की सक्रिय भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। उनका सबसे बड़ा योगदान था महिलाओं के सार्वजनिक कार्यों को वैध बनाना तथा उनका वर्ग और सांस्कृतिक परिधि से बाहर एक व्यापक दायरा बनाना। फिर भी गाँधीजी की सोच, महिलाओं के स्वभाव तथा भूमिका में हिन्दू पितृ सत्ता की जड़ों से बाहर नहीं निकल सकी। इसलिए उससे महिला आंदोलन का दायरा और सीमित ही हुआ।”³⁵

स्वतंत्रता के पहले से ही नारी मुक्ति-आंदोलन के चलते उन्हें राजनीतिक अधिकारों के साथ-साथ सामाजिक अधिकारों से जोड़ने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी थी। इधर धीरे-धीरे लगभग सभी समाजों में स्त्री पर बंदिशें कम हुई हैं, वे शिक्षा, कैरियर, परिवार और समाज में अपनी इच्छा के अनुरूप भूमिका निभा रही है। परन्तु अभी भी स्त्री को अभिव्यक्ति की पूरी आज़ादी नहीं मिली है, पितृ सत्तात्मक व्यवस्थाएँ और पुरुष वर्चस्व के बीच उसकी भूमिका सीमित है, उसकी स्वतंत्रता की डोर कहीं न कहीं पुरुष के हाथ ही है। वह चाहकर भी अपने प्रेम का इज़हार नहीं कर सकती। अपनी पीड़ा या यातना को खुलकर बता नहीं सकती। स्त्री-विमर्श का मूल स्वर प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह नारी की मुक्ति, समानता, सामाजिक-न्याय, स्वावलम्बन, स्वतन्त्र अस्मिता का ही स्वर है। विमर्श उन सभी पितृसत्तात्मक मूल्यों के विरोध का दर्शन है जो नारी की शोषित स्थिति का हिमायती है। अनामिका लिखती है—“स्त्री आन्दोलन पितृसत्तात्मक समाज में पल रहे स्त्री-सम्बन्धी पूर्वाग्रहों से पुरुष की क्रमिक मुक्ति को असम्भव नहीं मानता, दोषी पुरुष नहीं, वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती है

कि स्त्रियाँ उनसे हीनतर हैं, उनके भोग का साधन मात्र। आन्दोलन की सार्थकता इसमें है कि वहाँ उँगली रखे जहाँ—जहाँ मानदंड दोहरे हैं, विरूपण प्रक्षेपण, विलोपन।''³⁶

प्रारम्भिक चरणों में इन आन्दोलनों को उतनी सफलता नहीं मिली जितनी अपेक्षित थी। इसका जो सबसे महत्वपूर्ण कारण था वह आर्थिक स्तर पर आन्दोलन के स्वरूप में अंतर। पश्चिमी देशों में स्त्रियों की स्थिति एवं तीसरी दुनिया की स्त्रियों की स्थिति में बुनियादी स्तर पर भेद का विद्यमान होना। विमर्श ने इन सब स्थितियों का सामना सहजता पूर्वक स्वीकार किया। डॉ० प्रभा खेतान लिखती हैं—''स्त्री की स्थिति वह चाहे पश्चिम की हो या तीसरी दुनिया की, अब भी बड़ी भंगुर है।..... पहले हमें यह देखना है कि इन सारे विमर्शों का उत्पादक एवं चिन्तक कौन है? नारीवाद के आदर्श पुरुषों के आदर्श से अलग हैं, इन पुरुषों ने व्यक्तिगत स्तर पर निजी क्षेत्र में दलन को नहीं झेला है, इन्हें पता नहीं है शारीरिक असुरक्षा किसे कहते हैं, बलात्कार की त्रासदी क्या है? दलित पति भी अपनी पत्नी से वही अपेक्षा रखता है जो सवर्ण रखता है।''³⁷

आज यह आन्दोलन जब अपनी सुदृढ़ स्थिति को बनाने में लगा हुआ है वहीं बदली हुई परिस्थितियों में अपने निरन्तर बदलाव की प्रक्रिया में इसको कुछ नये प्रश्नों का भी सामना करना पड़ रहा है। वर्तमान समय भूमण्डलीकरण का समय है, पूँजीवाद ने एक नया स्वरूप ग्रहण कर लिया है। उसने राष्ट्रों एवं राज्यों की सीमा लाँघकर विश्व बाज़ार का एकीकरण कर दिया है। यह आर्थिक भूमण्डलीकरण पूँजीवादी व्यवस्था का विश्व बाज़ार पर एकाधिकार का सूचक है। निम्न वर्ग की स्त्रियों के सामने जहाँ जीविका की ही समस्या है, वहाँ मानसिक और बौद्धिक स्वतंत्रता की बात उठाना ही बेमानी है। मध्यवर्ग और उच्च वर्ग की स्त्रियों का जीवन भी चाहे ऊपर से सजा—धजा, ऐश्वर्य से भरा दिखता हो, किन्तु वास्तव में वे भी

स्वतंत्र नहीं हैं। वहाँ भी उन्हें पुरुष दंभ का शिकार बनना पड़ता है। मानसिक स्तर पर उच्च समाजों के बीच भी पुरुष स्त्रियों को अपनी सम्पत्ति ही मानता-समझता है और लोकाचार में वह इसे प्रकट भी करता है। लिंग, शिक्षा, आदि में श्रेष्ठता का दावा करने वाला पुरुष वर्ग स्त्री को अपने बराबर की आज़ादी कभी नहीं दे सकता। वह उसे प्यार भी करता है तो उसकी आज़ादी छीन लेता है। जबकि स्त्री जब प्यार करती है तो समर्पण की पराकाष्ठा पर। वह पुरुष से केवल प्रेम चाहती है, बराबर का हक़ चाहती है, पर वह उसकी आज़ादी नहीं छीनती, उसकी अस्मिता का अपहरण नहीं करती। स्त्री-संवेदना के इस व्यापक आयाम को साहित्यकारों ने तरह-तरह से प्रकट किया है। उसकी अधीनताओं को धार्मिकता से लक्षित किया है। स्त्री साहित्यकारों ने भी अपनी आज़ादी, व्यक्तित्व, प्रेम, जीवन और इस पौरुषपूर्ण समाज में पुरुष वर्चस्व के प्रति अपनी आवाज़ बुलंद की है। साहित्य में स्त्री के सताये हुए चेहरे से लेकर उल्लासपूर्ण जीवन जीती स्त्रियों के जीवन अनुभव 'स्त्री-विमर्श' के फलक को विस्तृत बनाते हैं। स्त्री-विमर्श सामान्यतः साहित्य में सम्बन्धित विमर्श माना जाता है। लेकिन स्त्री-विमर्श मात्र साहित्य की आलोचना का दृष्टिकोण नहीं है बल्कि मानव-समाज में स्त्री की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हैसियत के बारे में व्यापक दृष्टिकोण का विमर्श है। इस प्रकार के विचार यूरोपीय-चिंतन धारा में भी दिखाई पड़ते हैं। क्रॉफ़्ट को आधुनिक नारीवादी विचार का आरम्भिक प्रणेता माना जाता है। क्रॉफ़्ट ने कहा है—“मैं यह नहीं कहती कि पुरुष के बदले का वर्चस्व पुरुष पर स्थापित होना चाहिए। ज़रूरत तो इस बात की है कि स्त्री को स्वयं अपने बारे में सोचने-विचारने एवं निर्णय करने का अधिकार मिले।”³⁸ क्रॉफ़्ट की यह आवाज़ दुनिया के विभिन्न सामाजिक राजनीतिक विचार धाराओं में प्रतिध्वनित हुई। 1949 में प्रकाशित सिमोन द बोउवा की पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' भारी विभेद के उपायों

का पहला दार्शनिक प्रयास था। सिमोन द बोउवा के अनुसार स्त्रियों की दयनीय स्थिति के लिए जो सामान्यतः स्वीकृत धारणा है वह सही नहीं है इसके लिए जो जीव वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक स्पष्टीकरण दिये जाते हैं, नितान्त अस्वीकार्य हैं। वास्तव में स्त्रियों की दयनीय स्थिति के लिए जो कारण उत्तरदायी है, वे हैं—पुरुषों की मानसिकता, स्त्रियों को वस्तु रूप में समझना तथा स्त्रियों द्वारा अपनी इस प्रदत्त स्थिति को स्वीकार कर लेना। इन्हीं बातों को लेखिका अपनी पुस्तक में इस प्रकार दिखाती हैं—“स्त्री और पुरुष का यह भेद परिस्थितिजन्य है। क्यों नहीं स्त्री अपने प्रेमी की अपेक्षा अधिक रोमांटिक होती? ऐसा क्यों कहा जाता है कि औरत में निर्णय की क्षमता का अभाव है वह केवल भावनात्मक स्तर पर जीती है? यदि इतिहास में बहुत कम स्त्रियाँ जीनियस हुई हैं तो इसका कारण उसका स्त्री होना नहीं बल्कि समाज है जो स्त्री की सारी अभिव्यक्ति को नियंत्रित करता रहता है, उसको प्रत्येक सुविधा से वंचित रखता है। बुद्धिमान से बुद्धिमान स्त्री की भी सार्वजनिक हितों के लिए आहुति दे दी जाती है। यदि उन्हें विकास का पूरा अवसर मिले तो ऐसा कोई भी काम नहीं जो वे न कर सकें। दमनकर्त्ता हमेशा दमित की जड़ों को काटता रहता है ताकि वह बौना ही रह जाये। पुरुष जान-बूझ कर स्त्री को बौना रखता है। स्त्री न देवी है न राक्षसी। वह मानवी है, जिसे समाज की फूहड़ प्रथाओं ने दासता में जकड़ कर रख दिया है।”³⁹

साहित्य में स्त्रीवादी छवि को लेकर हिन्दी-साहित्य के समीक्षकों में एक खास तरह का अधैर्य दिखाई देता है। वे न तो उसके अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों और न ही उसके भारत में जड़ पकड़ने की ऐतिहासिक वजहों में जाना चाहते हैं, ज़्यादा से ज़्यादा उनकी समीक्षा की कलम नारीवाद के सनसनीखेज़ या राजनीतिक संदर्भों को ही भाप पाती है। और वे प्रायः नारीवादी आंदोलन को या तो सम्पन्न सवर्ण लेखिकाओं

का पीड़ा-विलाप या दलित और वर्णाश्रम- विरोध आंदोलनों का ही एक नन्हा अनुपूरक साबित करने की हड़बड़ी में दिखाई देते हैं। वरिष्ठ कथाकार निर्मल वर्मा जो लेखिका सारा रॉय के कहानी-संग्रह 'अबाबील की उड़ान' को इसलिए महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि इसमें महिला लेखन जैसा कुछ नहीं है। दूसरे आलोचक डॉ० नामवर सिंह हैं जिनका मानना है कि महिला लेखन में संपूर्ण समाज की अभिव्यक्ति नहीं होती। दरअसल इस प्रकार के लेखन छोटे समुदायों के हितों में रख कर किए जाते हैं। अमर उजाला दैनिक में वे लिखते हैं—“ऐसा साहित्य अर्ध-साहित्य को प्रतिबिंबित करता है। यह लेखन तत्कालिक प्रतिक्रिया का परिणाम है, जबकि साहित्य का मूल स्वरूप मानव को मुक्ति प्रदान करने वाला है। खंड-खंड में मुक्ति साहित्य का लक्ष्य नहीं है।”⁴⁰

निर्मल वर्मा और डॉ० नामवर सिंह के वक्तव्य अनकहे ही 'महिला-लेखन' के प्रति आलोचकों के दुराग्रहों को चतुराई पूर्वक रेखांकित कर देते हैं। और साथ ही महिला-लेखन को परिभाषित करने की एक अदद कोशिश थी।

डॉ० नामवर सिंह अपने लेख 'मुक्त स्त्री की छदम छवि' में स्त्री-पुरुष संबंध को तीन भागों में बाँटते हैं— क़ानून, समाज और परिवार। रिश्तों को देखने के लिए क़ानून के मुक़ाबिल समाज को वे उदार बतलाते हैं—“स्त्री-पुरुष संबंधों पर हम तीन दायरों में विमर्श कर सकते हैं। क़ानून, समाज और परिवार। क़ानून जिस नजरिए से इस संबंध को देखता है, समाज उसके प्रति उससे कहीं अधिक उदार है। क़ानून के अनुसार बहुविवाह अवैध है। परन्तु समाज में लोगों के जीवन में ऐसी स्थितियाँ आती हैं कि कई बार उनके लिए दो या इससे अधिक विवाह करना आवश्यक हो जाता है।”⁴¹

लेकिन मैं कहती हूँ कि हो सकता है क़ानून भी विशिष्ट संदर्भ में मान्यता दे

दे। इसी के साथ एक प्रश्न और उभरता है कि यदि समाज मान्यता देता है तो क्यों लोग गाँव में एक और शहर में एक पत्नी रखते हैं। जो भी हो इससे बिगड़ती है स्थिति नारी की ही। नारी ही दंश झेलती है उपेक्षिता होने का। विशेषकर गाँव वाली। उसी के दर्द को समझना और साहित्य में नारी की छवि को व्यक्त करना स्त्री-विमर्श को एक दिशा प्रदान करता है।

डॉ० नामवर सिंह की जो सबसे खटकने वाली बात है वह यह कि पुरुषवादी नज़रिये से लेखकों के हिमायती हैं। उनका कहना है—“पति-पत्नी के रिश्ते की मर्यादाओं का सभी लेखक निर्वाह करते आए हैं।..... निजी जीवन में कैसी भी स्थिति रही हो परन्तु साहित्य में उन्होंने पत्नी की गरिमा का ध्यान रखा है।”⁴² डॉ० नामवर जी स्त्रियों के आक्रमक रवैये को गलत मानते हैं। वह चाहते हैं कि स्त्री पुरुषों को भला बुरा न कहे किंतु यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि आप साहित्य में चाहे जितनी ऊँची बातें कर लीजिए, व्यावहारिक या निजी जीवन में किसी गरिमा का ध्यान नहीं रखेंगे तो स्त्री भी साहित्य को ही माध्यम बनाकर आप पर चोट करेगी।

उपेन्द्रनाथ अशक स्त्री के आक्रमक रवैये को सही मानते हैं। उनका स्पष्ट कहना है यदि स्त्री का पति काइयाँ या कपटी हो तो उसे लात मार दे। छोड़ दे उसे। अपने लेख ‘आधी ज़मीन’ में कहते हैं—“एक बार सशक्त कथा-लेखिका और उसके पति में इतना झगड़ा हो गया कि वह संबंध टूटने को हो आया। मैंने उसके पति के सामने लेखिका से कहा—यह व्यक्ति नम्बरी झूठा, रियाकार और काइयाँ है। तुम क्यों इसके पीछे पड़ी हो। यह अलग होना चाहता है तो उसे आज़ाद कर दो। भगवान ने तुम्हें इतनी प्रतिभा दी है अपनी ज़िंदगी को लेखन के लिए अर्पित क्यों नहीं करती।”⁴³

ऐसा न होने की वजह से ही लेखिकाओं के अनुभव का दायरा सीमित होता

है अशक जी, कृष्णा सोबती का उदाहरण देते हुए कहते हैं—“सिर्फ एक कहानी—लेखिका का नाम मेरे ज़ेहन में आता है, जो पुरुष लेखकों के मुकाबिले में कहीं से भी कमतर नहीं। वे हैं कृष्णा—सोबती। वे बंधन—मुक्त भी हैं, आज़ाद भी हैं, उनके अनुभवों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, लेखनी मँज गई है।”⁴⁴ यहाँ मँज गयी लेखनी पर ध्यान देना होगा। ये लेखनी मँजी—कैसे? उसी बंधन से मुक्त होने के कारण, आज़ादी के कारण वह स्वतंत्र रूप से बंधन मुक्त होकर पुरुष लेखक के समझ लिख रही हैं।

स्त्री—छवि को लेकर साहित्य के संबंध में यह कहना चाहूँगी कि साहित्य कभी का भी रहा हो। वह पुरुष—दृष्टिकोण से ही परिचारित रहा है। जैसे कि तुलसीदास जी को ही लेते हैं उन्होंने कभी भी नारी की समानता की बात नहीं की। एक ओर वह नारी को पीटने की बात करते हैं, उन्हें बंधक बनाकर रखने की बात करते हैं—‘ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी। ये सब ताडन के अधिकारी’। दूसरी ओर वह नारी की पराधीनता पर नारी के भाग्य को कोस कर चुप रह जाते हैं—‘कत विधि सृजी नारी जग माँहि। पराधीन सपनेहुँ सुख नाँहि।’ वह नारी को माता और देवी तो मान लेते हैं किंतु उसे पुरुष के बराबर का दर्जा नहीं दे पाते हैं। यह पुरुष द्वारा नारी के साथ किया गया दोहरा व्यवहार है जो समाज तथा साहित्य में चित्रित होता आया है। कह सकते हैं कथनी और करनी में अंतर स्पष्ट है।

इन सब बातों को देखते हुए नारी की आदिम यातना से लेकर आज तक की पीड़ादायक स्थिति—परिस्थिति का विमर्श किया जा सकता है। साहित्य, समाज और संस्कृति की इक्कीसवीं सदी में सबसे बड़ी माँग है—नारी विमर्श के सभी पहलुओं पर मर्दवादी—जोश से मुक्त होकर सोचना, विमर्श करना। स्त्री—विमर्श की सभी परिभाषाओं में यह सत्य निहित रहा है कि आप कुछ भी कहिए। आपको यह विचार मानने के लिए विवश होना पड़ेगा कि स्त्री—विमर्श एक सामाजिक और राजनीतिक ‘फोर्स’

है—ऐसा फोर्स या दुर्गा शक्ति जो मर्दवादी अत्याचारी को रौंद कर दम लेगी।

हिन्दी साहित्य में स्त्री की छवि को लेकर चर्चा सुभद्रा कुमारी चौहान के सृजन और चिंतन को लेकर उठी है। इसी चर्चा का विस्तार देश-भर में होने वाले महादेवी वर्मा के चिंतन को लेकर हुआ है। महादेवी वर्मा की 'शृंखला की कड़ियाँ', 'स्मृति की रेखाएँ', आदि ऐसी कलाकृतियाँ हैं जिनमें स्त्री-विमर्श का एक दमनकरी साहित्य पूरी संभावनाओं के साथ मौजूद है। महादेवी वर्मा भी स्त्री-छवि को लेकर लिखती हैं —“जहाँ तक नारी की स्थिति का प्रश्न है, वह आज इतनी संज्ञाहीन और पशु नहीं कि पुरुष अकेले ही उसके भविष्य और गति के सम्बन्ध में निश्चय कर ले हमारे राष्ट्रीय जागरण में उसका सहयोग महत्वपूर्ण और बलिदान असंख्य है। समाज में वह अपनी स्थिति के प्रति विशेष सजग और सतर्क हो चुकी है। साहित्य को कुछ ही वर्षों में उसकी सजीवता का जैसा परिचय मिल चुका है। वह भी उपेक्षणीय नहीं।”⁴⁵

साहित्य में स्त्री-छवि को लेकर लेखन की बात हो तो हमारा ध्यान जैनेन्द्र के स्त्री-विमर्श की ओर भी जाता है। ध्यान जाने पर हम पाते हैं कि हिन्दी-साहित्य में जैनेन्द्र पहले कथाकार हैं जो इस क्षेत्र का प्रवर्तन करते हैं। इस प्रवर्तन का श्रेय इसलिए भी हम उन्हें देते हैं कि 'परख' की कट्टो, 'सुनीता' की सुनीता, 'त्याग-पत्र' की मृणाल जैसी नारियाँ भारतीय समाज के बदलते चेहरों की चिंताओं, प्रश्नाकुलताओं, समस्याओं और बेचैनियों को नारी को केन्द्र बनाकर अभिव्यक्ति देती हैं। स्त्री-विमर्श का एक उत्तर आधुनिक 'पाठ' यहाँ उपस्थित है। 'त्याग-पत्र' उपन्यास की मृणालिनी की भावना को यातना के भीतर पुरुष समाज से मिलने वाली यातना से देखा जा सकता है जिसमें नारी अस्मिता का सांस्कृतिक संकट गहरा होता जाता है। यह हमारा वह समाज है जो स्त्री को जीने का हक तक देने को तैयार नहीं है। इस

उपन्यास को पढ़कर ऐसा नहीं लगता है कि अगर यह उपन्यास किसी स्त्री द्वारा लिखा गया होता तो इसका अंत जैसा है वैसा नहीं हुआ होता।

प्रेमचंद के यहाँ विरोधाभास है। वह व्यवहार में तो नारी के साथ पुरुष सहयोग की बात करते हैं। कहीं-कहीं तो कर्म-क्षेत्र में नारी को पुरुष से ऊँचा भी दिखा देते हैं—मालती, मुन्नी, सुमन, धनिया आदि कहीं-कहीं पुरुषों से ऊँचा स्थान पा जाती हैं। किन्तु प्रेमचंद सिद्धान्त में नारी की इस स्वाधीनता का विरोध करते हैं कि वह पुरुष के समकक्ष आ जाये। वह स्पष्ट रूप से कहते हैं कि यदि पुरुष के गुण नारी में आ जाए तो वह कुलटा हो जाए। वे भी सिद्धान्त रूप में नारी को देवी के ही रूप में देखना चाहते हैं—“देवियों जब मैं इस तरह सम्बोधित करता हूँ तो आपको कोई बात खटकती नहीं। आप इस सम्मान को अपना अधिकार समझती हैं, लेकिन आपने किसी महिला को पुरुषों के प्रति देवता का व्यवहार करते सुना है? उसे आप देवता कहें, तो वह समझेगा आप उसे बना रही हैं। आपके पास दान देने को दया है, श्रद्धा है, त्याग है। पुरुष के पास दान के लिए क्या है? वह देवता नहीं, लेवता है। स्त्री को पुरुष के रूप में, पुरुष के कर्म में रत देखकर मुझे उसी तरह वेदना होती है जैसे पुरुष को स्त्री के रूप में, स्त्री के कर्म देखकर।.....स्त्री-पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा, त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है।”⁴⁶

यह प्रेमचंद का एक खास प्रकार का ‘स्टाइल’ है कि पुरुषों को भला-बुरा कहते हुए भी स्त्री को अपने आस-पास भटकने भी नहीं देते और नारी कब मनुष्यता के गुणों से दूर थी यह गुण तो नारी को जन्मजात प्राप्त है वह तो इन गुणों से ही युक्त है। यह गुण नारी के विशाल ममत्व हृदय में सदा ही विद्यमान रहते हैं। वह इन्हें क्या प्राप्त करेंगी। इन गुणों को तो पुरुष को प्राप्त करना है जिससे वह नारी

के समक्ष स्थान प्राप्त करें तथा मनुष्यता के आदर्श उच्चतम रूप को प्राप्त कर सकें।

वर्षों के बाद भी आज की सच्चाई यह है कि स्त्रियों के लिए प्रेमचंद ने सामाजिक अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाई। उनकी समस्याओं से संबंध सुधारवादी आन्दोलनों द्वारा स्त्रियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रेमचंद ने सक्रिय बनाया। प्रेमचंद ने स्त्रियों की जीवन-परिस्थितियों में निहित अन्याय को उभारकर रखा और वेश्यावृत्ति, बेमेल विवाह, दहेज प्रथा, पतिव्रत धर्म के खिलाफ तथा स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह के पक्ष में लिखकर स्त्रियों पर सामंती व्यवस्था की पाशविक जकड़ को ढीला करने और इस प्रकार उनके व्यापक जनान्दोलनों से जुड़ने की दिशा में काम किया। लेकिन प्रेमचंद की सोच स्त्रियों को लेकर आदर्शवादी है। 1916 में 'सेवासदन' में वेश्याओं की समस्या को लेकर प्रेमचंद की समझ की तस्वीर उनके इस कथन के साथ पूरी होती है—“जिस समाज में अत्याचारी, ज़मींदार, रिश्वतखोर राज्य कर्मचारी, अन्यायी महाजन और स्वार्थी बन्धु आदर और सम्मान के पात्र हो, वहाँ दालमण्डी क्यों न आबाद हो। हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहाँ जा सकता है? जिस दिन नज़राना, रिश्वत, सूद—दर—सूद का अन्त होगा, उसी दिन दालमण्डी उजड़ जायेगी, वे चिड़िया उड़ जायेगी, पहले नहीं।”⁴⁷

इस कथन से एक बात तो अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचंद वेश्यावृत्ति की समस्या को किस प्रकार देखते हैं। वे इस समस्या का समाधान स्त्री के आर्थिक पक्ष को कमज़ोर न मानकर समाज की अन्य बुराई को मानते हैं। इसी को लेकर शुभा ने लिखा है—“प्रेमचंद वेश्यावृत्ति को सामंती व्यवस्था के साथ जोड़ते हैं लेकिन सिर्फ 'हराम के धन' के साथ स्त्रियों की आर्थिक पराधीनता के साथ नहीं, व्यक्तिगत सम्पत्ति पर आधारित एकनिष्ठ परिवार के साथ भी नहीं।”⁴⁸

इसी प्रकार आगे शुभा ने 'निर्मला' को आधार बनाकर लिखा है—“दहेज

प्रथा और बेमेल विवाह को साहित्य में एक सामाजिक समस्या के रूप में स्थापित करने का ऐतिहासिक काम प्रेमचंद ने किया है लेकिन निर्मला बेहद कमजोर चरित्र है। वह अपनी त्रासदी को पूरी तरह समर्पित है और अन्याय के खिलाफ खड़ी न होकर उससे डरती है। निर्मला की कमजोरी प्रेमचंद की अपनी कमजोरी है।⁴⁹

किंतु सभी पुरुष लेखकों की दृष्टि ऐसी नहीं है। यह बात अशकजी के संबंध में देख सकते हैं। वह स्त्री को स्त्री की नज़र से देखने की कोशिश करते हैं लेकिन अनुभूति का अन्तर तो रहता ही है जो केवल एक स्त्री ही अनुभव कर सकती है। वहाँ अशक जी की दृष्टि में फर्क आ जाता है। इसी प्रकार रोहिणी अग्रवाल अपने लेख 'आकाश चाहने वाली लड़की' में अज्ञेय का पक्ष लेते हुए कहती हैं—“न सही रेखा (नदी के द्वीप) शरीफ़ज़ादी! शरीफ़ लोगों के ड्राइंग रूम में बैठ कर उसकी चर्चा भी निषिद्ध है, लेकिन 'भुवन' के साथ उसके दैहिक संबंध इतने खुले और छिछले तो नहीं। बल्कि दैहिक संबंधों से ज़्यादा जो बात असर डालती है, वह है दोनों की मानसिक अंतरंगता, प्लेटोनिक प्रेम की प्रगाढ़ता और उस सामाजिक व्यवस्था की क्रूरता जो हेमंत जैसे समलैंगिकों के पल्ले बंधी रेखा जैसी स्वप्नशील स्त्रियों के जीवन को बंजर कर देती है। निरुपाय रेखा यदि ज़ार-ज़ार आँसू बहाती रहती तो उपन्यास का प्रभाव रेशा-रेशा बिखर जाता। वह टूट कर बिखरती नहीं, टूट कर एक नयी बढ़त लेती है जो जर्जर सामाजिक व्यवस्था के बरअक्स व्यक्तिगत लेकिन मानवीय नैतिकता की मूल्य-प्रतिष्ठा करती है। सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन करती है जो छिप कर नहीं, डंके की चोट पर....”⁵⁰

अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' को लेकर प्रश्न बहुत से उठाए जा सकते हैं कि विवाह ही करना था तो भुवन से क्यों नहीं? यदि विवाह—पूर्व संबंधों में रचे-पगे प्रेम को विवाह समाप्त कर देता है तो विवाह जैसी संस्था की ज़रूरत ही

क्या? रुझान का प्रतीक बन कर रेखा का समूचा व्यक्तित्व क्या ओस-बिंदुओं सा मोहक किंतु क्षणभंगुर नहीं हो जाता? फिर भी रेखा में सब है जो शीरीन और स्वप्ना में नहीं है—चारित्रिक ईमानदारी, निर्द्वंद्वता, व्यवस्था से टकराने को माददा और अपनी शरिस्त्रयत से रूबरू होने की अभिलाषा। समय के साथ यही सब मित्रों के रूप में अवतरित होते देखते हैं। मित्रों यदि स्त्री की दैहिक मुक्ति की मुखर कामना का ठोस और फलीभूत रूप है तो क्या रेखा के अवदान को क्षण-भर के लिए भी भुलाया जा सकता है? फिर रोहिणी अग्रवाल पुरुष और स्त्री की दृष्टि में समानता दिखाते हुए कहती हैं—“यदि मित्रों मरजानी जैसी रचनाएँ सोलहों आने महिला लेखन है तो नदी के द्वीप को कहाँ रखेंगे आप? देह होते हुए भी देह के भूगोल से मुक्त रखकर स्त्री को मनुष्य की संज्ञा से विभूषित करने वाली हर रचना महिला लेखन है— इसे मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए।”⁵¹

गीताजंलि श्री, अलका सरावगी, मैत्रेयी पुष्पा, अनामिका, मनीषा और राजी सेठ का लेखन हिन्दी-साहित्य में उस नए ‘नारी-विमर्श’ का पता देते हैं जिससे साहित्य की कुलीनतावादी धारा आज भी विमुख है। यह लेखिकाएँ स्त्री-पुरुष की लेखन-दृष्टि में अंतर करती हैं। इनके यहाँ ‘अबला-जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी’ का न तो कारुणिक आख्यान है। न तो जैनेन्द्र की ‘सुनीता’ का देह-दर्शन है और न ही यहाँ अज्ञेय के ‘नदी के द्वीप’ की रेखा की यौन-व्याकुलता। भोगवाद के दर्शन में नारी-मुक्ति की तलाश करती न तो यहाँ ‘कसप’ की गुलनार है और न ‘मुझे चाँद चाहिए’ की वर्षा वशिष्ठ। पियानो-सी बजती स्त्रियों का अन्तिम अख्य भी यहाँ नदारद है। इन लेखिकाओं की लेखन दृष्टि को देखकर ऐसा लगता है कि ‘स्त्री-विमर्श’ को पुरुष एजेंडे से मुक्त करना है। लेकिन यह करते हुए कोई एक भी लेखिका दूसरे की भूमि को न तो घेरती है और न ही उसका अतिक्रमण करती है।

गीताजंलि श्री के नए उपन्यास 'तिरोहिता' को पढ़ते हुए बार-बार यह लगता है कि उन्होंने इस उपन्यास से हिन्दी की स्त्री लेखिकाओं के स्त्री-विमर्श को वयस्क दृष्टि प्रदान कर दी है। कृष्णा सोबती व मृदुला गर्ग के नारी-केन्द्रित लेखन को जिन्होंने 'मर्द मुहावरे' में ढला पाया था, उन्हें गीताजंलि श्री के इस वयस्क मुहावरे को समझने के लिए अधिक धैर्य व सहानुभूति के साथ स्त्री-मानस में प्रवेश करना होगा। 'तिरोहिता' नामक उपन्यास के पात्र 'ललना' और 'चच्चो' के माध्यम से गीताजंलि श्री जिस स्त्री-छवि को दिखाती है वह नारी-विमर्श का नया आयाम है। स्त्री-संसार की अजानी पतों को खोलने के लिए गीताजंलि स्त्री या मर्द मुहावरा न अपनाकर जो वयस्क मुहावरा अपनाती है, वह कई लेखिकाओं की आक्रामक मुद्राओं को गैर ज़रूरी सिद्ध कर देता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी साहित्य में स्त्री की छवि को कुछ इस प्रकार चित्रित किया गया है जो पहले के साहित्य में देखने को नहीं मिलती। नारी के इस नये रूप को चित्रित करने में कथा-लेखिकाएँ लेखकों से किसी भी प्रकार से पीछे नहीं रहीं हैं। उन्होंने पूरी निर्भीकता और ईमानदारी से सामाजिकता के चालू मुहावरे से ऊपर उठकर नारी के परिवर्तित रूप के सत्य को उभारा है। स्त्री का यह रूप जो साहित्य में आया है वह लेखक-लेखिकाओं की कल्पना की उपज नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन का ही परिणाम है। द्वितीय महायुद्ध, देश की स्वतन्त्रता और देश का विभाजन, विषम आर्थिक परिस्थितियाँ और स्त्री शिक्षा के प्रसार—इन सब बातों ने समाज व्यवस्था में एक संक्रान्ति उपस्थित कर दी जिससे बहुत सी पुरानी मान्यताएँ और मर्यादाएँ अपने मूल्य खो बैठी हैं। शिक्षा और नौकरी के सम्बन्ध में नारी घर के सीमित वातावरण से बाहर खुले वातावरण में आयी है और उसमें एक खुलापन भी आया है। उन्मुक्त रूप से पुरुष से मिलने-जुलने का भी अवसर उसे मिला है और

उसे देखने-परखने का भी। परिवर्तित परिस्थितियों और परिवेश में स्त्री की शरीरगत पवित्रता की कच्ची दीवार को सबसे पहले धक्का लगा। आरम्भिक दौर में संघर्ष नयी परिस्थितियों और पुराने संस्कारों के बीच का रहा जिसमें स्त्री टूटती-बिलखती रही। यही टूटन आदर्शों और नवमूल्यों में टकराव का कारण बनी।

यह तथ्य आश्चर्यजनक है कि जिस देश में कुछ वर्ष पूर्व महिलाओं के घर से बाहर काम करने को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था उसी देश में आज हजारों की संख्या में महिलाएँ नौकरी के लिए न केवल घर से बाहर जाती हैं अपितु ऐसे क्षेत्रों में भी काम करने लगी हैं जिनमें पुरुष का एकछत्र साम्राज्य था। पुरुष-प्रधान क्षेत्रों में महिलाओं का इस तरह प्रवेश, पुरुष मानस को असहाय भले ही न रहा हो लेकिन इससे एक मानसिक तनाव ज़रूर पैदा हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्त्रियाँ अब खामोश नहीं हैं। वे सत्ता नहीं, सत्ता में भागीदारी चाह रही हैं। रोजगार, शिक्षा, संस्कृति और कार्य पालिका ही नहीं, न्याय पालिका तक में उनको स्थान और महत्त्व देने की मांग उठ रही है, और यह अकारण नहीं है। स्त्रियों के बीच से साहित्यिक प्रतिभाएँ उभर कर सामने आ रही हैं जो लम्बे समय से नेपथ्य में थी। उम्मीद करनी चाहिए कि जब वे सम पर आएंगी तो विषमताओं का शोर भी कुछ थमेगा और साहित्य के सार्वभौम मानदंडों पर खरा उतरने वाला उनका स्तरीय साहित्य भी सामने आएगा। कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, सुधा अरोड़ा, सूर्यबाला, अर्चना वर्मा, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, चंद्रकांता, गीताजंलि श्री, युक्ता, क्षमा शर्मा, मेहरुनिसा, अलका सरावगी आदि के उत्कृष्ट लेखन ने आखिर स्त्री और पुरुष लेखन के भेद को न सिर्फ मिटा ही दिया है, बल्कि अब तो वह लेखकों को चुनौती भी देती प्रतीत हो रहीं हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. सं० ममता कालिया, उत्तर-प्रदेश (पत्रिका), स्त्री विशेषांक, मई 2003, पृ० 210, उ० प्र० सरकार, लखनऊ
2. वही, पृ० 209
3. वही, पृ० 212
4. सं० कमला प्रसाद, वसुधा (पत्रिका) विशेषांक 59-60, पृ० 517, म०प्र०, भोपाल
5. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 26, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2001
6. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, पृ० 84, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1979
7. मन्नू भण्डारी, आपका बंटी पृ० 35, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2000
8. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 10, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2001
9. मनीषा, हम सभ्य औरतें, पृ० 6, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2002
10. चित्रा मुद्गल, आवा, पृ० 112, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2001
11. नासिरा शर्मा, शाल्मली, पृ० 185, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 1999
12. मृदुला गर्ग, लेख-स्त्री विमर्श से दूर स्त्रीवाद, सहारा समय (साप्ताहिक), 24 मई 2003
13. मनीषा, हम सभ्य औरते, पृ० 5, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2002
14. सं० ममता कालिया, उत्तर-प्रदेश (पत्रिका), स्त्री विशेषांक, मई 2003, उ० प्र० सरकार, लखनऊ
15. मनीषा, हम सभ्य औरते, पृ० 14, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2002
16. सं० रामकमल राय, डॉ० यतीन्द्र तिवारी, हिन्दी-अनुशीलन, अंक 4, जून 2004, पृ० 7

17. सीमोन द बोउवार, स्त्री : उपेक्षिता, पृ० 21, सरस्वती विहार, दिल्ली 1991
18. डॉ० बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ० 493, राधाकृष्ण दिल्ली 2000
19. सीमोन द बोउवार, स्त्री : उपेक्षिता, पृ० 324, सरस्वती विहार, दिल्ली 1991
20. जर्मन ग्रीयर, विद्रोही स्त्री, पृ० 16, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2001
21. डॉ० उषा पाण्डेय, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी-भावना, पृ० प्राक्कथन, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली 1959
22. वही, पृ० 15
23. वही, पृ० 17
24. डॉ० गजानन शर्मा, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ० 109, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद 1971
25. सं० ममता कालिया, उत्तर-प्रदेश (पत्रिका), स्त्री विशेषांक, मई 2003, पृ० 19, उ०प्र० सरकार, लखनऊ
26. डॉ० उषा पाण्डेय, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी-भावना, पृ० 19, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली 1959
27. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृ० 59, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2002
28. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 13, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
29. डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, पृ० 18, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1989
30. डॉ० मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पृ० 180-81, पूर्वोदय, नई दिल्ली 2002
31. डॉ० नामवर सिंह, छायावाद, पृ० 47, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2000
32. डॉ० मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पृ० 179-80, पूर्वोदय, नई दिल्ली 2002
33. वही, पृ० 181

34. वही, पृ० 182
35. सं० साधना आर्य, नारी वादी राजनीति, पृ० 24
36. सं० राजेन्द्र यादव, हंस (मासिक पत्रिका), जनवरी-फरवरी, 2000, पृ० 77,
37. वही, पृ० 78
38. अमृतराय, विचारधारा और साहित्य, पृ० 83, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1984
39. सीमोन द बोउवार, स्त्री उपेक्षिता, पृ० 22, सरस्वती विहार, दिल्ली 1991
40. अमर उजाला, (दैनिक) अलीगढ़ संस्करण, दिसम्बर 12, 1999
41. सं० कमला प्रसाद, वसुधा (पत्रिका) विशेषांक 59-60, पृ० 516, म०प्र० भोपाल
42. वही, पृ० 517
43. वही, पृ० 518
44. वही, पृ० 519
45. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० 169, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
46. प्रेमचंद, गोदान, पृ० 134-135, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1996
47. प्रेमचंद, सेवासदन, पृ० 94, हिन्दी पॉकेट बुक्स, दिलशाद गार्डन, दिल्ली
48. सं० अजेय कुमार, उद्भावना, प्रेमचंद विशेषांक, अंक 64, पृ० 76
49. वही, पृ० 77
50. सं० राजेन्द्र यादव, हंस (मासिक पत्रिका) मार्च 2001, पृ० 172
51. वही, पृ० 173

द्वितीय अध्याय

महादेवी वर्मा की साहित्य-दृष्टि और स्त्री विमर्श

महादेवी वर्मा की साहित्य-दृष्टि और स्त्री विमर्श

महादेवी की स्त्री-दृष्टि : पृष्ठभूमि

साहित्य, युग और परिस्थितियों पर आधारित अनुभवों एवं अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होता है। यह अभिव्यक्ति साहित्यकार के हृदय के माध्यम से होती है।

साहित्य क्षेत्र का संबंध भाव-जगत से है। साहित्यकार सामाजिक परिस्थितियों से उद्भूत भावों को स्वर देकर उन्हें समाज की व्याख्या के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार उसमें सामाजिक जीवन स्वयं मुखरित हो उठता है। महादेवी वर्मा साहित्यकार को समाज का विशिष्ट अंग मानते हुए उसकी चेतना का विकास समाज में ही मानती हैं —“समष्टि की ईकाई होने के कारण साहित्यकार के जीवन दर्शन और आस्था का निर्माण भी समाज विशेष और युग विशेष में होता है।” यह सत्य है कि मानव जीवन के परिवेश से ही साहित्य रूपी वृक्ष का पल्लवन तथा प्रस्फुटन होता है। अतः साहित्य का घनिष्ठ संबंध साहित्यकार की चेतना से होता है। इस चेतना की अभिव्यक्ति के लिए जिस आधार की आवश्यकता होती है, वह है, समाज। मैनेजर पाण्डेय अपनी पुस्तक ‘साहित्य और इतिहास दृष्टि’ की भूमिका में साहित्य का अस्तित्व समाज में ही निहित मानते हैं—“साहित्य का अस्तित्व समाज से अलग नहीं होता, इसलिए साहित्य का विकास समाज से कटा हुआ नहीं हो सकता। साहित्य सामाजिक रचना है, साहित्यिक कर्म की पूरी प्रक्रिया सामाजिक व्यवहार का ही एक विशिष्ट रूप है।”² परसाई जी इसी प्रकार साहित्य मूल्यों को मानव व्यवहार से निर्मित मानते हैं—“साहित्य के मूल्य जीवन-मूल्यों से बनते हैं, वे रचनाकार के एकदम अन्तर से पैदा नहीं होते हैं।”³

प्रेमचंद कहते हैं—“हम जीवन में जो कुछ देखते हैं, या जो कुछ हम पर

गुजरती है, वही अनुभव और वही चोटें कल्पना में पहुँचकर साहित्य सृजन की प्रेरणा करती हैं।⁴ महादेवी वर्मा के शब्दों में—“व्यष्टि और समष्टि में समान रूप से व्याप्त जीवन के हर्ष—शोक, आशा—निराशा, सुख—दुःख आदि की संख्यातीत विविधता को स्वीकृति देने के लिए कला—सृजन होता है।”⁵ साथ ही महादेवी वर्मा कला—सृजन के पीछे युगों से चले आ रहे अनुभव जन्य संस्कारों को भी मानती हैं—“मनुष्य अपनी जीवन यात्रा के लिए जो पाथेय लेकर चलता है उसका बहुत सा अंश उसे जन्म के साथ उत्तराधिकार में प्राप्त हो जाता है। शेष की उपलब्धि उसे यात्राक्रम में अनुभव, कल्पना चिंतन आदि से होती रहती है।”⁶

साहित्यकार एक स्रष्टा है और उसकी लेखनी से अवतरित प्रत्येक शब्द और इन शब्दों से उद्घाटित होता हुआ हर छोटे से छोटा भाव और विचार अपनी अर्थवत्ता रखता है। डॉ० कमला प्रसाद कहते हैं—“रचनाकार का एक अपना वैकल्पिक संसार होता है जिसमें वह बेहतर दुनिया का सपना देखता है।”⁷ इस प्रकार भाव या विचार किसी साहित्यकार के समग्र चिंतन की वह धुरी बनने की क्षमता प्राप्त करते हैं जिसके चारों ओर उसका रचना संसार घूमता रहता है। चूँकि मानव एक सामाजिक प्राणी है इसलिए स्वभावतः सामाजिक समस्याओं पर विचार करते समय साहित्यकार का दृष्टिकोण विशेष रूप से उभर कर साहित्य के रूप में हमारे सामने आता है। मैनेजर पाण्डेय साहित्यकार के दृष्टिकोण के विषय में कहते हैं—“साहित्य की सामाजिक सत्ता असंदिग्ध है लेकिन रचना में रचनाकार के आत्मगत प्रयास की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।”⁸ साहित्य के विकास का लक्ष्य मानव समाज के विकास के लक्ष्य से सम्बन्धित होता है, और कोई भी विकास लक्ष्यहीन नहीं होता। मानव समाज का इतिहास मनुष्य की प्रयोजनयुक्त क्रियाशीलता का ही परिणाम है। साहित्यकार अपने रचना संसार का सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होता है। साहित्य का

उद्देश्य मनुष्य की मौलिक जिज्ञासा, मानवता से गहरी संबद्धता की जिज्ञासा को संतुष्ट करना है। मानवता से गहरी संबद्धता के कारण ही मनुष्य इतिहास की चिंता करता है।

साहित्य एक जीवंत प्रक्रिया है, रचना एक सामाजिक कर्म है और साहित्य सृजन मनुष्य के सामाजिक व्यवहार का एक विशेष रूप है। छायावादी साहित्यकार महादेवी वर्मा ने साहित्य में सामाजिक कर्म के संदर्भ में समाज के उपेक्षित शोषित वर्ग एवं स्त्री की दयनीय दशा को वर्ण्य-विषय के रूप में ग्रहण कर मानवतावादी स्वर को अभिव्यक्ति दी है।

महादेवी वर्मा छायावाद की प्रमुख कवयित्री ही नहीं बल्कि विशिष्ट गद्यकर्मी के रूप में भी प्रमुख स्थान रखती हैं। पंत तो उन्हें छायावादियों में एकमात्र चिरन्तन भाव-यौवना कवयित्री मानते हैं—“जिन्होंने नये युग के परिप्रेक्ष्य में राग-तत्त्व के गूढ़ संवेदन तथा राग-मूल्य को अधिक मर्मस्पर्शी, गम्भीर, अन्तर्मुखी, तीव्र संवेदनात्मक अभिव्यक्ति दी है।”⁹ वहीं इंद्रनाथ उनके विशिष्ट स्थान पर प्रतिष्ठित होने को उनका नारी व्यक्तित्व मात्र नहीं मानते उनके द्वारा सृजित साहित्य को मानते हैं—“छायावादी कवियों में महादेवी का विशिष्ट स्थान है। वह इसलिए नहीं कि वह नारी है, वरन् इसलिए कि उन्होंने छायावादी काव्य के भाव पक्ष तथा कला पक्ष को विकसित किया।”¹⁰ महादेवी के साहित्य में हमें उनके व्यक्तित्व के दो रूप मिलते हैं—एक पद्य के रूप में, तथा दूसरा गद्य के रूप में। महादेवी अपने पद्य में व्यक्ति केन्द्रित दिखाई देती हैं, तो गद्य में वे समष्टि से सम्बन्ध जोड़ती हुई। महादेवी पर यह आरोपित किया जाता है कि उनका गद्य कल्पना लोक की वस्तु है। काव्य रचनाओं में उनका व्यक्तित्व असामाजिक रूप लिए हुए है, पर उनका गद्य ठोस यथार्थ जगत् से सम्बन्धित है। गद्य में उनका व्यक्तित्व सामाजिक चेतना को

आत्मसात किए हुए है। अमृतराय महादेवी वर्मा के साहित्य में अभिव्यक्त हुए इन दो विरोधी रूपों के विषय में कहते हैं—“महादेवी जी की कविता, समाज और दुखस्था, असहाय नारी की विपन्न स्थिति, व्यक्ति और समाज के परस्पर वैषम्य, रुद्ध भावनाओं, दमित इच्छाओं और प्रचलित सामाजिक कुसंस्कारों के कारण पूर्ण रूप से प्रस्फुटित न होने वाले जीवन का भावात्मक, आत्म केन्द्रित निरूपण है, उनकी निस्वन, पराजित प्रतिक्रिया स्वरूप कवि का एकान्त रुदन है.....इसके ठीक विपरीत महादेवी का गद्य साहित्य मूलतः समाज केन्द्रित है, उसने जनता के पीड़ित जीवन को स्वर दिया। उसने समाज के दुख-दैन्य, उसके स्वार्थों और अभिशापों का प्रतिकार किया है। उसमें एक विद्रोही की आत्मा रुदन कर रही है। उसका मूल उत्स अपनी पीड़ा में नहीं, समाज में दिन-रात चलने वाले अन्यायों और अत्याचारों में है।”¹¹

चरनसखी शर्मा महादेवी वर्मा के गद्य को उनके पद्य में व्यक्त व्यक्तित्व का ही पूरक मानती हैं—“महादेवी वर्मा का साहित्यिक व्यक्तित्व पद्य और गद्य दोनों रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। कवयित्री महादेवी छायावाद के प्रमुख उन्नायकों में मानी जाती हैं। उन्होंने छायावादी एवं रहस्य-भावना से युक्त गीतों की रचना कर वैयक्तिक भावनाओं एवं वेदनानुभूतियों को अभिव्यक्त किया है। गद्य-लेखिका के रूप में महादेवी के व्यक्तित्व का एक दूसरा रूप हमारे सामने आता है, जो पहले का पूरक है। गद्य-लेखिका महादेवी में भी करुणा का स्वर प्रधान है, परन्तु इस करुणा-संवेदना का उद्रेक समाज के उपेक्षित एवं शोषित वर्ग के प्रति हुआ है। नारी की समस्याओं पर विचार करती हुई महादेवी का क्रान्तिकारी भावनाओं से अनुस्यूत गद्य-लेखिका के रूप में चिन्तक भी है, आलोचक भी और समाज की समस्याओं पर विचार करने वाली सहृदय एवं कर्मशील सुधारक भी।”¹² महादेवी के कृतित्व में

विपरीतों की यह एकता, 'विरुद्धों का सामंजस्य' ही उनको अद्वितीय बनाते हैं। उनके नारी हृदय में बचपन से व्याप्त करुणा, उनके साहित्य में वेदना रूप में अभिव्यक्त हुई है। वह अपने काव्य में कल्पनावेदी और पलायनवादी प्रतीत होती हैं क्योंकि समाज का जो रूप कबीर को उदासी प्रदान करता है और वह अपने साँझ के कल्पित दीदार में, आस में, खुद को मस्त और बेपरवाह कर उमंगित होते हैं, उसी प्रकार महादेवी समाज के यथार्थ रूप की विभीषिकाओं से पलायन कर कल्पना में विचरण करने लगता है। 'विरुद्धों का यह सामंजस्य' ही उनकी विशेषता है।

साहित्य समाज का युग दर्पण है। समाज की पृष्ठभूमि से ही साहित्य में नवीन मोड़ आते हैं। व्यक्ति और समाज का जीवन परिवर्तनशील है। हर युग में हुए परिवर्तन के आधार पर ही जीवन मूल्य विकसित होते हैं। महादेवी वर्मा कहती हैं—“साहित्य हमारे जीवन को ऐसे एकांकी अंत से बचाकर उसे जीवन के निरन्तर गतिशील प्रवाह में मिलाने का सम्बल देता है।”¹³ ये जीवन—मूल्य, व्यक्ति के चरित्र, सभ्यता तथा संस्कृति के मेरुदण्ड बनते हैं। “साहित्यकार मानवीय परिवेश से मूल्यों के उद्घाटन का प्रयत्न करता है, और उसका यही प्रयत्न साहित्य—सृजन करता है।”¹⁴ साहित्य में विविध सामाजिक समस्याएँ विविध रंगों में प्रतिबिम्बित होती हैं। साहित्यकार के लिए समाज वह आधार पीठिका है, जहाँ वह स्वयं को लेकर जीवन के विकासशील सोपानों पर चढ़ता हुआ सामाजिक जीवन में व्याप्त स्वानुभूत चित्र को समाज के लिए प्रस्तुत करता है। महादेवी ने अपने साहित्य में जीवन में व्याप्त विषमताओं को मार्मिक रूप से चित्रित किया है। महादेवी इन समस्याओं को सुलझाने के लिए मानवीय मूल्यों को ही उपादेय मानती हैं। महादेवी उस समय साहित्य सृजन कर रही थी जब पाश्चात्य संस्कृति के अधिक सम्पर्क में आने के कारण प्राचीन रूढ़ियों के बंधन ढीले पड़ने लगे थे। प्राचीन मान्यताएँ टूट रही थी। विषमताओं के

कारण सामाजिक धारा छिन्न-भिन्न होकर अनेक मार्ग बना रही थी। इस प्राचीनता और नवीनता की सन्धि पर महादेवी ने अपना साहित्य खड़ा किया, जिसमें सामाजिक समस्याओं के औचित्य का लेखा-जोखा महादेवी ने अपने युग की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत किया। इलाचंद्र जोशी कहते हैं—“मैंने देखी—एक ऐसी नारी, जो स्वतन्त्र चेतना थी, जो पाश्चात्य संस्कृति से परिचित होने पर भी भारतीय संस्कृति की परम्परा को पूर्णतः आत्मसात् कर चुकी थी।”¹⁵ महादेवी वर्मा नवीनता को साहित्य के लिए उचित मानते हुए कहती हैं—“नदी के एक होने का कारण उसका पुरातन जल नहीं, नवीन तरंग भंगिमा है। देश-विदेश के लिए भी यह सत्य है। प्रत्येक युग के साहित्य में नवीन तरंगाकुलता उसे मूल्य प्रवाहिनी से विछिन्न नहीं करती वरन् उन्हीं नवीन तरंग-भंगिमाओं की अनंत प्रवृत्तियों के कारण मूल प्रवाहिनी अपने लक्ष्य तक पहुँचाने की शक्ति पाती है।”¹⁶

1914-18 का महायुद्ध विश्व के इतिहास तथा नवीन मूल्यों के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण था। इन नवीन मूल्यों का प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ा। फलतः भारतीय समाज का एक नयी चेतना से साक्षात्कार हुआ। यह नयी चेतना थी, व्यक्तिवाद। चूँकि साहित्यकार समाज का ही एक अंग है, अतः उसकी चेतना का विकास समाज में ही होता है। महादेवी वर्मा कहती हैं कि “अपने सृजन से साहित्यकार स्वयं भी बनता है, क्योंकि उसमें नये संवेदन जन्म लेते हैं, नया सौंदर्यबोध उदय होता है और नये जीवन-दर्शन की उपलब्धि होती है।”¹⁷ छायावादी कवियों ने आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा प्रकट की तथा साथ ही उनका हृदय हर तरह की संकीर्णता का विरोध करता है। उनके विरोध का कारण बीसवीं सदी में ज्ञान का मानसिक क्षितिज पर विस्तार था, जिसने पुरुष के साथ-साथ नारी को रुढ़ि-विद्रोह और आत्म-विकास के लिए प्रेरित किया।

बीसवीं सदी में राष्ट्रीय आंदोलन के उदय से स्त्री मुक्ति के आंदोलन को बहुत बल मिला। स्वतन्त्रता के संघर्ष में स्त्रियों ने एक सक्रिय और महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। आंदोलन में स्त्रियों ने पुरुषों के साथ बड़ी संख्या में भाग लिया। 1918 के बाद वे राजनीतिक जलसों में भी जाने लगीं। विदेशी वस्तुओं तथा शराब बेचने वाली दुकानों पर धरना देने लगीं। इतना ही नहीं असहयोग आंदोलन में गांधी जी के साथ जेल गयीं तथा जन-प्रदर्शनों में खुलकर भाग लेकर लाठी तथा गोलियों का सामना किया। प्रसिद्ध कवयित्री सरोजिनी नायडू कांग्रेस की अध्यक्ष बनी। भारतीय स्त्रियों की जागृति तथा मुक्ति में सबसे महत्वपूर्ण योगदान राष्ट्रीय आंदोलन में उनका सक्रिय योगदान था। अब उन्हें घरों में कैद 'गुड़िया' या 'दासी' समझना मूर्खता थी। उन्होंने अब स्वयं मनुष्य के रूप में अपने अधिकारों का दावा किया। अब तक प्रबुद्ध वर्ग स्त्रियों के कल्याण के लिए कार्यरत रहा। लेकिन अब स्वयं उसने मनुष्य के रूप में अपने अधिकारों का दावा किया। अब आत्मचेतन तथा आत्म-विश्वास प्राप्त स्त्रियों ने स्वयं यह काम संभाला। महादेवी के साहित्य पर तत्कालीन स्त्रियों की सामाजिक स्थिति, नारी स्वातंत्र्य आंदोलन का प्रभाव पड़ा। अमृतराय कहते हैं—“कोई भी साहित्यकार जो मनुष्य की हित कामना सच्चे हृदय से करता है, अपने समाज की परिस्थितियों को ठीक ढंग से अपने साहित्य में चित्रित किये बिना नहीं रह सकता।”¹⁸ महादेवी ने युग संधि के काल-कर्म चेतना को अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया। उनके काव्य में दुखवाद, मानिनी नायिका की प्रेरणा को तत्कालीन प्रभाव माना जाता है। लेकिन जहाँ तक आत्म-सम्मान और व्यक्तित्व की भूमि है, वह उनकी निजी है। मैनेजर पाण्डेय अपने लेख 'शृंखला की कड़ियाँ : मुक्ति की राहें' में कहते हैं—“महादेवी वर्मा की कविता में मिटने के अधिकार की मांग से भारतीय समाज में स्त्री जीवन के प्रचलित और प्रसारित लक्ष्य की ही पुष्टि होती है।”¹⁹

छायावादी काव्य की प्रवृत्ति व्यक्तित्व के प्रकाशन की ओर अधिक रही। काव्य में दुखी जीवन की गाथा का चित्रण हो रहा था। मानव की भावना वैयक्तिक हो रही थी। इस व्यक्तिवाद का कारण निराशा की भावना थी जो वेदनाभाव और पलायनवाद के रूपों में प्रतिफलित हो रही थी। महादेवी के साहित्य के मूल में भी व्यक्तिवाद का स्वर है। नवीन जीवन बोध ने उनके गीतों में व्यक्त प्रेम की पीर को अधिक गहरा और अनुपम बनाया। उनके गीतों में वैयक्तिक अनुभूति के रूप में सामाजिक बन्धनों से जकड़ी हुई भारतीय नारी की घनीभूत वेदना झंकृत हुई है।

महादेवी वर्मा : कविता में स्त्री-स्वर

छायावाद का सारा स्वातंत्र्य-संघर्ष अकेले व्यक्ति का था। छायावादी कवि अपने जीवन के व्यापक संघर्ष का अनुभव कर रहे थे। उनका सामाजिक संघर्ष साहित्य में अभिव्यक्त हो रहा था। “समष्टिगत जीवन की कठोरता, शोक, संघर्ष और निष्पीड़न छायावादी कवियों की व्यष्टिगत-वेदना में ही विलीन हो गया।”²⁰ छायावादी कवि पाश्चात्य समाज-दर्शन और साहित्य से प्रभावित तो थे ही यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति तथा फ्रांस की राजक्रान्ति का भी उन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। निराला के ‘सरोज-स्मृति’ में “हारता रहा मैं स्वार्थ समर” तथा ‘राम की शक्ति पूजा’ में संघर्ष के संकेत मिलते हैं। पंत प्रेम के क्षेत्र में संघर्षरत तथा विद्रोही दिखते हैं। ‘पल्लव’ से ‘ग्रन्थि’ काल तक वे एक विद्रोही की तरह खुलकर अपने असंतोष को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार प्रसाद ने अपने अभाव को रहस्यवाद का रूप दिया। यथार्थ की पीड़ा से भागने के लिए अचेतनता के अतिरिक्त सागर के निर्जन तट पर भागने की इच्छा रखते हैं।

“ले चल मुझे भुलावा देकर

मेरे नाविक धीरे-धीरे।”

डॉ० नामवर सिंह कहते हैं—“सामंती रूढ़ियों वाले समाज के सामने जब एक पुरुष की यह स्थिति है, तो इस पुरुष प्रधान समाज में नारी के लिए आत्माभिव्यक्ति में कितनी बड़ी कठिनाई हो सकती है, यह सहज अनुमेय है। फिर भी महादेवी वर्मा ने अपने गीतों में वैयक्तिक ढंग से अभिव्यंजना की और इसके लिए उन्होंने कितने प्रवाद झेले, इसे बतलाने की ज़रूरत नहीं है।”²¹ महादेवी ‘मैं नीर भरी दुख की बदली’ में निज के साथ समस्त भारतीय नारी की दशा को चित्रित करती हैं। अतः कहा जा सकता है पुरुष प्रधान समाज में नारी के लिए अब भी संभव नहीं था कि वह खुलकर बात कहे। रूढ़ियों का विरोध तो बहुत दूर की बात थी। नारी, पुरुष से अधिक बंदिनी हमेशा से रही है। नारी की इस दशा की अभिव्यक्ति रवीन्द्रनाथ टैगोर ‘खेया’ की कविता ‘नई बहू’ में सांकेतिक रूप से करते हैं। जब पुरुष की यह दशा है तो नारी के लिए तो यह दुःसाहस से कम नहीं। नयी शिक्षा ने भले ही संकीर्णता के इन बंधनों को थोड़ा ढीला किया हो। फलतः मध्यवर्गीय नारी का समाज में जन्म हुआ। लेकिन अब भी एक आवरण था जो स्पष्ट न होने के कारण रहस्यमय था। महादेवी ने पुरानी सीमाओं के प्रति अपना विरोध व्यक्त किया और साथ ही वह काल्पनिक तथा असीम आकाश में उड़ने की इच्छा भी अभिव्यक्त की, क्योंकि वास्तविकता कुछ और थी। यथार्थ कठोर था। महादेवी ने सामंतवादी ताकतों का विरोध करने के लिए ही काव्य में रहस्यवाद का मार्ग चुना। महादेवी स्वयं रहस्यवाद के विषय में कहती हैं—“मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग—जनित आत्म विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता, तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस (प्राकृतिक) अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का (रहस्यवादी काव्य का) दूसरा

सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।²² अतः स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए महादेवी वर्मा ने रहस्यात्मकता को चुना। इंद्रनाथ मदान कहते हैं—“एक नारी होने के कारण उन्होंने अतृप्त प्रेम को खुलकर व्यक्त करने की अपेक्षा प्रतीक—पद्धति का आश्रय लिया है। इसलिए उनकी वेदना तथा पीड़ा का स्वरूप लौकिक न होकर अलौकिक है, मानवीय न होकर रहस्यात्मक है।²³ सामाजिक रूढ़ियों के प्रहार की आशंका से जब कवियों को वैयक्तिक अनुभूतियों के लिए रहस्यवाद का सहारा लेना पड़ा तो महादेवी ने यदि नारी होकर ऐसा किया तो उचित ही था। पंत कहते हैं—“महादेवी का काव्य मुख्यतः भाव—संवेदना प्रधान है। अपने दर्शन बोध या मूल्य—बोध को उन्होंने भावनाओं के आरोहण—अवरोहण के लिए सोपान मात्र बनाया है। उनमें मध्ययुगीन रहस्यवादी अभिव्यक्ति का जो सबसे अधिक प्रभाव मिलता है, इसका मुख्य कारण उनका नारी हृदय का सहज—संकोच तथा वर्तमान सामाजिक परिस्थिति की पृष्ठभूमि में नारी—जीवन की सीमाएँ ही हैं। इन कुछ परिस्थितियों में अपने भीतर भावात्मक अन्तः सन्तुलन करने की साधना से अधिक उपयोग उन्होंने रहस्यवादी प्रणाली की अभिव्यंजना के लिए किया है।²⁴ महादेवी अपने निबंध ‘काव्य—कला’ में कहती हैं—“बाह्य जीवन की कठोरता, संघर्ष, जय पराजय सब मूल्यवान हैं पर अन्तर्जगत की कल्पना, स्वप्न, भावना आदि भी कम अनमोल नहीं।²⁵ ‘मैं नीर भरी दुख की बदली’ कह कर महादेवी व्यक्तिगत पीड़ा को लोकव्यापी बनाकर दुख—सुख का सामंजस्य स्थापित करती हैं। महादेवी आस्था को सृजन की दृष्टि से व्यक्तिगत पर प्रसार की दृष्टि से समष्टिगत मानती हैं। महादेवी का काव्य समस्त भारतीय नारी जीवन की जड़ता और विपरीत गति तत्त्व के विरुद्ध है जो जन्म से अपमानित, शोषित और युगों से तिरस्कृत और पीड़ित है। यह एक नारी की विद्रोह वाणी है। डॉ० राम रतन भटनागर कहते हैं—“उसकी भूमिका भले

ही व्यक्तिगत रही हो परन्तु उसमें मध्यवर्गीय मन की समष्टिगत अभिव्यक्ति भी हुई है। मीरा का स्वर महादेवी का स्वर बन कर नारी—जागरण के प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।”²⁶

महादेवी के काव्य में दुखवाद, नैराश्यवाद, रुदनवाद आदि को खोजा जाता है तथा उन्हें एकांकी व्यक्तित्व माना जाता है। इसका कारण काव्य में व्यक्त करुणा की प्रचुरता है जो उनकी व्यक्तिगत रुचि है। साथ ही काल और सीमा के बन्धन में जकड़ी हुई असीम चेतना का क्रन्दन। महादेवी स्वयं कहती हैं कि दुःख की अभिव्यक्ति काल और सीमा में जकड़ी हुई असीम चेतना का क्रन्दन है। भारतीय समाज में परतंत्र नारी के क्रन्दन का भी यह प्रतीक है। महादेवी भारतीय स्त्रियों की करुण दशा से अत्यंत निकट से अनुभूत थी, क्योंकि वह स्वयं नारी थीं। महादेवी स्वयं इस अभिव्यक्ति की उपभोक्ता थी। रामधारी सिंह दिनकर कहते हैं—“कविता के भीतर उन्होंने इस स्थिति से हार कर औरतों की बदकिस्मती का रोना रोया है। महादेवी जी के आँसू भारत की सभी नारियों के आँसू हैं, उनका दुखों को सुख मानने का भाव, भारत की परंपराप्रिय नारियों का भाव है जो जीवित इसलिए रही हैं कि वे विपत्तियों से समझौता करना जानती थी उन्हें अपना भाग्य समझ कर भोगना जानती थी।”²⁷

“विरह का जलजात जीवन

विरह का जलजात

वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास”

वेदना का कारण उन्हें ज्ञात है—

“है पीड़ा की सीमा यह

दुख का चिर सुख हो जाना ।”

इसी प्रकार सान्ध्यगीत में कहती हैं—

“मैं नीर भरी दुख की बदली।

विस्तृत नभ का कोई कोना

मेरा न कभी अपना होना

परिचय इतना इतिहास यही

उमड़ी कल भी मिट आज चली।

मैं नीर भरी दुख की बदली।”

उनके काव्य में वेदना के आध्यात्मपरक स्वरूप को ही खोजा जाता और उन्हें रहस्यवादी होने की संज्ञा दी जाती है। पंत कहते हैं—“महादेवी की काव्यात्मक वेदना का कारण हमें आत्मा—परमात्मा में न खोजकर वर्तमान अविकसित संकीर्ण मरणोन्मुखी सामाजिक यथार्थ के निर्मम—दंश में तथा भावी आदर्श के स्पर्श में खोजना चाहिए।”²⁸ उनके काव्य में व्याप्त दुख, वेदना, निराशा और अतंर्मुखी व्यक्तित्व को उनका तथा तत्कालीन समाज में भारतीय स्त्री के जीवन की वास्तविक स्थिति को मानते हुए मैनेजर पाण्डेय कहते हैं— “उनकी कविता में दुख है, वेदना है, निराशा है, आँसू है, अतंर्मुखता है और अभिव्यक्ति शैली में परोक्ष की प्रधानता भी है, पर साथ ही वहां असंतोष है, आक्रोश है और संघर्ष की चेतना भी।”²⁹ नारी जीवन की समस्याओं, अतृप्त भवनाओं एवं कुण्ठाओं के साथ महादेवी ने अपने साहित्य में उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता की पुकार का भी विशुद्ध वर्णन किया है।

“विकसते मुरझाने को फूल,

उदय होता छिपने को चन्द्र ।

शून्य होने को बढ़ते मेघ,

दीप जलता होने को मन्द ।

यहाँ किसका अनन्त यौवन

अरे अस्थिर छोटे जीवन" (नीहार)

महादेवी वर्मा के काव्य में वेदना के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए शचीरानी गुर्तू कहती हैं—“वेदना लौकिक प्रेम की सहज अनुभूति से उद्भूत है और काल्पनिक आवरण से लिपट कर रहस्यपूर्ण होती गई हैं।”³⁰ इसी प्रकार डॉ० बच्चन सिंह कहते हैं—“वास्तविकता तो यह है कि वे और चाहे जो कुछ हो, रहस्यवादी नहीं हैं। वे अंधेरे से जूझती हुयी निष्कंप दीपशिखा है। प्रिय और प्रियतम शब्द परमात्मा के प्रतीक नहीं हैं। वे उन्हीं के व्यक्तित्व के अंग हैं।”³¹ महादेवी के काव्य में रात और अंधकार का चित्रण है और घोर अंधकार से लड़ता हुआ दीपक उनके संघर्ष का प्रतीक है। वह स्वयं ‘दीपशिखा’ के ‘दो शब्द’ में कहती हैं—“आलोक मुझे प्रिय है, पर दिन से अधिक रात का। दिन में तो अंधकार से उसके संघर्ष का पता नहीं चलता, परन्तु रात में हर झिलमिलाती लौ योद्धा की भूमिका से अवतरित होती है।”³² उनके इस कथन से स्पष्ट होता है कि उन्हें अंधकार से अधिक प्रकाश पसंद है और पलायन से अधिक संघर्ष। उनकी कविता में अंधकार से आलोक का संघर्ष भारतीय स्त्री के जीवन की पराधीनता के अंधकार से स्वाधीनता की आकांक्षा का संघर्ष है। महादेवी भारतीय नारी की पीड़ा को इस प्रकार व्यक्त करती हैं—

‘रात सी नीरव व्यथा

तम सी अगम मेरी कहानी’

इस पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ ही वह दृढ़ता के साथ स्त्री स्वाधीनता के संघर्ष की आकांक्षा व्यक्त करती हैं—

“रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ।”

“ न पथ में रुंधती ये

गहनतम शिलाएँ
 न गति रोक पाती
 पिघल मिल दिशाएँ
 चली मुक्त ये ज्यों मलय
 की मधुर बात'' (दीपशिखा)
 "अन्य होंगे चरण हारे
 और है जो लौटते, दे शूल को
 संकल्प सारे,
 दुखव्रती, निर्माण—उन्मद,
 यह अमरता नापते पद,
 बाँध देंगे अंक संसृति से तिमिर से स्वर्ण—बेला
 पथ रहने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला।"

कर्तव्य पर दृढ़ता से, अडिग विश्वास के साथ पंथ अपरिचित होते हुए, प्राण भी अकेला फिर भी कदम हारने वाले नहीं हैं। दुःख अवश्य है लेकिन निर्माण के लिए उमंगित है अमरता को नापते कदम अंधकार में पद चिह्नों से स्वर्ण बेला का निर्माण करेंगे। महादेवी वर्मा ने दीप—शिखा के 'दो शब्द' में लिखा है, "आलोक मुझे प्रिय है, पर दिन से अधिक रात का। दिन में तो अंधकार से उसके संघर्ष का पता ही नहीं चलता, परंतु रात में हर झिलमिलाती लौ योद्धा की भूमिका में अवतरित होती है।"³³

अतः कह सकते हैं महादेवी का सम्पूर्ण कवि—व्यक्तित्व सूक्ष्म भाव चेतना से गठित है और उनके काव्य में व्यक्त जीवन के संकेत गूठ है। उन्होंने सत्य के सन्धान गीत लिखे हैं।

महादेवी वर्मा बुद्ध दर्शन तथा करुणा से प्रभावित थीं। दुख की अतिशयता ने बुद्ध को पलायन एवं निराशावाद की ओर अग्रसर किया। मैथिलीशरण गुप्त 'यशोधरा' के बुद्ध को दुख से ही आतंकित होकर तपस्वी बन जाते हैं। महादेवी वर्मा बुद्ध से प्रभावित हैं परन्तु उनकी करुणा उनकी अपनी है। उनकी विकलता उनकी निज की विकलता है। महादेवी ने 'रश्मि' में जिस वेदना के प्रति मोह प्रकट किया है, वह निराशाजन्य न होकर जीवन के विशाल कर्म क्षेत्र में व्यक्तित्व की समस्त शक्ति के साथ, संघर्ष करने को प्रेरित करता है। यह वेदना संघर्ष, विद्रोह या नव सृजन के लिए प्रेरित करती है।

“पर न समझना देव हमारी

लघुता है जीवन की हार।” (रश्मि)

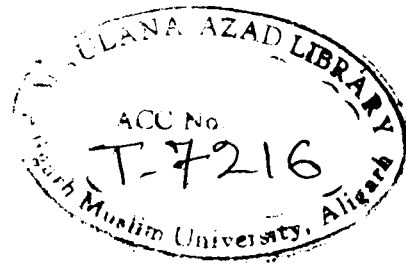
इंद्रनाथ मदान कहते हैं—“उनके काव्य का मूल्यांकन करते हुए आलोचकों ने मुक्ति पाने की इस आकांक्षा को प्रायः उपेक्षित ही किया है। इसलिए उनके काव्य को केवल आंसुओं से सिक्त तथा वेदना से मुक्त पाया है।”³⁴

महादेवी वर्मा के काव्य को रहस्यवाद तथा वेदनावाद मान कर उसके मूल में मुक्ति की आकांक्षा को उपेक्षित रखा गया है। महादेवी के काव्य में सामाजिक बन्धन से मुक्ति की आकांक्षा का स्वरूप प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त होने के कारण उसे रहस्यात्मक कहा गया। इंद्रनाथ मदान कहते हैं—“महादेवी ने व्यक्तिगत, सामाजिक पीड़ा को यदि अध्यात्म की भाषा में अत्यन्त निगूढ़ता और मार्मिकता से अभिव्यक्त किया तो यह उनकी संकल्पात्मक अनुभूति की तीव्रता और एक सुनिश्चित भाव-लोक को जन्म देने और विश्वसनीय बनाने वाली कवयित्री प्रतिभा का वरदान ही समझना होगा।”³⁵ महादेवी वर्मा के पास उनकी निजी आस्थाएँ हैं, मान्यताएँ हैं। अपने भावनात्मक व्यक्तित्व और अपनी मान्यताओं तथा आस्थाओं के कारण ही वे

साहित्य में प्रतिष्ठा पा सकीं। बहुत से आलोचक महादेवी के काव्य को उनके व्यक्तिगत जीवन की प्रतिक्रिया कहते हैं। अमृतराय मनुष्य अस्तित्व को सामाजिक क्रियाशीलता मानते हुए कहते हैं—“मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन और जातिगत जीवन दो अलग-अलग चीजें नहीं हैं। मनुष्य कितना भी व्यक्ति विशेष हो—उसकी यह विशिष्टता ही उसे एक व्यक्ति बनाती है, व्यक्ति विशेष सामुदायिक प्राणी। वही उसकी समग्रता है, सर्वांग समग्रता।”³⁶ इस प्रकार महादेवी का काव्य उनके व्यक्तिगत जीवन का ही पूरक है। उनके काव्य की आधार मूल भावना भले ही परिस्थितियों से जकड़े होने के कारण जीवन-कर्म में अस्पष्ट सी दिखे, उनकी कविताओं में स्पष्ट हो जाती है। अतः कहा जा सकता है छायावाद की प्रमुख विशेषता व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों की समष्टि जीवन की भाषा में बांधने वाला महादेवी का काव्य इस नयी परम्परा की ही देन है। छायावाद की एक अन्य विशेषता गीतिकाव्य है—छायावाद युग व्यक्ति प्रधान है और गीतिकाव्य व्यक्तिप्रधान काव्य। गीतिकाव्य की सभी विशेषताएँ महादेवी के काव्य में मिलती हैं।

महादेवी को सामाजिक अनुभूति से शून्य कहा जाता है। जबकि जर्जरित भारत के प्रति अपनी संवेदना को महादेवी वर्मा इस प्रकार व्यक्त करती हैं—

‘कर-कह दे माँ क्या देखूँ
देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को।
तेरी चिर यौवन सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ’



छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने काव्य में वेदना को स्वर दिया है तथा आत्मीयता से पूर्ण गद्य लिखा। महादेवी गद्य में निज वेदना से अविभूत

समाज के पीड़ित, उपेक्षित, प्रताड़ित एवं दलित सामाजिक प्राणियों को साकारता देने का प्रयास करती हैं। इस अभिव्यक्ति में उनका विद्रोह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उनका यह विद्रोह संवेदनशील नारी रूप लिए हुए अन्याय के प्रति विरोधी, समाज के कुसंस्कारों का उच्छेदक, कर्मनिष्ठ तथा कर्तव्यनिष्ठ संघर्षशील नारी साहित्यकार का है। गद्यकार महादेवी के साहित्य में उद्देश्य एवं विचारधारा की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। समाज के दीन-हीन वर्ग के प्रति सहानुभूति तथा समाज की अंध-रूढ़ियों एवं विकृतांगों के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह से मुक्त साहित्य गद्य-लेखिका महादेवी के व्यक्तित्व को मुखरित करते हैं, जो कवयित्री महादेवी से पृथक्, स्वतन्त्र एवं महत्वपूर्ण अस्तित्व रखता है, साथ ही उसका पूरक भी है। कृष्णा मजीठिया, महादेवी के गद्य को उनके कवि-कर्म का निकर्ष मानते हुए कहती हैं—“उनका गद्य एवं पद्य एक-दूसरे का पूरक है। महादेवी का पद्य जहाँ पर व्यष्टि-मूलक तथा आत्मकेन्द्रित है वहाँ उनका गद्य समष्टिमूलक तथा समाज केन्द्रित है। उनके गद्यकार में भी उनकी काव्यात्मक प्रतिभा ही सजग है। अपने विचारों को प्रकट करने के लिए महादेवी ने गद्य का ही सहारा लिया है।”³⁷ महादेवी जहाँ अपनी कविता में कल्पनाओं के द्वारा कविता का शृंगार करती हैं और उसे मानवेतर बना देती हैं वहाँ गद्य में उन्होंने जीवन को एक ठोस धरातल पर खड़ा कर दिया है। रामचन्द्र गुप्त कहते हैं—“उनके जीवन का वास्तविक विस्तार हमें उनके गद्य में ही देखने को मिलता है। जो करुणा उनके काव्य में निजी ऐकान्तिक हो उठी है वह गद्य में पहुँचकर सम्पूर्ण विश्व को छूने लगी है।”³⁸ महादेवी का सम्पूर्ण साहित्य जीवन की करुणा, दुख एवं पीड़ा की कहानी है। काव्य के माध्यम से तो कवयित्री महादेवी ने एक प्रकार से प्रत्यक्ष रूप में अपने दुख तथा पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। इसके लिए उन्होंने गीतिकाव्य को चुना है जिसमें उनकी अपनी वेदना, तड़प

आनी स्वाभाविक थी लेकिन गद्य में उनकी दिशा बदल गई। अमृतराय 'विचारधारा और साहित्य' में कहते हैं—“व्यक्ति, व्यक्ति के रूप में ही, सामाजिक प्राणी है, अतः उसकी जीवंत अभिव्यक्ति जब कि वह दूसरे लोगों के साथ मिलकर की गयी परिकल्पना की सीधी—सीधी अभिव्यक्ति का रूप नहीं भी लेती—सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति को और संपुष्ट करती है।”³⁹ महादेवी ने 'पर' में 'स्व' की अभिव्यक्ति की अर्थात् समाज के उपेक्षित, दलित एवं पीड़ित वर्ग के आख्यान के माध्यम से स्वयं अपने जीवन के दुःख—दर्द को भी अभिव्यक्त किया। स्वयं महादेवी के शब्दों में—“इन स्मृति—चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है।”⁴⁰ मानवतावाद उनके जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य है। कवि हृदय की विदग्ध कल्पनाएँ, पर्यवेक्षक की वस्तुन्मुखी यथार्थदृष्टि और भावुक सर्जक की समस्त संवेदनाएँ उनके गद्य में विद्यमान हैं। महादेवी ने शब्दों द्वारा जीवन को आकार दिया है। समाज के विविध रूपों और श्याम—श्वेत सभी पक्षों को उन्होंने अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है। महादेवी की समाज के प्रति सहानुभूति इन पंक्तियों द्वारा स्पष्ट होती है।

‘मेरे हँसते अधर नहीं

जग की आँसू लड़ियाँ देखो।”⁴¹

सामाजिक जीवन के विभिन्न आकारों के सम्पर्क में आने के कारण उनके चिंतन की दिशा और संवेदन को गति मिली है। महादेवी अपने गद्य में पूर्णतः समाजाश्रित हैं। जीवन की विषमता का मार्मिक व वास्तविक चित्रण उन्होंने भावात्मक शैली में किया है। उनके गद्य की विषय—वस्तु ठोस, सामाजिक तथा यथार्थवादी है। उनका यथार्थबोध अनुभूतिपरक है। महादेवी वर्मा कहती हैं—“साहित्यकार का जगत् के प्रति गम्भीर विश्वास ही उसे अपने जीवन को अपने साहित्य सृजन में पूर्णतः आत्मानुभूति प्रदान करता है। यह आस्था सृजन की दृष्टि से व्यक्तिगत प्रसार की

दृष्टि से समष्टिगत ही रहेगी।⁴² सूर्यप्रसाद दीक्षित महादेवी के यथार्थ-बोध के विषय में कहते हैं—“उसने खुली दृष्टि से समाज को देखा है और उसे यथावत् अंकित किया है। उसका यह यथार्थबोध अनुभूतिगत है। इसके भीतर सात्विक जिज्ञासा है, कर्तव्य की अंतर्प्रेरणा है, सक्रिय संवेदना है।”⁴³ महादेवी वर्मा ने जिन सुकुमार सपनों और कल्पनाओं को काव्य की विषयवस्तु बनाया था, उसमें वेदना, विद्रोह, असंतोष का जो रूप है उसके अस्तित्व की सच्चाई क्या है? यह उनके गद्य में स्पष्ट होता है। उनकी काव्य कृतियों की भूमिकाओं में जो गद्य रूप है, उससे स्पष्ट होता है कि अपनी बात कहने में महादेवी को पद्य की अपेक्षा गद्य अधिक उपयुक्त लगता है। महादेवी वर्मा अपनी पुस्तक ‘शृंखला की कड़ियाँ’, में ‘अपनी बात’ में कहती हैं “विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा लगता रहा है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है।”⁴⁴ क्योंकि महादेवी मानती है कि “गद्य तार्किक सत्य दे सकता है, पर काव्य में सत्य का रागात्मक रूप ही अपेक्षित रहेगा। जीवन की विषमता का समाधान खोजने में व्यस्त कवि इस प्रत्यक्ष सत्य की ओर ध्यान देने का अवकाश न पा सकें, अतः शुद्ध तर्कवादिनी पदावली ही इतिवृत्त का नवीन माध्यम बनने लगी। उसमें मर्मस्पर्शिता का जो अभाव मिलता था, उसे काव्य की त्रुटि न मानकर नवीनता का अनिवार्य परिणाम मान लिया गया।”⁴⁵ चूँकि बुद्धि की प्रधानता काव्य को नीरस बनाती है और कवि विचारों के प्रसार और प्रचार के उद्देश्य से कविता नहीं कर सकता, इसलिए विचारों की अभिव्यक्ति के लिए गद्य को माध्यम बनाना पड़ता है। गद्य और पद्य में अन्तर मुख्यतः यही है कि गद्य, पद्य की अपेक्षा जीवन के अधिक निकट होता है। गद्यकार जीवन के अति निकट से अपनी खुली आँख से जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण कर समीकरण प्रस्तुत करता है। इसके विपरीत काव्यकार

कल्पना या आदर्शों के रंग में रंगकर जीवन के खुरदरेपन को छिपा लेता है। गद्य में गद्यकार अपने वर्ण्य-विषय को इस ढंग से वर्णित करता है कि वह अधिक से अधिक जीवंत प्रतीत हो। महादेवी वर्मा कहती हैं—“साहित्य-सृजन व्यक्तिगत रुचि मात्र न होकर महत्त्वपूर्ण सामाजिक कर्म है।”⁴⁶ महादेवी का गद्य इस विशेषता से परिपूर्ण है। सूर्यप्रसाद दीक्षित कहते हैं—“महादेवी का गद्य उनकी वैचारिक विवशता का परिणाम है। नारी-जीवन और समसामयिक जीवन-बोध विषयक उनका चिंतन जब काव्यबद्ध नहीं हो सका तो उन्हें गद्य का आश्रय लेना पड़ा।”⁴⁷ पद्म सिंह चौधरी महादेवी के गद्य को उनके जीवन का वास्तविक विस्तार मानते हुए कहते हैं “महादेवी जी पद्य की अपेक्षा गद्य को सामाजिक चित्रण के लिए अधिक उपयुक्त मानती हैं।”⁴⁸ महादेवी वर्मा जीवन की विषमताओं से भयभीत होकर वैराग्य साधना का बाना धारण कर संसार से पलायन नहीं करना चाहती। वे कर्म पर विश्वास करती हैं। जीवन के प्रति उनका गहरा अनुराग है। अपनी आत्मा को वे संकीर्ण दायरे में न बाँधकर अन्य प्राणियों से सम्पर्क स्थापित करके उसका प्रसार करने में ही पूर्णतः सार्थक मानती हैं। सूर्यप्रसाद दीक्षित कहते हैं—“महादेवी वर्मा ने अपने साहित्य में ‘जीवन से संतप्त, समाज से अभिशप्त, सबसे परित्यक्त किंतु अक्षम वात्सल्य-वरदानमयी भारतीय नारी को यथार्थ की चित्रपटी पर विशेष रूप से अंकित किया गया है।”⁴⁹ गद्य-लेखिका महादेवी के साहित्य में करुणा का स्वर प्रधान है, उनकी करुणा एवं संवेदना समाज के उपेक्षित एवं शोषित वर्ग के प्रति तो है ही साथ ही विशेष रूप से नारी की समस्याओं के प्रति भी है। नारी की समस्याओं पर विचार करते हुए महादेवी का विशेष रूप से क्रान्तिकारी भावनाओं से युक्त व्यक्तित्व उभर कर सामने आता है। महादेवी अपने साहित्य में निम्न वर्ग के मानव मन को समष्टिगत रूप में अभिव्यक्त करती हैं। महादेवी का साहित्य नारी-जागरण के

प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। अपने साहित्य के माध्यम से नारी हृदय की आत्मकथा नये काव्य रूप में अभिव्यक्त हुई है। मैनेजर पाण्डेय साहित्य को एक जीवंत गतिशील प्रक्रिया मानते हुए कहते हैं— “रचनाकर्म मनुष्य के व्यापक सामाजिक कर्म का ही एक रूप है। रचनाकार केवल कलाकार ही नहीं होता, वह व्यापक सामाजिक प्रक्रिया में भाग लेता है, रचनाकार अपने सामाजिक जीवन में केवल कलाकार ही नहीं होता, वह कारीगर और कार्यकर्ता भी होता है।”⁵⁰ महादेवी वर्मा के साहित्य की मूल प्रेरणा संसार की कठोरता, निर्ममता और हृदयहीनता से परे नारी हृदय की करुण कथा है।

महादेवी का स्त्री विमर्श : ‘शृंखला की कड़ियाँ’

महादेवी वर्मा अत्यंत गम्भीर और शान्त हृदय से दलित उपेक्षित नारी वर्ग के विभिन्न पहलुओं पर विचार करती हैं। प्रेमचंद के बाद महादेवी वर्मा ने ही प्रमुख रूप से अपने साहित्य में निम्न वर्ग के जीवन के साथ नारी जीवन की समस्याओं के प्रति संकेत और संचेतना का परिचय दिया है। प्रेमचंद के समान महादेवी ने नारी जीवन की स्थिति, उसकी धर्मान्धता, आडम्बर, अन्धविश्वास इत्यादि पर दृष्टि डाली है। महादेवी का साहित्य युग-युग की नारी वेदना का नवीनतम संस्करण है। महादेवी अपने साहित्य में यही बात बार-बार कहती हैं। भारतीय नारी पति को परमेश्वर मानती है क्योंकि उसे सती, साध्वी, शीलवती आदि दिव्य पदवियों के सम्मोहन से फुसलाकर भ्रष्ट, दुराचारी और महान से महान पातकी पति को भी भगवान मानकर पूजते रहने का उपदेश दिया जाता है। महादेवी समाज में स्त्री-पुरुष के भेद को बताते हुए कहती हैं—“इन दोनों समाजों का अन्तर मिटा सकना सम्भव नहीं। उनका बाह्य जीवन दीन है और हमारा अन्तर्जीवन रिक्त। उस समाज में विकृतियाँ व्यक्तिगत हैं, पर सद्भाव सामूहिक रहते हैं, इसके विपरीत हमारी

दुर्बलताएँ समष्टिगत है पर शक्ति वैयक्तिक मिलेगी।”⁵¹ महादेवी की ‘शृंखला की कड़ियाँ’ समाजिक क्रान्ति की पुस्तक कही जा सकती है। इसमें जनता का पीड़ित स्वर मुखरित हुआ है। इसमें महादेवी के व्यक्तित्व का विद्रोही स्वर प्रकट हुआ है। वह समाज में होने वाले अन्यायों और अत्याचारों को देख कर मूक नहीं रह सकी। ‘शृंखला की कड़ियाँ’ में महादेवी ने समाज के उपेक्षित वर्ग तथा सबसे मुख्य विषय के रूप में नारी को चुना। महादेवी अपने इन निबंधों में यही बात बार-बार कहती हैं कि नारी का जीवन अथक साधना और तपस्या से पूर्ण होते हुए भी अत्यन्त उपेक्षित और परित्यक्त क्यों रहा है। समाज तथा इतिहास इस बात का गवाह है कि नारी की स्थिति में सम्मान का स्तर उतरता चढ़ता रहा है। तिल-तिल जलने और घुटने पर भी वह कभी अपनी व्यथा को मुख पर नहीं लाती। शिकायत तो दूर वह अपने मन में भी यह अहसास नहीं होने देती। महादेवी वर्मा नारी की दशा से अवगत हैं। साथ ही अपनी आँखों से समाज में नारी स्थिति तथा समस्याओं को देख कर व्यथित हुयी। महादेवी स्वयं नारी है। इसलिए नारी के दुःख-दर्द को जितना सत्य रूप में उन्होंने समझा है, उतना शायद पुरुष के लिए सम्भव नहीं है। “पुरुष-संदर्भ से स्त्री की अस्मिता जब भी निर्मित होगी, स्त्री मातहत होगी। उसकी स्वायत्त छवि उभरकर सामने नहीं आ पाएगी। पुरुष-संदर्भ में स्त्री के कार्यभारों को तय करने का एक लाभ यह होता है कि स्त्री को पुरुष वर्ग समूचा हज़म कर जाता है, पितृसत्ता हज़म कर जाती है।”⁵² इसी विषय में अमृतराय कहते हैं—“पुरुष में जो नारी-चरित्र है उनमें सबसे गहरी कोमलता है जो शरतबाबू की नायिकाओं में पाई जाती है लेकिन महादेवी के चरित्रों में इसके अलावा और भी कुछ है। उनमें ज्यादा रक्त माँस है उन पर वास्तविकता की मोहर भी ज्यादा गहरी है।”⁵³ इसी प्रकार शांतिप्रिय द्विवेदी कहते हैं—“हमारे साहित्य में पुरुष की आँखों से देखा हुआ समाज पर्याप्त आ

चुका है, किन्तु यह पहला गंभीर प्रयत्न हैं जो नारी की आँखों से समाज का चित्रोद्घाटन करता है। शरत् ने समाज की जिस मर्यादा का भार देवियों के कंधों पर डाल दिया है, 'अतीत के चलचित्र' में महादेवी जी ने उसी को संभाला है। यह पुस्तक एक सामाजिक दर्पण है। अत्याचारी उसमें अपनी मुखाकृति देख सकता है और नारी अपनी साधना का प्रकाश।⁵⁴ महादेवी नारी के आर्त्तस्वर के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और परम्परागत संस्कारों पर कहीं-कहीं विद्रोही भी हो उठती हैं। शचीरानी गुटू के शब्दों में—“सामाजिक जीवन की गहरी परतों को छूने वाली इतनी तीव्र दृष्टि, नारी जीवन के वैषम्य और शोषण को तीखेपन से आँकने वाली इतनी जागरूक प्रतिभा और निम्नवर्ग के निरीह, साधनहीन प्राणियों का ऐसा हार्दिक और अनूठा चित्र अन्यत्र कम ही मिलेगा।”⁵⁵ महादेवी वर्मा ने 'शृंखला की कड़ियाँ' में अपनी समाज केन्द्रित दृष्टि से नारी की ज्वलन्त समस्याओं को अपने साहित्य का मुख्य विषय बनाया तथा साथ ही उसके समाधान भी प्रस्तुत किए। महादेवी 'शृंखला की कड़ियाँ' में 'अपनी बात' में कहती हैं—“समस्या का समाधान समस्या के ज्ञान पर निर्भर है और यह ज्ञान ज्ञाता की अपेक्षा रखता है। अतः अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए। सामान्यतः भारतीय नारी में इसी विशेषता का अभाव मिलेगा।”⁵⁶ मैनेजर पाण्डेय ने महादेवी के संघर्षमयी जीवन का चित्रण इस प्रकार किया है— “महादेवी को अंधकार से अधिक प्रकाश प्रिय है और पलायन से अधिक संघर्ष। उनकी कविता में अंधकार से अलोक का जो संघर्ष है, वह भारतीय स्त्री के जीवन की पराधीनता के अंधकार से स्वाधीनता की आकांक्षा का संघर्ष है।”⁵⁷ महादेवी का साहित्य बताता है कि संस्कारों के बहाने स्त्री को अपनी पहचान मिलती है। स्त्री की पहचान जन्मजात न होकर सामाजिक निर्मित है। स्त्री की अस्मिता पुरुष संदर्भ द्वारा तय की जाती है। पुरुष संदर्भ के ही कारण उसे दर्जो

में पहचाना जाता है। ये हैं पत्नी, माँ, बहन, बेटा या रखैल। इसके अतिरिक्त उसकी कोई पहचान नहीं है। अगर कोई भिन्न रूप सामने आता है तो समाज उसे पहचाने से इन्कार कर देता है या उपेक्षित का विशेष दर्जा देता है। महादेवी इसी बात को अपने संस्मरण 'अभागी स्त्री' में इस प्रकार कहती हैं—“समाज इन्हें न जाने कितने दीर्घकाल से, कितने ही उपायों के द्वारा समझाता आ रहा है कि यह माता, पुत्री, पत्नी आदि त्रिगुणात्मक उपाधियों से रहित जीवन मुक्त नारी—मात्र है और इनकी इसी मुक्ति से समाज का कल्याण बंधा हुआ है। फिर भी यदि यह अपने गुरु कर्तव्य से च्युत होकर पत्नीत्व, मातृत्व आदि सम्बन्धों को चुराती फिरें, तो समाज चुराई हुए वस्तु पर इनका स्वत्व स्वीकार क्या अपना विधान ही मिथ्या कर दें।”⁵⁸ यह सत्य है नारी को नारी का दुश्मन कहा जाता है तो दूसरी ओर यह भी सत्य है कि नारी मन को नारी ही समझ सकती है। महादेवी अपने संस्मरण 'सबिया' में कहती हैं—“दुःखी और दुर्बल स्त्री पर दो-दो बच्चों के साथ अन्धी माँ का भार लादने वाले मैकू पर मेरा मन झल्ला उठा। पुरुष भी विचित्र है वह अपने छोटे-से छोटे सुख के लिए स्त्री को बड़ा-से-बड़ा दुख दे डालता है। और ऐसी निश्चिन्तता से, मानो वह स्त्री को उसका प्राप्य ही दे रहा है। सभी कर्तव्यों को वह चीनी से ढकी कुनैन के समान मीठे-मीठे रूप में ही चाहता है।”⁵⁹ सबिया का पति मैकू उसे छोड़कर, गेंदा को लेकर कहीं चला गया जो कि उसके जाति भाई की वधू थी। लेकिन सबिया ने उसके लौट आने की आशा नहीं छोड़ी। वही गेंदा का पति सबिया के सामने घर बसाने का प्रस्ताव रखता है। सबिया के अस्वीकृत करने पर वह बूढ़ी विधवा भाभी को लक्ष्मी बनाकर घर ले आता है। एक दिन अचानक मैकू गेंदा के साथ वापस आता है। बेचारी सबिया तो खुशी से मानो पागल हो उठी अपने परमेश्वर के आगमन की खुशी में सत्यनारायण की कथा का प्रबन्ध करने दौड़ पड़ती है। बाद में उसे मैकू से

ज्ञात होता है कि गेंदा उसके किसी परिचित के घर अतिथि रूप में है। एक पुरुष का अन्याय यह है कि वह उसकी मौत की सूचना ही नहीं देता बल्कि उसे अपने घर रखने की भी खुशामद कर रहा है। और हद तो यह है सबिया की रेशमी साड़ी देखकर उससे कहता है “यह तो तेरे काले रंग पर नहीं फबती सबिया, इसें गेंदा को दे डाल, उस पर खूब खिलेगी।”⁶⁰ मानो वह कह रहा हो जब तेरा सुहाग ही गेंदा का हो गया तो तेरा शृंगार किस अर्थ और एक स्त्री की सहनशीलता तो देखें जो स्वयं एक स्त्री ही अनुभव कर सकती है—“बिना एक शब्द कहे सबिया ने नीली साड़ी उतारकर मैकू के हाथ में थमा दी और स्वयं पुरानी पहनकर अन्धी सास के रोकते रहने पर भी गेंदा को घर लिवा लाने चली गयी।”⁶¹ यह सत्य है नारी बड़े से बड़ा त्याग कर सकती है लेकिन स्त्री, मन जिसे एक बार देती है उसे अन्तिम साँस तक निभाती है। वही मन जब कोई बाँट दे तो उसका मन टूट जाता है। महादेवी यही नारी मन चित्रित करती हैं—“उसका मन टूट गया, क्योंकि वह कभी नीम से सिर टिकाकर रो लेती है और कभी झाड़ू देते—देते रुक कर आँसू पोंछने लगती है। बेचारी कब से राह देखती थी, नाम रटती थी। अब आया तो गेंदा को लेकर”⁶² क्या पुरुष मन इस वेदना को जान सकता है। महादेवी कहती हैं—“उसकी व्यथा ने मेरे हृदय को एक विचित्र रूप से स्पर्श किया। समाज ने स्त्री—मर्यादा का जो मूल्य निश्चित कर दिया है, केवल वही उसकी गुरुता का मापदण्ड नहीं। स्त्री की आत्मा में उसकी मर्यादा की जो सीमा अंकित रहती है, वह समाज के मूल्य से बहुत अधिक गुरु और निश्चित है; इसी से संसार भर का समर्थन पाकर जीवन का सौदा करने वाली नारी के हृदय में भी सतीत्व जीवित रह सकता है और समाज भर के निषेध से घिर कर धर्म का व्यवसाय करने वाली सती की साँसे भी तिल—तिल करके असती के निर्माण में लगी रह सकती है।”⁶³ इसी प्रकार ‘बिट्टो’ संस्मरण में बिट्टो यह समझ नहीं

पाती कि विधवा होने पर अपने ही घर में क्यों उपेक्षिता हो जाती है “वह समझ ही न पाती कि जिस घर में उसका जन्म और पालन हुआ है, उसी में यदि रात-दिन काम करके अपने ही सहोदरों से उसे भोजन वस्त्र मिल जाता है, तो उसे कृतज्ञता के समुद्र में क्यों डूब जाना चाहिए। अकेले बड़े भाई ही नौकर थे, शेष दोनों उसी ज़मीन-जायदाद की देख-रेख में लगे रहते थे जो उसके भी पिता की थी।”⁶⁴

‘बालिका माँ’ संस्मरण में महादेवी कहती हैं—“अपने अकाल वैधव्य के लिए वह दोषी नहीं ठहरायी जा सकती, उसे किसी ने धोखा दिया, इसका उत्तरदायित्व भी उस पर नहीं रखा जा सकता; पर उसकी आत्मा का जो अंश, हृदय का जो खण्ड उसके सामने है, उसके जीवन-मरण के लिए केवल वही उत्तरदायी है। कोई पुरुष यदि उसको अपनी पत्नी नहीं स्वीकार करता, तो केवल इसी मिथ्या के आधार पर वह अपने जीवन के इस सत्य को, अपने बालक को अस्वीकार कर देंगी? संसार में चाहे इसको कोई परिचयात्मक विश्लेषण न मिला हो, परन्तु अपने बालक के निकट तो वह गरिमामयी जननी की संज्ञा ही पाती रहेगी”⁶⁵

महादेवी वर्मा कहती हैं भले ही स्त्री दुर्बल, निराश्रित हो, पर अपने बच्चे को हृदय से लगाकर निर्भर अनुभव करती है उसकी रक्षा के लिए वह उग्र चंडी रूप धारण करती है तो क्यों नहीं वह साहस तथा दृढ़ता के साथ अपने शिशु के पालन का संकल्प लेती है—“बर्बरों, तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी।”⁶⁶

महादेवी वर्मा की पुस्तक ‘शृंखला की कड़ियाँ’ हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श को प्रारम्भ करने वाली पहली पुस्तक है। सही मायने में स्त्री-विमर्श की शुरुआत यही से मानना चाहिए। हमारे समाज में स्त्री की हैसियत और उनकी अस्मिता से जुड़े जितने भी विषय हैं, वे सब ‘शृंखला की कड़ियाँ’ में मिल जाते हैं। मैनेजर पाण्डेय ने इस पुस्तक के माध्यम से महादेवी के विषय में लिखा है—“शृंखला

की कड़ियाँ की लेखिका भारतीय स्त्री समुदाय की आवयविक बुद्धिजीवी के रूप में हमारे सामने आती है। उसके विचारों के निर्माण में भारतीय समाज के अतीत और वर्तमान के स्त्री-जीवन की कठोर वास्तविकताओं के गम्भीर ज्ञान, जटिल स्थितियों की अचूक पहचान और लेखिका के अपने व्यापक जीवनानुभवों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही उसमें भारतीय स्त्री की आर्थिक, सामाजिक और संस्कृति पराधीनता से मुक्ति की गहरी चिन्ता है।⁶⁷ शृंखला की कड़ियाँ एक ऐसी ही कृति है, जिसमें महादेवी वर्मा स्त्री की पराधीनता और उसके कारणों की तलाश करते हुए ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर स्त्री स्वाधीनता की बातें करती हैं। स्त्री की दशा और पराधीनता के प्रसंग में भारतीय सामाजिक व्यवस्था के साक्ष्यों का उल्लेख करती हैं। पश्चिमी तथा पूर्वी देशों में स्त्री स्वाधीनता के लिए हो रहे आंदोलनों की बातें करती हैं और अर्थ-स्वातंत्र्य के सवाल पर पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था को स्त्री की आर्थिक गुलामी के लिए सर्वाधिक जिम्मेदार ठहराती हैं।

महादेवी वर्मा ने भारतीय समाज में स्त्री-पराधीनता से जुड़े सारे सवालों को इस पुस्तक के माध्यम से उठाया है और उन तमाम बातों का स्पष्ट विरोध किया है जो आचार-संहिता के रूप में समाज के प्रभुओं के द्वारा मात्र स्त्री के लिए निर्धारित की गई हैं। स्त्री-जीवन से संबंधित प्रेम, विवाह, शिक्षा, आर्थिक स्तर पर स्त्री की आत्मनिर्भरता, तात्पर्य यह कि स्त्री के व्यक्तित्व और जीवन से जुड़े सारे महत्त्वपूर्ण प्रश्न 'शृंखला की कड़ियाँ' में उठाए गए हैं और महादेवी वर्मा ने उनका स्त्री-पक्ष से विश्लेषण किया है। स्त्री को पुरुष के समान अधिकार देने की बात उन्होंने पूरे बल से कही है—“मनुष्य-जाति के सामान्य गुण सभी मनुष्यों में कम या अधिक मात्रा में विद्यमान रहेंगे। केवल विकास के अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ उन्हें बढ़ा-घटा सकेंगी। पतिता कही जाने वाली स्त्रियाँ भी मनुष्य-जाति से बाहर

नहीं हैं। अतः उनके लिए भी मानव-सुलभ प्रेम साधना और त्याग अपरिचित नहीं हो सकते। उनके पास भी धड़कता हृदय है, जो स्नेह का आदान-प्रदान चाहता रहता है। उसके पास भी बुद्धि है जिसका समाज के कल्याण के लिए उपयोग हो सकता है और उनके पास भी आत्मा है जो व्यक्तित्व में अपने विकास और पूर्णत्व की अपेक्षा रखती है।⁶⁸ महादेवी वर्मा का मानना है कि प्रकृति ने प्रजनन की जो जिम्मेदारी स्त्री को दी है, उसका निर्वाह करते हुए स्त्री पुरुष के साथ समरस, सहभागितापूर्ण जीवन जी सकती है। उनके यहाँ स्त्री-पुरुष के बीच सहज, समरस और स्वस्थ-सम्बन्धों की परिकल्पना की गयी है। महादेवी वर्मा ने दोनों को मनुष्य मात्र मानते हुए लिखा है—“समाज में स्त्री-पुरुष का परस्पर आचरण चरित्र का प्रधान अंग है और इस चरित्र के मूल में उनकी वह जातिगत चेतना रहती है, जिसके स्वस्थ रहने पर ही चरित्र का स्वास्थ्य निर्भर है। यदि इस चेतना को स्वस्थ और सन्तुलित विकास के उपयुक्त वातावरण न देकर चरित्र-सम्बन्धी विकृतियों से घेर दिया जाता है, तो यह जातिगत चेतना विकृत हो जाती है।”⁶⁹

महादेवी वर्मा ने स्वतंत्रता, समानता, न्याय, नागरिक अधिकार जैसे मौलिक अधिकारों को व्यावहारिक स्तर पर स्त्रियों को दिलाने की बात उठायी। स्त्री शोषण और उत्पीड़न के अमानवीय स्वरूप का विवेचन, विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए स्त्री विमर्श को विविध आयामों के साथ उठाया। भारतीय समाज में स्त्री की सामाजिक, राजनैतिक, और आर्थिक हैसियत और उसकी नियति को लेकर गंभीर विचारों का सिलसिला आधुनिक युग में नवजागरण काल से शुरू हुआ। नवजागरणकालीन रचनाकारों ने स्त्री-अस्मिता तथा स्त्री-जीवन के त्रासद पक्षों को अपनी रचनाओं में उभारा, परन्तु उनके लेखन में मुख्य रूप से स्त्री करुणा, सहानुभूति तथा संवेदना ही पा सकी। स्त्रियों की आर्थिक परतंत्रता का गहरा

अहसास करते हुए महादेवी वर्मा ने लिखा—“सम्पत्ति के स्वामित्व से वंचित असंख्य स्त्रियों के सुनहले भविष्यमय जीवन कीटाणुओं से भी तुच्छ माने जाते देख कौन सहृदय रो न देगा? ”⁷⁰ महादेवी वर्मा स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता की पक्षधर होते हुए भी इस बात का विरोध करती हैं कि स्त्री विज्ञापन की वस्तु बने। एक साक्षात्कार में महादेवी वर्मा ने कहा था—“आज बिना नारी के मंजन नहीं बिकता, साबुन नहीं बिकता, और तो और ब्लेड नहीं बिकता। जब आप व्यापार का साधन बन गयीं तो क्या कर सकेंगी।”⁷¹

भूमंडलीकरण की दुनिया में विज्ञापन और स्त्री पर्याय बन गये हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति को प्रोत्साहित करते बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पादनों को बाज़ार में स्थापित करनेवाले विज्ञापनों में स्त्री की कामुक अपील को भुनाया जा रहा है। नारी के इस रूप को देखकर आधुनिक युग के रचनाकार चिंतित हैं। नारी-शरीर के शोषण के विरोध में डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं—“आज नारी-शरीर का सर्वाधिक दुरुपयोग, शोषण नारी को केवल शारीरिक आकर्षण का विषय बनाकर किया जा रहा है। देह-व्यापार के अभूतपूर्व नए तरीके पूँजीवादी दलालों ने ढूँढ लिए हैं, सौंदर्य प्रतियोगिताएँ, देह-प्रदर्शन, फैशन-शो, नाइट क्लब्स। अपना माल बेचने के लिए विज्ञापन में नारी शरीर का शर्मनाक दुरुपयोग किया जाता है। यह कोई नहीं बताता कि आज भूतपूर्व विश्व सुंदरियाँ क्या कर रही हैं? ताज पहनाकर कुछ दिनों बाद उन्हें अपना जीवन किस प्रकार चलाने पर मजबूर होना पड़ता है।”⁷² स्त्रियों से संबंधित उत्पादनों के विज्ञापन में स्त्री के आकर्षण रूप की माँग हो सकती है। लेकिन टी० वी०, टायर, शेविंग क्रीम, पुरुषों के जूते आदि के विज्ञापन में स्त्री देह का प्रदर्शन पूँजीवादी व्यवस्था की सोची समझी चाल है। पूँजीवादी व्यवस्था ने स्त्री के सौंदर्य को बाज़ार की वस्तु बनाकर उपभोग की वस्तु बना दिया है। डॉ०

विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है—“विज्ञापन संस्कृति सबसे ज़्यादा इस्तेमाल नारी शरीर का करती है। वह शरीर को माल की बिक्री का साधन बनाकर अंततः शरीर को भी महत्वहीन बना देती है—महत्त्वपूर्ण बनी रहती है खरीदारी जिससे सेठों की जेब भरती है।”⁷³ आजादी के बाद के लेखकों में हरिशंकर परसाई भी महादेवी वर्मा की तरह स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता के पक्षधर होते हुए भी इस बात का विरोध करते हैं कि स्त्री केवल विज्ञापन की वस्तु बनी रहे। विज्ञापन-संस्कृति के विरोध में हरिशंकर परसाई ने निबन्ध लिखा—‘विज्ञापन में बिकती नारी’। विभिन्न एजेन्सीज द्वारा आयोजित फैशन प्रतियोगिताएँ, मॉडलिंग, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में केवल महिला रिसेप्शनिस्टों की नियुक्तियाँ और विज्ञापन में, चाहे वह किसी वस्तु का हो स्त्रियों का प्रयोग। यह सब स्त्रियों को आर्थिक प्रलोभन देकर उसके लिए एक अन्य प्रकार के शोषण के द्वारा खोल रहे हैं। इस बात को परसाई जी ने इस प्रकार महसूस किया है—

“ मैं नहीं जानता, स्त्रियाँ इन विज्ञापनों में अपने ‘रोल’ के बारे में क्या सोचती हैं। मगर इनसे ये निष्कर्ष निकलते हैं,

○ इस देश की सारी सुन्दर स्त्रियाँ कम्पनियों की नौकरानियाँ हैं। उनका काम कम्पनी की तरफ से पुरुष को फुसलाना है।

○ सुन्दर स्त्री के जीवन का महान उद्देश्य है: किसी कारखाने का माल बिकवाना।

○ सौन्दर्य की परिभाषा: सौन्दर्य स्त्री का वह मोहिनी शक्ति है, जिससे वशीभूत होकर पुरुष रद्दी सामान खरीद लेता है।

○ स्त्री सिगरेट और टायर के मामले में भी विशेषज्ञ होती है।

○ कोई सुन्दर स्त्री किसी पुरुष से सच्चा प्रेम नहीं करती। वे उसी पुरुष से प्रेम करने लगती है, जो उसकी बतायी कम्पनी का माल खरीदता है।

० सच्चा प्रेम सिर्फ कुरूप स्त्रियाँ करती हैं, क्योंकि वे किसी कम्पनी का माल नहीं बिकवाती।''⁷⁴

महादेवी वर्मा जिस समय अपने लेखन के शिखर पर थी उस समय स्त्री को लेकर इस तरह की बहस नहीं थी जैसी आज है। महादेवी वर्मा के समय में स्त्री को साहित्य और समाज में केवल इतनी ही स्वतंत्रता मिली थी कि वह अपने घर की खिड़की से बाहर देख भर ले। घर से निकलने की स्वतंत्रता स्त्री को नहीं मिली थी। उस समय के साहित्य में नारी का केवल आदर्श रूप ही देखने को मिलता है। महादेवी वर्मा ने अपने गद्य साहित्य में स्त्री को आदर्श स्थिति से निकालकर यथार्थ के धरातल पर लाकर खड़ा किया जिससे उसमें चेतना विकसित हो सके और अपने जीवन को गति देने के लिए अपना फैसला वह खुद ले सके। महादेवी वर्मा ने अपने लेखन में स्त्री को केवल स्वतंत्रता नहीं दी है उसे प्राणी से मनुष्य भी बनाया है। स्वतंत्र मनुष्य बनने के साथ स्त्री के सामाजिक, परिवारिक कर्तव्य भी बढ़े हैं। महादेवी वर्मा लिखती हैं—“वास्तव में स्त्री भी अब केवल रमणी या भार्या नहीं रही, वरन् घर के बाहर भी समाज का एक विशेष अंग तथा महत्त्वपूर्ण नागरिक है, अतः उसका कर्तव्य भी अनेकाकार हो गया है।.....स्त्री के लिए घर उतना ही आवश्यक है जितना पुरुष के लिए। वह पुरुष के समान ही अपने जीवन को व्यवस्थित तथा कार्य-क्षेत्र को निर्धारित कर सकती हैं तथा उसका मातृत्व या पत्नीत्व उसे अपना विशिष्ट मार्ग खोजने से नहीं रोक सकता और न उसके जीवन को घर की संकीर्ण सीमा तक ही सीमित रख सकता है।”⁷⁵

महादेवी वर्मा के स्त्रीवादी लेखन पर जैसी चर्चा होनी चाहिए थी वैसी नहीं हुई। आज जब स्त्री विमर्श के लिए हजारों विषय हैं, स्त्री को रोज जलाया जाता है, उसका बलात्कार होता है, उसे बेसहारा छोड़ दिया जाता है। ऐसे समय में स्त्री

विरोधी शक्तियों के विरुद्ध सामाजिक संघर्ष को आधार देने के लिए महादेवी वर्मा के लेखन से बहुत सहारा मिलेगा। स्त्री पर केन्द्रित उनका लेखन स्त्री विमर्श के उन आधुनिक पैरोकारों को स्त्री के हक की लड़ाई लड़ने का सही रास्ता दिखाता है। महादेवी वर्मा की पुस्तक 'शृंखला की कड़ियाँ' स्त्रियों के हक में एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। 'शृंखला की कड़ियाँ' का प्रकाशन 1942 ई० में हुआ था। इसके अधिकांश निबन्ध तीस के दशक में 'चाँद' पत्रिका के सम्पादकीय लेख के रूप में प्रकाशित हुए थे। 'शृंखला की कड़ियाँ' से पहले हमें ऐसी कोई पुस्तक नहीं मिलती है जो भारतीय समाज में स्त्री-जीवन के प्रचलित और प्रचारित लक्ष्य की पुष्टि करती हो। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है—“शृंखला की कड़ियाँ के माध्यम से वे एक स्त्रीवादी दार्शनिक के रूप में हमारे सामने आती हैं। हिन्दी में स्त्री-जीवन की वास्तविकताओं और कामनाओं का कलात्मक चित्रण करने वाली लेखिकाएँ और भी हैं तथा स्त्री-स्वाधीनता का आंदोलन चलानेवाली कार्यकर्ताओं की भी कोई कमी नहीं है, लेकिन भारतीय स्त्री-जीवन की जटिल समस्याओं, उसकी दासता की दारुण स्थितियों और उसकी मुक्ति की दिशाओं का मूलगामी दृष्टि से जैसा विवेचन महादेवी वर्मा की पुस्तक 'शृंखला की कड़ियाँ' में है, वैसा हिन्दी में अन्यत्र कहीं नहीं है।”⁷⁶

ऐसा नहीं है कि महादेवी वर्मा से पहले साहित्य के क्षेत्र में स्त्री से सम्बन्धित मुद्दे नहीं उठाये गये। पुनर्जागरणकालीन पत्र-पत्रिकाएँ बहसों से भरी पड़ी हैं। 'हिन्दी प्रदीप', 'कविवचन सुधा', 'बाल बोधिनी' 'सरस्वती' जैसी अनेक पत्रिकाओं की फाइलों में बाल-विवाह, विधवा-विवाह, सती प्रथा, परिवार नियोजन, स्त्री शिक्षा जैसे विषय भरे हुए हैं। इन साहित्यिक पत्रिकाओं में 'स्त्री स्वातंत्र्य', 'स्त्री समानता' जैसे विषय उपहास के नहीं वरन् बहस के विषय बने। नवजागरण के

समय स्त्री की स्थिति के विषय में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है—“भारतीय नवजागरण के आरम्भिक दौर में समाज में स्त्री की स्थिति का प्रश्न महत्वपूर्ण था और विवाद का विषय भी। उस समय स्त्री की स्वाधीनता का प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं था, जितना उसके जीने के अधिकार का। वह जन्म से लेकर सती होने तक मौत के दरवाजे पर खड़ी रहती थी, स्वेच्छा से नहीं पुरुष की इच्छा से, क्योंकि उसकी इच्छा और शरीर पर पुरुषों का अधिकार था।”⁷⁷ ‘स्त्री समानता’ की अवधारणा को अमली जामा पहनाने के लिए स्त्री शिक्षा और आत्मनिर्भरता की बात तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के ज़रिए खूब उठायी गयी लेकिन पुरुषों के लेखन में स्त्री की परम्परागत छवि ही दिखाई देती है। स्त्री को ‘पत्नीत्व’ और मातृत्व वाली पारम्परिक छवि में कैद रखकर ही समाज निर्मित स्त्री-पुरुष भेद-भाव को समाप्त करने की बात कही गयी। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा— “स्त्रियाँ स्वभाव से सुकुमार होती हैं। वे स्वभाव से ही दुर्बल होती हैं। उनकी शारीरिक शक्ति पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम होती है। वे अपनी रक्षा आप नहीं कर सकतीं। इस दशा में यदि धर्मशास्त्र ने उन्हें पिता, पुत्र या पति के वश में रहने का नियम कर दिया तो क्या ग़ज़ब किया। सबल के अधीन रहने पर ही दुर्बल का कल्याण हो सकता है। उसकी रक्षा हो सकती है। उसे सुख-शान्ति मिल सकती है।”⁷⁸

‘स्त्रीत्व’ के इस तरह के पारम्परिक और ऐतिहासिक चौखटे में स्त्री-शोषण के तमाम हथियार मौजूद थे। महादेवी वर्मा ने ‘स्त्रीत्व’ के ऐसे ही चौखटे को तोड़ने के लिए अपनी लेखनी को प्रखर ओजस्वी और साहसिक रूप दिया। स्त्री के लिए सहानुभूति से भरे इस परिप्रेक्ष्य में महादेवी वर्मा ने स्वानुभूति की अनुगूँज से निकलने वाले लेख लिखे। इन लेखों में उन्होंने स्त्री-दृष्टि से नहीं वरन् सामूहिक विकास की दृष्टि से भी स्त्री-स्वातंत्र्य को ज़रूरी मानते हुए उन मूल्यों और मानदण्डों को

चुनौती दी जो स्त्री की अस्मिता और नागरिक अधिकारों का हनन करते हैं। वह लिखती हैं—“भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग-विरंगे पक्षी पाल लेता है। उपयोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है। उसी प्रकार वह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालित पशु पक्षियों के समान ही वह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है। हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चिह्न देखना हो तो विवाह के समय गुलाब-सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिए। उसमें असमय प्रौढ़ा, कई दुर्बल संतानों की रोगिनी पीली माता में कौन सी विवशता, कौन-सी रुला देने वाली करुणा न मिलेगी।”⁷⁹

महादेवी की साहित्य-दृष्टि और स्त्री-दृष्टि

हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा की ख्याति एक कवयित्री के रूप में ही अधिक है। उनकी कविताओं की प्रसिद्धि में उनका गद्य दबकर रह गया है। अगर महादेवी वर्मा का मूल्यांकन करना हो तो वह गद्य के बिना नहीं हो सकता। अपने गद्य में वे सीधे सामाजिक सरोकारों से जुड़ती हैं। जिन्होंने केवल महादेवी वर्मा की अपारदर्शी व्यावहारिक जगत से दूर रहस्यमयी कविताओं को पढ़ा है, वे उनके गद्य के यथार्थ, व्यावहारिक और तार्किक ठोस धरातल का अनुमान नहीं लगा सकते। इसलिए महादेवी वर्मा के पद्य और गद्य को एक साथ पढ़ा जाना ज़रूरी हो जाता है। डॉ० बच्चन सिंह ने महादेवी वर्मा को रहस्यवादी कहे जाने पर विरोध प्रकट करते हुए लिखा है—“उन्हें रहस्यवादी कहने का अभिप्राय है, उनके आत्मसंघर्ष पर, जो समूची नारी जाति का आत्मसंघर्ष है, पर्दा डालना। उनकी कविता को ‘शृंखला की कड़ियाँ’, ‘स्मृति की रेखाएँ’ आदि के साथ पढ़ना चाहिए। उनके काव्य और जीवन दोनों का मूल टेक है— ‘कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो’।”⁸⁰ महादेवी वर्मा की कविताओं की प्रसिद्धि के कारण स्त्री विषयक निबन्धों पर चर्चा नहीं हुई जो काफी

ज्वलंत तथा अपने समय की सीमाओं से बहुत आगे बढ़े हुए हैं। ये निबन्ध महादेवी वर्मा के संवेदनशील हृदय के साथ उनकी विश्लेषणात्मक क्षमता के परिचायक भी हैं। सन् 1930 से 37 तक महादेवी वर्मा ने लगातार स्त्री विषयक निबन्ध लिखे। उनके निबन्ध 'शृंखला की कड़ियाँ' में संकलित हैं।

महादेवी वर्मा का स्त्री विमर्श कोरा बौद्धिक विश्लेषण नहीं है। इसकी जड़ें समाज की मिट्टी में धँसी हुई हैं। स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श की रचनाओं के सम्बन्ध में अनुभव की प्रामाणिकता का प्रश्न उठाया जाता है। अनुभूति की प्रामाणिकता की चर्चा करते समय हम यह भूल जाते हैं कि अनुभूति हमेशा व्यक्तिगत अनुभवों की ही उपज नहीं होती है। सामाजिक प्राणी होने के नाते दूसरों के सुख-दुख और अनुभव भी हमारे अंदर विविध भाव उत्पन्न करते हैं और वे उतने ही प्रामाणिक होते हैं जितनी हमारी अपनी अनुभूतियाँ। 'शृंखला की कड़ियाँ' के निबंधों को 'अतीत के चलचित्र' में संकलित संस्मरणों की पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए। ऐसा करने से यह अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है कि ये निबंध महज वैचारिकता की उपज नहीं हैं, इनका ठोस सामाजिक आधार भी है। जीवन को अत्यंत निकट से देखे व अनुभव किए बिना लेखन में इतनी प्राणवत्ता नहीं आ सकती है। महादेवी के मन में 'सबिया' के रूप में भारतीय स्त्री की सहनशीलता और अपने पिता तथा पति दोनों ही घरों से संपत्ति के अधिकार से वंचित 'बिट्टो'—ये भारतीय स्त्री-जीवन की विडंबनाओं के विविध रूप हैं। महादेवी वर्मा ने संस्मरण की पुस्तक में लिखा है—“इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अँधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं। उसके बाहर तो वे अनन्त अन्धकार के अंश हैं। पर जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं, वह बाहर रूपान्तरित हो जायेगा। फिर जिस परिचय

के लिए कहानीकार अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है, उसी परिचय के लिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनाकर दूरी की सृष्टि क्यों करती! परन्तु मेरा निकटता—जनित आत्म—विज्ञापन उस राख से अधिक महत्त्व नहीं रखता, जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रहती है। जो इसके पार नहीं देख सकता, वह इन चित्रों के हृदय तक नहीं पहुँच सकता।⁸¹ 'शृंखला की कड़ियाँ' के निबन्ध इन्हीं संस्मरणों की मूल भाव—धारा का विस्तार हैं। महादेवी वर्मा ने स्त्री समाज का जो चित्रण किया है वह यथार्थ है। 'शृंखला की कड़ियाँ' में उन्होंने जो कुछ कहा है वह अपने देश की परिस्थितियों को सामने रखकर ही कहा है। महादेवी वर्मा ने 'शृंखला की कड़ियाँ' लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि वे स्त्री के अभिशप्त जीवन के प्रति कितनी चिंतित हैं। इस बढ़ती हुई स्त्री चेतना तथा राजनीतिक भागीदारी की झलक महादेवी वर्मा के निबन्धों में भी मिलती है। वे लिखती हैं—“राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाली महिलाओं ने आधुनिकता को राष्ट्रीय जागृति के रूप में देखा और उसी जागृति की ओर अग्रसर होने में अपने सारे प्रयत्न लगा दिए। उस उथल—पुथल के युग में स्त्री ने जो किया वह अभूतपूर्व होने के साथ—साथ उसकी शक्ति का प्रमाण भी था। पुरुष ने अपनी आवश्यकतावश ही सही, उसे साथ आने की आज्ञा दी, परन्तु स्त्री ने उससे पग मिलाकर चलकर प्रमाणित कर दिया कि पुरुष ने उसकी गति पर बंधन लगाकर अन्याय ही नहीं, अत्याचार भी किया है।”⁸²

महादेवी वर्मा की रहस्यवादी छवि को हिन्दी साहित्य और समाज अभी तक ढोता आ रहा है। महादेवी वर्मा के विषय में हिन्दी साहित्य के इतिहासों में जो कुछ कहा गया है वह काव्य को लेकर कहा गया है, गद्य को ध्यान में रखकर नहीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा—“छायावादी कहे

जानेवाले कवियों में महादेवी जी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं। उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही इसके हृदय का भावकेंद्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनाएँ, छूट-छूट कर झलक मारती रहती हैं। वेदना से इन्होंने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसी के साथ वे रहना चाहती हैं। उसके आगे मिलन सुख को भी वे कुछ नहीं गिनतीं। वे कहती हैं कि—‘मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ’। इस वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता।⁸³

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी उन्हें रहस्यवादी मानते हुए लिखा—“महादेवी की यह रहस्यवादी भावना संपूर्ण रूप से वैयक्तिक है। यह फिर स्पष्ट कर देना उचित है कि काव्य में ‘वैयक्तिक’ से तात्पर्य यह नहीं है कि कवि के व्यक्तिगत दुख-सुख का समाचार हमें मिलता है, बल्कि वैयक्तिकता का तात्पर्य यह है कि कवि ने जिन भावों को सर्वसाधारण भाव बना दिया है, वे शुरू-शुरू में उसके अपने राग-विरागों और मनन-निदिध्यासन द्वारा अनुरजित चित्त में उत्थित हुए थे। काव्य में प्रकट होने के बाद वे कवि के नहीं, सहृदय-मात्र के अपने भाव बन जाते हैं। व्यक्तिगत अनुभूतियों की तीव्रता और मर्मस्पर्शिता में महादेवी की रचनाएँ अपूर्व हैं।”⁸⁴

दोनों इतिहासकारों की दृष्टि में महादेवी वर्मा रहस्यवादी हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के लगभग एक दशक बाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में उनकी वैयक्तिकता को लेकर अन्तर जरूर आ गया है। जहाँ आचार्य शुक्ल में उनकी अनुभूतियों की वास्तविकता और कल्पना को लेकर संदेह है वही आचार्य द्विवेदी ने उनकी अनुभूतियों को सर्वसाधारण का भाव बना दिया। लेकिन दोनों इतिहासकारों

की दृष्टि उनके गद्य पर नहीं गयी थी। जबकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के समय में महादेवी वर्मा 'चाँद' पत्रिका का संपादन करके स्त्रियों की समस्याओं को उठा रही थी। आचार्य द्विवेदी के 'हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास' से एक दशक पहले 'चाँद' पत्रिका के संपादकीय 'शृंखला की कड़ियाँ' नाम से प्रकाशित हो चुके थे।

एक लम्बे अन्तराल के बाद 1973 ई० में डॉ० नगेन्द्र के सम्पादन में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' प्रकाशित हुआ। इसमें भी महादेवी वर्मा का रहस्यवाद ही केन्द्र में रहा—“महादेवी में गीति काव्य के उत्कर्ष की सुन्दर भावनाएँ हैं, लेकिन यह रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता को कुछ कुण्ठित कर देता है। कवयित्री के पास सीमित संवेदनाएँ हैं, इन्हें वह भिन्न—भिन्न प्रतीकों और रूपकों से व्यक्त करती है। ये प्रतीक और रूप भी बहुत सीमित और अभिजात हैं। कवयित्री की लौकिक संवेदनाएँ रहस्यवादी आभास से लिपटकर निश्चय ही नये अर्थ का विस्तार करती हैं।”⁸⁵ महादेवी वर्मा के काव्य को आधार बनाकर आगे लिखा—“महादेवी की अनुभूति केवल व्यक्तिपरक आध्यात्मिकता की अनुभूति ही नहीं है, उसमें लोक—कल्याण की भावना भी है जो अडिग आस्था, अटूट साधना और आत्मबलिदान के रूप में गीतों में बिखरी हुई मिलती है। इस प्रकार महादेवी ने मध्यकालीन रहस्यसाधना की परम्परा को स्वीकार करके उसे लोक—कल्याण के साथ संयुक्त कर अपने युग—बोध के अनुरूप ढालने की कोशिश की है। यह रहस्यवाद का एक नया आयाम है जिसके उद्घाटन का श्रेय महादेवी को है।”⁸⁶ यहाँ पर भी महादेवी में कुछ नया है तो वह मध्यकालीन रहस्यसाधना में लोक—कल्याण के साथ युग—बोध के अनुरूप ढालने की केवल कोशिश ही। संस्मरण और रेखाचित्रों के विषय में इतना और कहा गया—“महादेवी वर्मा ने समाज के दीन—हीन तथा शोषित व्यक्तियों को कथ्य के रूप में चुनकर भारतीय समाज का जीवन चित्र प्रस्तुत कर दिया है। महादेवी के रेखाचित्रों में

संवेदनशीलता, भावुक कल्पना, कवि-हृदय और कलात्मक अभिव्यक्ति का अभूतपूर्व उत्कर्ष मिलता है।⁸⁷

डॉ० नगेन्द्र के इतिहास में महादेवी वर्मा के संस्मरण और रेखाचित्रों में शोषित और दीन-हीन भारतीय समाज का चित्र मिल जाता है, लेकिन 'शृंखला की कड़ियाँ' पर पूरे इतिहास में एक टिप्पणी भी नहीं है, जो महादेवी वर्मा के गद्य-लेखन का उच्चतम रूप है। 'शृंखला की कड़ियाँ' के साथ महादेवी वर्मा के बाकी लेखन को पढ़ा जाये तो महादेवी वर्मा का रहस्यवादी महल जरूर खिसकता नज़र आयेगा। 'शृंखला की कड़ियाँ' मात्र एक पुस्तक नहीं है, बल्कि इसमें स्त्री-जीवन के सम्पूर्ण स्रोत मौजूद हैं। यह अलग बात है स्त्री-विमर्श को लेकर जो बहसे हो रही हैं उसके केन्द्र में महादेवी वर्मा का लेखन नहीं है। इसका कारण महादेवी वर्मा की रहस्यवादी छवि है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों और समाजशास्त्रियों के लिए 'शृंखला की कड़ियाँ' महत्वपूर्ण कृति है जो स्त्री के इतिहास लेखन में अहम भूमिका निभा सकती है।

स्त्री-पुरुष के सामाजिक सम्बन्ध जिन सिद्धांतों पर आधारित हैं वह स्वयं में न केवल ग़लत हैं, बल्कि सम्पूर्ण मनुष्य जाति की स्थिति में सुधार लाने के पथ में सबसे बड़े बाधक भी हैं। कानूनी रूप से स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध समानता पर आधारित हो। यह एक ऐसा सिद्धांत है जो न तो किसी एक को सत्ता की सुविधा प्रदान करे, न ही दूसरे को असहाय बनाये। हालाँकि सामान्य मान्यताएँ स्त्री की स्वतंत्रता और निष्पक्षता के हक में हैं, फिर भी जो पुरुष यह मानते हैं कि हमें हुक्म देने का अधिकार है और स्त्री उसे मानने के लिए बाध्य है, या पुरुष शासन कर सकता है स्त्री नहीं, वे अपने इस विश्वास के पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं। स्त्री को अपनी मुक्ति के पक्ष में विरोधियों के तर्कों का जवाब देना होगा।

स्त्रियों को केवल समानता, समान अवसर और राजनीतिक-आर्थिक अधिकार ही नहीं, उसे मन और संस्कृति के स्तर पर भी समान माना जाना चाहिए। इन लक्ष्यों के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा पितृसत्ता मानी जाती है। पितृसत्ता यानी पुरुष का स्त्री पर अधिकार। महादेवी वर्मा ने स्त्री-जीवन से जुड़े सारे महत्वपूर्ण मुद्दों पर गहराई से चिन्तन किया है। उन्होंने पितृसत्तात्मक सोच वाले धर्म और समाज के प्रभुओं द्वारा स्त्री-जाति पर थोपे गये बंधनों का जम कर विरोध किया है।

स्त्री-मुक्ति का सवाल कठिन सवाल है। स्त्री की यातना का इतिहास बहुत लंबा है। धैर्य तथा गहरे संकल्पों के साथ उससे जूझने-टकराने की ज़रूरत है। पूरी नयी सदी हमारे सामने है। स्त्री की स्वतंत्रता के सवाल को पूरी सामाजिक संवेदनशीलता और शक्ति के साथ अभी ठीक से उठाया जाना बाकी है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० 26, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद 1962
2. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, भूमिका, पृ०—VII वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2002
3. सं० कमला प्रसाद, आखँन देखी, पृ० 30, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1981
4. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृ० 13, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1983
5. महादेवी वर्मा, दीपशिखा, भूमिका
6. महादेवी वर्मा, साहित्य की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० 25 लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962
7. सं० राजेन्द्र यादव, हंस (मासिक पत्रिका) 2004, पृ० 86, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
8. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ० 134, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2000
9. सं० इंद्रनाथ मदान, महादेवी : चिंतन व कला, पृ० 10, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1965
10. वही, पृ० 42
11. राजनाथ शर्मा, महादेवी वर्मा और स्मृति की रेखाएँ, पृ० 37, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 1972
12. चरन सखी शर्मा, महादेवी का संस्मरणात्मक गद्य, पृ० 54
13. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० 10, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962

14. डॉ० देवराज, साहित्य समीक्षा और संस्कृतिबोध, पृ० 68, मैकमिलन कम्पनी दिल्ली 1977
15. डॉ० विजयप्रकाश उपाध्याय, महादेवी का गद्य: एक मूल्यांकन, पृ० 12,
16. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० 11, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962
17. महादेवी वर्मा, संकल्पिता, पृ० 76, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1987
18. अमृतराय, विचारधारा और साहित्य, पृ० 80, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1984
19. मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पृ० 178, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली 2002
20. पद्म सिंह चौधरी, महादेवी साहित्य : एक नया दृष्टिकोण, पृ० 05, अपोलो प्रकाशन, जयपुर, 1974
21. नामवर सिंह, छायावाद, पृ० 21, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2000
22. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० 94, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962
23. सं० इंद्रनाथ मदान, महादेवी : चिंतन व कला, पृ० 58, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली 1965
24. वही, पृ० 10
25. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० 35, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962
26. सं० इंद्रनाथ मदान, महादेवी : चिंतन व कला, पृ० 26, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1965
27. वही, पृ० 28

28. वही, पृ० 13
29. मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पृ० 178, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली 2002
30. पद्मसिंह चौधरी, महादेवी साहित्य : एक नया दृष्टिकोण, पृ० 87, अपोलो प्रकाशन, जयपुर 1974
31. डॉ० बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ० 361, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2000
32. निर्मला जैन (सं०), महादेवी साहित्य समग्र भाग-3, वाणी प्रकाशन दिल्ली 2000
33. मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पृ० 178, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली 2002
34. सं० इंद्रनाथ मदान, महादेवी : चिंतन व कला, पृ० 111, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1965
35. वही, पृ० 58
36. अमृतराय, विचारधारा और साहित्य, पृ० 103, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1984
37. देवदत्त शास्त्री (सं०), महादेवी वर्मा अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० 76
38. सं० इंद्रनाथ मदान, महादेवी : चिंतन व कला, पृ० 98, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1984
39. अमृतराय, विचारधारा और साहित्य, पृ० 103, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1984
40. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ० 09, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2003
41. महादेवी वर्मा, यामा, पृ० 150, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1989
42. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० 29, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962

43. सूर्यप्रकाश दीक्षित, महादेवी का गद्य, पृ० 81, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1994
44. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 09, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2001
45. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० 162, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962
46. वही, पृ० 164
47. सूर्यप्रकाश दीक्षित, महादेवी का गद्य, पृ० 14, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
48. पद्मसिंह चौधरी, महादेवी साहित्य : एक नया दृष्टिकोण, पृ० 49, अपोलो प्रकाशन, जयपुर 1974
49. सूर्यप्रकाश दीक्षित, महादेवी का गद्य, पृ० 15, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
50. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ० 86, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2000
51. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 89, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद 2001
52. वही, पृ० 91
53. सं० शचीरानी गुर्तू, महादेवी वर्मा : काव्य—कला और जीवन—दर्शन, पृ० 117, आत्माराम एण्ड संस प्रकाशन, दिल्ली 1957
54. वही, पृ० 220
55. वही, पृ० 13—14
56. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 10, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद 2001
57. मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पृ० 179, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली 2002
58. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ० 71—72, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

59. वही, पृ० 41
60. वही, पृ० 42
61. वही, पृ० 42
62. वही, पृ० 42
63. वही, पृ० 44
64. वही, पृ० 49
65. वही, पृ० 56
66. वही, पृ० 65
67. मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पृ० 180, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली 2002
68. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 115, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
69. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० 183, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद 1962
70. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 22, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
71. सं० हरिभटनागर, साक्षात्कार (पत्रिका), जनवरी, 2006, पृ० 76, साहित्य अकादमी, म०प्र० भोपाल
72. सं० द्वारिका प्रसाद चारुमित्र, अनभै साँचा (त्रैमासिक पत्रिका), दिल्ली
73. डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी, देश के इस दौर में, पृ० 41, राजकमल, दिल्ली 2000
74. प्र० सं० कमला प्रसाद, परसाई रचनावली, भाग 3, पृ० 220, राजकमल प्राकशन, दिल्ली 1998
75. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 56, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद 2001
76. मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पृ० 179, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली 2002

77. वही, पृ० 180
78. भारत यायावर, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० 145, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1995
79. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 102, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
80. डॉ० बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ० 361 राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2000
81. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ० 9-10, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
82. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 51, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
83. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 388, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 2056 (विक्रम संवत्)
84. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, पृ० 249, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1999
85. सं० डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 613, मयूर पेपर बैक्स, नौएडा 1998
86. वही, पृ० 554
87. वही, पृ० 597

तृतीय अध्याय

महादेवी वर्मा के निबन्धों में स्त्री प्रश्न

महादेवी वर्मा के निबन्धों में स्त्री प्रश्न

निबन्ध और स्त्री प्रश्न:

आधुनिक गद्य—साहित्य की सभी विधाओं में निबन्ध सर्वाधिक लोकप्रिय और सशक्त विधा है। भारतेन्द्र युग में पद्य के साथ गद्य में भी खड़ी बोली में रचनाएं होने लगीं और निबन्ध, कहानी, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी आदि विधाएँ अपने-अपने आधुनिक स्वरूप के साथ अस्तित्व में आने लगीं। वैसे तो ये सभी विधाएँ गद्य की विधाएँ हैं लेकिन गद्य की सम्पूर्ण शक्ति को विकसित करने का अवसर निबन्ध में ही मिल पाता है। डॉ० कैलाश चन्द्र भाटिया ने लिखा है—“निबन्ध से तात्पर्य ऐसे साहित्य से है जिसमें लेखक अपने विचारों, भावों और मनोवृत्तियों का प्रकाशन अपनी भाषा और शैली में करे।” निबन्ध एक ऐसी विधा है जिसमें प्रबन्ध—काव्य, आख्यायिका, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्टाज सभी के गुण समाविष्ट हो जाते हैं।

जैसे कि गद्य की अन्य विधाएँ पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से हिन्दी—साहित्य में आयीं, वैसे ही निबन्ध का ढाँचा भी पाश्चात्य साहित्य से ग्रहण किया गया है। निबन्ध विधा का जनक फ्रांसीसी लेखक ‘माइकेल द मानतेन’ को माना जाता है। अंग्रेजी के वैयक्तिक निबन्ध मानतेन को ही आदर्श मानकर लिखे गये। मानतेन के अनुसार वैयक्तिकता ‘एसे’ का केन्द्रीय तत्त्व है। मानतेन का मानना है निबन्ध में निबन्धकार की निजी विशेषताएँ खुलकर व्यक्त होनी चाहिए। व्यक्ति—प्रधान निबन्धों में निबन्धकार का व्यक्तित्व अपनी समस्त भावात्मक, कल्पनात्मक, विनोदात्मक विशेषताओं के साथ उभरकर व्यक्त होता है। विषय तो निबन्धकार के कथ्य को आरम्भ करने के लिए एक माध्यम मात्र होता है।

आधुनिक साहित्य की सभी नवीन विधाओं का कोई न कोई स्वरूप

प्राचीन भारतीय साहित्य में ही निहित है। उसी प्रकार निबन्ध के नाम पर भारतीय साहित्य में हमें प्रबन्ध मिलता है।

प्राचीन भारतीय प्रबन्ध शुद्ध विषयपरक हैं, लेकिन आधुनिक काल में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में दिखायी देने वाले निबन्ध किसी न किसी प्रकार से साहित्यकार के व्यक्तित्व की छाप अवश्य ग्रहण किए हुए हैं। हिन्दी के विषय प्रधान निबन्धों में भी हृदय को पर्याप्त अवसर मिल जाता है और व्यक्ति प्रधान निबन्धों में भी विषय और चिन्तन को किसी न किसी प्रकार से अवसर मिल ही जाता है। जगदीश्वर चतुर्वेदी कहते हैं—“आधुनिक काल में आधुनिकीकरण की अवधारण का केंद्रीय बिंदु है समस्त मानवीय गतिविधियों के केन्द्र में मनुष्य की स्थापना। नये ज्ञान का मानव-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस्तेमाल करना। आधुनिकीकरण आत्मनिर्भरता और रचनात्मकता को जन्म देता है। नये विचारों एवं नयी शैलियों को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है, स्पष्टवादिता के लिए समर्थ बनाता है। मनुष्य का काल-बोध उसे अतीत की बजाय वर्तमान एवं भविष्य पर सोचने पर ज़्यादा मज़बूर करता है।”²

हिन्दी निबन्ध साहित्य का उदय परिवर्तनशील जीवन-मूल्यों की समग्र चेतना की स्वस्थ अभिव्यक्ति के रूप में भारतेन्दु युग में हुआ था। इस युग के निबन्ध विषय की व्यापकता लिए हुए हैं। इस युग के निबन्धों की समस्याएँ जनता की समस्याएँ थी, इसीलिए इस युग के निबन्ध साहित्य में तत्कालीन युग की समग्र चेतना सम्यक् रूप में प्रतिबिम्बित हुई है।

द्विवेदी युग में भारतेन्दुकालीन विषय वैविध्य समाप्त हो गया और निबन्धों में गाम्भीर्य पहले से अधिक आ गया। इस युग के निबन्धों में बौद्धिकता और साहित्यिकता अधिक आने लगी।

शुक्ल जी के आगमन से हिन्दी निबन्ध जगत को नयी अनुभूति, नये

विचार और नयी भावाभिव्यक्ति शैली के दर्शन हुए। शुक्ल जी के निबन्ध अन्तः प्रयास से निकली हुई सहज विचारधारा के प्रतिरूप हैं।

छायावादी युग में परम्परागत नैतिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का स्वर उभरा तथा साथ ही जीवन के प्रति एक सहज मानवीय भावबोध जाग्रत हुआ। इसी के चलते निबन्ध साहित्य को भी एक स्वतन्त्र, सहज एवं गतिशील भाव-भूमि मिली। इस युग में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना की प्रधानता के कारण निबन्धों में अन्य प्रतिपाद्य विषय सीमित से हो गये।

प्रगतिशील आंदोलन से निबन्ध-साहित्य को एक नयी विचार भूमि मिली। इस युग में हिन्दी-साहित्य में नयी पीढ़ी का व्यक्तिवादी साहित्यकार व्यापक लोक-मंगल की भावना, आशा और उल्लास को छोड़कर आत्मनिष्ठ और निराशावादी होने लगा। इस युग के साहित्य में सामन्तवाद का विरोध, सभी प्रकार के शोषण का अन्त, अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना, सामाजिक समस्याओं के प्रति सजगता, जीवन का यथार्थ चित्रण, नारी-स्वतन्त्रता तथा मानवतावादी स्वर मुखरित हुए। इस युग के निबन्ध साहित्य में विशेष रूप से जनात्मक एवं यथार्थवादी जीवन-मूल्यों को महत्त्व प्राप्त हुआ। इस युग के साहित्यकार सामाजिक दायित्व के प्रति सजग थे। इसमें प्रेमचंद, पन्त, निराला, महादेवी के नाम विशेष रूप से सम्बद्ध हैं।

स्वतन्त्रता बड़ी ही व्यापक भावना है। इस भावना में मनुष्य की आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक आदि सभी प्रकार की मुक्ति के भाव छिपे हैं। समष्टि रूप में स्वतन्त्रता का अर्थ है मनुष्य के समूचे व्यक्तित्व के विकास के लिए पूरी सुविधाओं को प्रदान करना और उसके व्यक्तित्व के विकास में रोधक बाधाओं को दूर करना। महादेवी वर्मा कहती हैं—“एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास की सबको आवश्यकता है, कारण, बिना इसके न मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति और संकल्प

को अपना कह सकता है और न अपने किसी कार्य को न्याय-अन्याय की तुला पर तोल ही सकता है।”³

निजता और आत्मीयता ने आधुनिक साहित्यकार को ऐसा स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया जो स्वयं को सीधे रूप में अभिव्यक्त करने की सामाजिक स्वाधीनता चाहता है। छायावाद के काव्य सौन्दर्य के विषय में डॉ० नामवर सिंह कहते हैं—“यह सारा सौन्दर्य व्यक्ति की स्वाधीनता की भावना से उत्पन्न हुआ है और वह स्वाधीनता भी व्यक्ति के माध्यम से संपूर्ण समाज की स्वाधीनता की अभिव्यक्ति है।”⁴

इस युग में व्यक्ति ने सामाजिक स्वाधीनता के लिए विद्रोह किया। छायावाद का सारा स्वाधीनता संघर्ष अकेले व्यक्ति का था। मध्यवर्गीय व्यक्ति ने अपने व्यक्तित्व की स्वाधीनता के लिए सामंती व्यवस्था से लड़ाई की। उसने अपने जीवन के संघर्ष से व्यापक सामाजिक संघर्ष का अनुभव किया। साथ ही धार्मिक और नैतिक क्षेत्र में भी विरोध कर धारा के विपरीत कार्य किया। पुरानी रूढ़ियों, संकीर्णताओं को व्यक्तित्व के विकास में बाधा मानकर तोड़ा गया। बीसवीं सदी में ज्ञान के विस्तार ने पुरानी संकीर्णता को दूर कर मानसिक क्षितिज पर विस्तार किया। आधुनिक युग में वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने साहित्यकार को भी मानवतावादी दृष्टि प्रदान की। जिससे वह पुरानी जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों तथा संकीर्णताओं को तोड़ने का साहस कर सका। डॉ० बच्चन सिंह कहते हैं—“पूँजीवाद में जिस व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का जन्म हुआ, उसका प्रभाव समाज के साथ साहित्य पर भी पड़ा है। छंद के बंधन से कविता को मुक्त करने की कामना व्यक्त की गयी, स्त्री-स्वातन्त्र्य की भी आवाज उठायी गयी।”⁵

इसी के साथ साहित्य में भी साहित्यकार ने आत्माभिव्यक्ति की

स्वतंत्रता की आकांक्षा व्यक्त की। इसी विषय में महादेवी वर्मा कहती हैं—“आज का साहित्यकार अपनी प्रत्येक साँस का इतिहास लिख लेना चाहता है।”⁶

इस प्रकार साहित्य में नारी-संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। पंत ‘पल्लव’ की भूमिका में कहते हैं—“हम इस ब्रज की जीर्ण-क्षीण छिद्रों से भरी-पुरानी छींट की चोली को नहीं चाहते, इसकी संकीर्ण कारा में बंदी हो हमारी आत्मा वायु की न्यूनता के कारण सिसक उठी है, हमारे शरीर का विकास रुक जाता है।”⁷

छायावाद से पहले भी साहित्य में नारी-संबंधी रचनाएँ हुई हैं, लेकिन हैं वे पुरुष प्रधानता की ही द्योतक। द्विवेदी युग की रचनाओं में नारी को दयनीय भाव से ही चित्रित किया गया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी स्त्री के प्राचीन आदर्श रूप को ही सही मानते हैं। वे स्त्री की परंपरागत छवि के पक्षधर हैं—“स्त्रियाँ स्वभाव से ही सुकुमार होती हैं। वे स्वभाव ही से दुर्बल होती हैं। उनकी शारीरिक शक्ति पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम होती है। वे अपनी रक्षा अपने आप नहीं कर सकतीं। इस दशा में यदि धर्मशास्त्र ने उन्हें पिता, पुत्र या पति के वश में रहने का नियम कर दिया तो क्या ग़ज़ब किया ? सबल के अधीन रहने ही से दुर्बल का कल्याण हो सकता है, उसकी रक्षा हो सकती है, उसे सुख और शान्ति मिल सकती है।”⁸ उसे मात्र आश्रय देकर बंदिनी रूप में ही चित्रित कर इति श्री कर दी गयी है। जैसे की विधवाओं पर लिखी गयी कविताओं में उसे भोजन, वस्त्र देना ही आवश्यक माना गया है। उसके सम्मान की कहीं बात नहीं की गयी है।

बीसवी सदी में जो नारी-संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन आया वह उन्नीसवी सदी में होने वाले सामाजिक सुधार आन्दोलनों के कारण आया। समाज में नारी-शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव बड़ी तीव्रता से किया गया। शिक्षा ने लड़कियों को ज्ञान के क्षेत्र से अवगत कराया तथा उनका नयी दुनिया और नये-नये

विचारों से साक्षात्कार हुआ। जिससे शिक्षित लड़कियों में नारी-स्वातन्त्र्य का भाव पैदा हुआ। स्त्री का समाज के साथ संपर्क स्थापित हुआ। जगदीश्वर चतुर्वेदी इस विषय में कहते हैं—“स्त्रियों ने आधुनिकीकरण की धारणाओं की रोशनी में स्वयं को पुनः परिभाषित करने की कोशिश की। अब स्त्री के पास अपनी स्वतन्त्र राय थी जो परंपरा से भिन्न थी। परंपरा से भिन्न पहचान अर्जित करने की प्रक्रिया में स्त्रियों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया विकसित हुई।”⁹ महादेवी वर्मा के स्त्री सम्बन्धी विचारों पर पंत जी कहते हैं—“महादेवी का युग लोक-मुक्ति का, दारिद्र्य, दैन्य, दुख, अशिक्षा, अन्धकार तथा सशंकित स्त्री-पुरुषों की परस्पर सहानुभूति से पीड़ित, असंख्यों की संख्या में विदीर्ण, लोक-जीवन की मुक्ति एवं पुनर्निर्माण का युग है।”¹⁰

इस प्रकार स्त्री-पुरुष के परस्पर सहयोग से समाज का पुराना जीर्ण-क्षीण ढाँचा टूटने लगा। इसके साथ ही स्त्री-पुरुष के बीच का भेद भी कुछ कम हुआ। पुरुष ने पहली बार नारी-मुक्ति का अनुभव किया और मुक्त नारी से प्रभावित हुआ। स्त्री के इस उन्मुक्त रूप से पुरुष पहली बार अचम्बित हुआ। स्त्री के इस नये रूप ने उसे विस्मय में डाल दिया। पुरुष जो अब तक उसके केवल कोमल रूप से परिचित था उसके सहयोग और समझ से अभिभूत हो उठा। नारी के माँ, बहन, बेटी, पत्नी से अलग उसके सहयोगी, साथी, सहचरी, प्रेयसि, सखी, प्रेमिका रूप से परिचित हुआ। स्त्री का यह रूप उसके अन्तःमन से परिचित हुआ और उसके जीवन-संघर्ष पथ पर उसके हमकदम था। स्त्री के इस नये रूप ने पुरुष को उसके प्रति सम्मान भाव प्रदान करने के लिए प्रेरित किया। समाज में बदले स्त्री के इस रूप की छाया साहित्य पर भी पड़ी।

महादेवी वर्मा के निबन्ध और स्त्री-संघर्ष:

आधुनिक युग के ज्ञान-विज्ञान ने पुरुष के समान नारी को भी

आत्म-विकास तथा रूढ़ि-विद्रोह के लिए प्रेरित किया। लेकिन पुरुष-प्रधान समाज में यह असम्भव था कि नारी खुलकर रूढ़ियों का विरोध करने की बात कहे। जब पुरुष ही अपने आत्म-विकास की बात रहस्यवाद के माध्यम से कह रहे थे। प्रसाद, पंत, निराला सभी छायावादी कवियों में कम-ज़्यादा असीम-प्रेम का रहस्यवाद मिलता है। महादेवी तो नारी होकर ऐसा कर रही थी, क्योंकि नारी पुरुष से अधिक बंधनयुक्त है, उसकी दुनिया तथा समाज सीमित है।

पुरुष के समान ही साहित्यकार महादेवी वर्मा ने भी प्राचीन रूढ़ियों के प्रति असंतोष व्यक्त किया और साथ ही उन्मुक्त तथा असीम आकाश में खुल कर उड़ने की इच्छा व्यक्त की 'द्रुत पंखों वाले मन को तुम अंतहीन नभ होना।' परन्तु महादेवी को रहस्यवादी कहकर उनके आत्म-संतोष तथा आत्म-विद्रोह पर परदा डाल दिया जाता है। इसी विषय में बच्चन सिंह कहते हैं—“उन्हें रहस्यवादी कहने का अभिप्राय है, उनके आत्म-संघर्ष पर, जो समूची नारी जाति का आत्म-संघर्ष है, पर्दा डालना।”¹¹

प्रभाकर श्रोत्रिय महादेवी के काव्य में व्यक्त आँसू को आँसू नहीं, आग कहते हैं—“महादेवी की अनुभूति और सृजन का केन्द्र आँसू नहीं आग है। जो दृश्य है वह अन्तिम सत्य नहीं है, जो अदृश्य है वह मूल या प्रेरक सत्य है।”¹²

‘आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के’ (महादेवी)

‘मेरी निश्वासों में बहती रहती झंझावत

और ये दिन रात प्रलय के घन करते उत्पात

कसक में विधुत अंतर्धान।’

महादेवी की इन पंक्तियों में व्यंजित भाव स्पष्टतः वास्तविक है एवं

विषय सामाजिक है। जो सामाजिक सीमा और उससे मुक्ति के प्रतीक है। इसी विषय में प्रभाकर श्रोत्रिय इस प्रकार कहते हैं—“महादेवी के ये आँसू सहज, सरल वेदना, दुख के आँसू न होकर असंतोष, असहाय पीड़ा के हैं, जिनमें विद्रोह छिपा है।”¹³

महादेवी वर्मा की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं

‘मैं अनंत पथ में लिखती जो
सस्मित सपनों की बातें
उनको कभी न धो पाऊँगी
अपने आँसू से रातें।’

स्पष्ट है ये आँसू सीमाओं में बंद रहने के कारण ही बहे हैं। सामाजिक सीमा से महादेवी का मन इतना घबरा उठा कि कल्पना लोक में उड़ान भरने लगा। महादेवी के काव्य की वेदना, हृदय के नीरव हाहाकार से उत्पन्न होकर आँसू के रूप में व्यक्त हुई है जो सामाजिक बंधनों तथा सीमाओं के कारण भले ही महादेवी वर्मा के काव्य पर रहस्यवादी होने का आरोप लगता रहा है परन्तु उनका गद्य उनके भाव-विचार को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है। प्रभाकर श्रोत्रिय इसी विषय में कहते हैं—“समकालीन चिन्ताओं के लिए सर्जनात्मक हल खोजने की विकलता उनके गद्य में स्पष्ट रूप से दिखायी देती है।”¹⁴

इस बदलते युग में नारी ने स्वयं को पुरुष की दया के भाव से मुक्त कर अधिकारों की माँग की। इस अधिकार भावना ने स्त्री को पुरुष के समान माना। स्त्री अब पुरुष से स्वयं को कम न मानकर समान भाव रखने लगी, इस कारण स्त्री में स्पर्धा तथा शक्ति-सम्पन्ता का भाव जाग्रत हुआ। इसी भाव के चलते महादेवी वर्मा ने नारी जीवन की विवशताओं से प्रेरित होकर सामाजिक रूढ़ियों के प्रति

आक्रोश एवं क्षोभ व्यक्त करते हुए विचारात्मक निबन्धों का प्रारम्भ किया। इनमें से कुछ संस्मरणात्मक हैं, कुछ आलोचनात्मक हैं, कुछ नारी-समस्यामूलक हैं और कुछ अन्य विषयों पर हैं, परन्तु महादेवी वर्मा की दृष्टि गहन चिन्तन एवं मनन से परिपूर्ण विचारों की अभिव्यक्ति की ओर ही अधिक रही है। विचारात्मक निबन्धों की परम्परा को अपनाते हुए उन्होंने अत्यन्त पारिमार्जित एवं परिनिष्ठित भाषा में अपने निबन्धों का निर्माण किया।

महादेवी वर्मा ने सबसे पहले सामाजिक निबन्ध तब लिखा था, जब वे सातवीं कक्षा में पढ़ती थीं। इससे स्पष्ट होता है कि बचपन से ही आपकी प्रवृत्ति विचार-शक्ति, चिन्तन एवं मनन की ओर थी और प्रत्येक घटना और परिस्थिति की ओर आपकी अत्यन्त गहरी दृष्टि थी। महादेवी वर्मा ने 'शृंखला की कड़ियाँ' में भारतीय नारी की समस्याओं का विवेचन करके अपनी जागरूक मनोवृत्ति के साथ-साथ क्रान्तिकारी प्रवृत्ति, विद्रोही स्वर एवं नारी स्वतंत्रता के लिए छटपटाहट की भावना को व्यक्त किया है। महादेवी वर्मा का काव्य जिस प्रकार जीवन की वास्तविकता और भाव-बोध को व्यक्त करता है उसी प्रकार उनके निबन्ध बौद्धिक चिन्तन को बढ़ाते हैं। आपके निबन्ध बौद्धिक तीक्ष्णता के साथ-साथ भावात्मक संश्लेषण से परिपूर्ण हैं। उन्होंने अपने निबन्धों के माध्यम से केवल जीवन और साहित्य का ही विश्लेषण नहीं किया अपितु साहित्य में जीवन की सर्वांगीण प्रतिष्ठा की और मानवतावादी समीक्षा को प्रोत्साहित किया है। महादेवी के ये निबन्ध भारतीय नारी की सामाजिक मुक्ति तथा बन्धन को व्यक्त करते हैं। पन्त जी कहते हैं—“वह विगत सामाजिक राग-मूल्यों के बन्धनों, जर्जर-रूढ़ियों की शृंखलाओं से मुक्ति भी चाहती हैं।”¹⁵ इन निबन्धों में उनका निजीपन है, उनका कवित्व रूप है जो हिन्दी साहित्य की नयी विधाओं के संस्थापन की दिशा में भी महत्वपूर्ण योग रखता है।

इसी विषय में डॉ० गुलाब राय ने भी लिखा है—“निबन्धों में वैयक्तिकता की दृष्टि से सुश्री महादेवी वर्मा के निबन्ध बहुत ऊँचा स्थान पाते हैं।”¹⁶

महादेवी वर्मा अपने साहित्य द्वारा अपने जीवन सत्य के माध्यम से भारतीय समाज की अनेक परवश नारियों को ‘नीर-भरी-दुख की बदली’ कहकर उनकी मर्मव्यथा की कहानी को कहना चाहती हैं। दमन और असुरक्षा के भय के बीच अपने मन की बात कहना स्त्री-मनोविज्ञान की एक दूसरी जटिल स्थिति है। अपने गीतों और स्वगत-कथनों में वह निजी बात को भी लगभग सबकी बात के रूप में ही व्यक्त करती हैं। उनके सारे गीत सिर्फ अपनी व्यथा-कथाओं की करुण अभिव्यक्तियाँ हैं। पुरुष की कृपा की भीख मांगती या उससे वंचित स्त्री की दुख गाथाएँ लगभग हर स्त्री के जीवन में इतनी समान हैं कि पुनर्वास्तविकताओं की एकरसता से ग्रस्त हैं। इस व्यथा को शब्द देना स्त्री का पहला विद्रोह है। यथास्थिति की घुटन में छटपटाना ही मुक्ति की प्रेरणा भी बनता है। अधिकारहीन कर्तव्यों की जवाबदेही, स्त्री होकर जन्म लेना, काली-गोरी, लम्बी-ठिगनी, बांझ या सिर्फ पुत्रियों की माँ, परित्यक्ता, शुभ-अशुभ के ठप्पे या सुहागिन-विधवा होने जैसे अनेक अनकिए अपराधों की सजाओं की निरंतरता उसे हमेशा हीन, लाचार, दयनीय और अपराधी होने की मानसिकता में बनाए रखते हैं। वह अपनी व्यथा में इसी के दुखड़े रोती है। बोलकर या लिखकर इन आत्मोक्तियों में जब वह अपनी पारिवारिक या सामाजिक दुर्दशाओं के विवरण देती हैं तो अपनी नियति के खिलाफ विद्रोह भी कर रही होती हैं, क्योंकि इन सबके पीछे स्थितियों के बदलने की आकांक्षा भी होती है। गुलाम का अपनी गुलामी के प्रति अहसास ही प्रतिरोध की पहली शुरुआत है। इन आत्मोक्तियों के बहाने ही स्त्री अपनी नस-नस में बसे भय को भी जीतना चाहती है— निजी वेदना और भय शब्दों में व्यक्त होकर दूसरों के साथ संवाद बनाते हैं। व्यक्तिगत असंतोष,

सामाजिक समस्या के रूप में व्यापकता ग्रहण करता है। स्त्री-चेतना की पहली आत्माभिव्यक्तियाँ उसकी अपनी वेदना के ऐसे प्रार्थना-पत्र हैं जिन्हें वह हिचकते और डरते हुए पुरुष समाज में दया की भीख की तरह प्रस्तुत करती हैं।

प्रेम और वेदना स्त्री को मुक्त करते हैं। मीरा की तरह पुरुष महादेवी वर्मा का अदृश्य प्रेमी है क्योंकि धर्मान्ध समाज में ईश्वर स्त्री का पहला प्रेमी होता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि परिवार से अलग प्रेमी का 'चुनाव' उसकी अपनी मुक्ति का पहला उद्घोष है। सामाजिक जकड़नों के बीच अनकहे ही अपना प्रेम चुन लेना स्त्री को अपने होने या स्वतंत्र अस्तित्व से परिचित करता है।

अपनी बात कहकर स्त्री अपने भीतर के उस भय को जीतती है जिसे परिवार और समाज ने हजारों सालों में उसके असुरक्षित अस्तित्व का पर्याय बना दिया है। हर स्त्री कथा एक दमन कथा भी है और विद्रोह कथा भी। जो महादेवी के गद्य में अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त है। बुद्धि का सम्बन्ध विचारों से है और विचार बुद्धि के अनुशासन से प्रवाहित होते हैं इसीलिए जब विचारों का प्रवाह तीव्र हो उठता है, तब गद्य का जन्म होता है। इसी सम्बन्ध में महादेवी ने भी इस प्रकार लिखा है कि "विचारों के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा लगता रहा है।"¹⁷ उनके विचारात्मक निबन्धों की पुस्तक 'शृंखला की कड़ियाँ' पुरुषों की पशुता और भारतीय नारी के लम्बे संघर्षमय जीवन को स्पष्टतः व्यक्त करती है। महादेवी के निबन्धों में विचार अत्यन्त सारगर्भित एवं अनुभूति दीप्त हैं। गद्य में वे खुले तौर पर अपने भावों तथा विचारों को व्यक्त करने के लिए स्वतन्त्र हैं। अपने काव्य में जब वे मिलन का संकेत देती हैं, तब भारतीय नारी के स्वतन्त्र की कल्पना करती हैं और इस स्वतन्त्रता का निरूपण वे अपने निबन्धों में खुलकर करती हैं। जीवन में उपलब्ध अनुभवों के संचित कोश को अनुभूति कहती हैं। महादेवी अनुभूति का विवेचन इस प्रकार करती

हैं—“मनुष्य अपनी जीवन यात्रा के लिए जो पाथेय लेकर चलता है उसका बहुत सा अंश उसे जन्म के साथ उत्तराधिकार में प्राप्त हो जाता है। शेष की उपलब्धि उसे यात्राक्रम में अपने अनुभव, कल्पना, चिन्तन आदि से हाती रहती है।”¹⁸ महादेवी वर्मा के इस अनुभूति तत्त्व की सर्वाधिक अभिव्यक्ति उनके नारी विषयक निबन्धों में हुई है।

महादेवी वर्मा के निबन्ध नारी की जीवन-साधना और उसकी करुण परिस्थितियों का चित्रण करते हैं। महादेवी के निबन्धों का महत्त्व विषय की गहराई में है। महादेवी के निबन्धों में व्यक्त दुख की अभिव्यक्ति काल और सीमा में जकड़ी हुई असीम चेतना का क्रन्दन है जो कि भारतीय समाज में परतन्त्र नारी के क्रन्दन का प्रतीक है। महादेवी वर्मा के निबन्ध नारी की सामाजिक पराधीनता की कहानी हैं। स्वयं महादेवी वर्मा के शब्दों में, “चाहे हिन्दू नारी की ‘गौरव गाथा से आकाश गूँज रहा हो, चाहे उसके पतन से पाताल काँप उठा हो परन्तु उसके लिए, न सावन सूखे न भादों हरे’ की कहावत ही चरितार्थ होती रही है। उसे अपने हिमालय को लजा देने वाले उत्कर्ष तथा समुद्रतल की गहराई से स्पर्धा करने वाले अपकर्ष दोनों का इतिहास आँसुओं से लिखना पड़ा है और सम्भव है भविष्य में भी लिखना पड़े। प्राचीन से प्राचीनतम काल में जब उसने त्याग, संयम तथा आत्मदान की आग में अपना सारा व्यक्तित्व, सारी सजीवता और मनुष्य स्वभावोचित इच्छाएँ तिल तिल गलाकर उन्हें कठोर आदर्श के साँचे में ढलकर एक देवता की मूर्ति गढ़ डाली तब भी क्या संसार विस्मित हुए या मनुष्यता कातर हुई? क्या नारी के बड़े से बड़े त्याग को, आत्म-निवेदन को, संसार ने अपना अधिकार नहीं किन्तु उसका अद्भुत दान समझकर नम्रता से स्वीकार किया है?”¹⁹

महादेवी वर्मा के निबन्धों में विशेष रूप से नारी की समाज में

दुखावस्था, नारी की असहनीय स्थिति, नारी और समाज के मध्य वैषम्य उसकी रुद्ध भावनाओं और दमित-इच्छाओं और प्रचलित सामाजिक कुसंस्कारों के कारण उसके विवेक शून्य व्यक्तित्व और अभिशप्त जीवन का भावात्मक आत्म-केन्द्रित चित्रण हुआ है। महादेवी वर्मा के इन निबन्धों की विशेषता बताते हुए डॉ० लक्ष्मणदत्त कहते हैं—“शृंखला की कड़ियाँ में समाज के अन्य उपेक्षित विषय तो हैं ही मगर उन सबमें मुख्य विषय नारी का है। नारी का जीवन अथक साधना और तपस्या के बाद भी अत्यन्त उपेक्षित एवं परित्यक्त रहा है, यह महादेवी से नहीं छुपा हुआ था।”²⁰

महादेवी वर्मा लगभग अपने प्रत्येक निबन्ध में नारी की निरीहता और पुरुष के अमानवीय अत्याचार को प्रस्तुत करती हैं। समाज में नारी की दुर्दशा को उनका प्रत्येक निबन्ध प्रस्तुत करता है। महादेवी वर्मा के इन निबन्धों की भूमि विद्रोह मूलक है। भारतीय समाज में नारी की दयनीय, करुण दशा ने महादेवी वर्मा को इतना द्रवित किया कि वे अपने आप को रोक नहीं पायीं और उन्होंने अपनी पूरी शक्ति से उन बेड़ियों को तोड़ने का प्रयास किया जिसमें भारतीय नारी शताब्दियों से जकड़ी हुई है। महादेवी वर्मा अपने निबन्धों में भारतीय नारी की दयनीय स्थिति पर सतर्क और सजग होकर जो विचार व्यक्त करती हैं, वे भारतीय नारी के न केवल प्राण प्रवेग जगाने में समर्थ हैं बल्कि वे नारी के अन्तर में विद्यमान उन प्रसुप्त शक्तियों को जगाने में भी सशक्त हैं, जिनको विस्मृत करके आज भी भारतीय नारी सबला से अबला एवं दुर्गा से दया की पात्र बनी हुई है।

शृंखला की कड़ियाँ और महादेवी की स्त्री चेतना:

‘शृंखला की कड़ियाँ’ निबन्ध-संकलन के अहं तत्व की अभिव्यक्ति अधिक सजीवता एवं तेजस्विता के साथ हुई है, जैसे कि “नारी में परिस्थितियों के अनुसार अपने बाह्य जीवन को ढाल लेने की जितनी सहज प्रवृत्ति है, अपने

स्वभावगत गुण न छोड़ने की आन्तरिक प्रेरणा उससे कम नहीं। इसी से भारतीय नारी भारतीय पुरुष से अधिक सतर्कता के साथ अपनी विशेषताओं की रक्षा कर सकती है। पुरुष के समान अपनी व्यथा भूलने के लिए वह कादम्बिनी नहीं माँगती, उल्लास के स्पंदन के लिए लालसा का ताण्डव नहीं चाहती, क्योंकि दुख को वह जीवन की शक्ति-परीक्षा के रूप में ग्रहण कर सकती है और सुख को कर्तव्य में प्राप्त कर लेने की क्षमता रखती है। कोई ऐसा त्याग, कोई ऐसा बलिदान और कोई ऐसी साधना नहीं जिसे वह अपने साध्य तक पहुँचने के लिए सहज भाव से नहीं स्वीकार करती रही। हमारी राष्ट्रीय जाग्रति इसे प्रमाणित कर चुकी है कि अवसर मिलने पर ग्रह के कोने की दुर्बल बन्दिनी स्वच्छन्द वातावरण में बल प्राप्त पुरुष से शक्ति में कम नहीं। अपने कर्तव्य की गुरुता भली-भाँति हृदयंगम कर यदि हम अपना लक्ष्य स्थिर कर सकें तो हमारी लौह-शृंखला में हमारी गरिमा से गलकर मोम बन सकती हैं, इसमें संदेह नहीं।²¹

परन्तु महादेवी तोड़ने से अधिक जोड़ने में विश्वास रखती हैं। महादेवी साहित्यकार होने के साथ ही नारी भी है जो उन्हें अधैर्य तथा असंमत नहीं होने देती यही नारी सात्विकता उनके साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। भले ही महादेवी कहीं-कहीं भारतीय नारी की दुर्दशा से द्रवित होकर उग्र हो गयी हों किन्तु महादेवी वर्मा के निबन्धों में सर्वत्र मानवतावादी दृष्टिकोण मिलता है। महादेवी वर्मा अपने विचारों को अपने निबन्धों में बड़ी विश्वसनीयता, निश्चयात्मकता और स्पष्टता से व्यक्त करती हैं। महादेवी वर्मा के निबन्धों में सर्वत्र उनके नारी विषयक स्वतन्त्र विचार मूर्तिमान हो जाते हैं। महादेवी वर्मा ने इन निबन्धों में नारी की वैयक्तिक अनुभूतियों, सामाजिक विषमता और शोषित नारी की दीन-हीन दशा का चित्रण किया है। महादेवी के शब्दों में—“अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से ही असहिष्णु हूँ अतः

इन निबन्धों में उग्रता की गन्ध स्वाभाविक है, परन्तु ध्वंस के लिए ध्वंस के सिद्धान्त में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा। मैं तो सृजन के उन प्रकाश तत्त्वों के प्रति निष्ठावान हूँ जिनकी उपस्थिति में विकृति अंधकार के समान विलीन हो जाती है।²² पुरुष प्रधान समाज में नारी की दुर्दशा, उसके असहाय कष्टों तथा दुखों को देखकर महादेवी वर्मा का नारी मन सामाजिक व्यवस्था, रूढ़ियों, परम्पराओं, समाज में प्रचलित अंधविश्वासों से विद्रोह कर उठा। यह आवश्यक था क्योंकि नारी के प्रति होने वाले ये अत्याचार अमानवीय थे इन से विद्रोह करके ही उसके सम्मान को बचाया जा सकता है तथा उसकी समाज में स्थिति बेहतर की जा सकती है। कष्टों, अन्यायों के विरुद्ध आवाज़ उठा कर ही उसे समाप्त किया जा सकता है। महादेवी ने अपना विद्रोह, असंतोष व्यक्त कर समाज का ध्यान नारी के प्रति होने वाले सदी से अमानवीय अत्याचारों, भेद पूर्ण सामाजिक स्थिति की और आकर्षित किया। उनका विद्रोह मात्र भड़काने वाला न होकर सोचने पर विवश करने वाला है। प्रभाकर श्रोत्रिय कहते हैं—“आग सिर्फ तोड़ने के लिए ज़रूरी नहीं है जोड़ने में भी इसकी आवश्यकता होती है। इसलिए महादेवी का विद्रोह सकारात्मक है और मान्य हैं। इसी कारण महादेवी का नारी विषयक विद्रोह उच्च शृंखला और ध्वंस से अलग है।²³ महादेवी वर्मा अपने निबन्धों में विद्रोहात्मक स्वर में सक्रिय रूप से नारी चेतना के प्रति जागरूक है। इसी विषय में मैनेजर पाण्डेय इस प्रकार कहते हैं—“इससे भारतीय समाज में स्त्री जीवन के प्रचलित और प्रचारित लक्ष्य की ही पुष्टि होती है।²⁴

महादेवी वर्मा से पहले भी नारी की दशा की ओर पुरुष लेखकों का ध्यान आकर्षित हुआ है। प्रेमचंद समाज की दशा के माध्यम से जीवन की समस्त समस्याओं के साथ ही नारी की करुण दशा को भी अभिव्यक्ति देते हैं। आधुनिक युग में अनेक कवियों, समाज-सुधारकों और साहित्यकारों ने भारतीय नारी के यथार्थ

जीवन का चित्रण करने का प्रयत्न किया है परन्तु इस काम में जितनी सफलता महादेवी को मिली है उतनी संभवतः किसी को नहीं मिली। इसका एक कारण महादेवी का स्वयं एक नारी होना है, क्योंकि नारी समस्याओं के बारे में जितने अधिकार से एक नारी लिख सकती है उतने अधिकार से कोई पुरुष नहीं लिख सकता। पुरुष को अनुमान के साथ सहानुभूति का सहारा लेना होता है और नारी जो कहती है अपने जीवन अनुभव के आधार पर कहती है और अनुभव अनुमान से अधिक सत्य के निकट होता है।

इसका कदापि यह अर्थ नहीं कि नारी-समस्या पर जो प्रेमचंद, प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त आदि साहित्यकारों ने लिखा या राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द और महात्मा गाँधी आदि समाज सुधारकों ने किया वह महत्त्वहीन हो अर्थात् उसका कोई महत्त्व न हो। सत्य तो यह है कि नारी स्वतन्त्रता का सारा श्रेय इन्हीं महामानवों को हैं। इस तथ्य को नारी समाज ने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्हें अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने और सामाजिक बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए सहयोग पुरुष समाज का ही मिला। भारत में नारी स्वतन्त्रता का संग्राम अन्य देशों की अपेक्षा पुरुषों द्वारा ही लड़ा गया। भारतीय नारी ने इतने कष्ट और इतनी यातनाएं सही हैं कि आज भी उनके उल्लेख मात्र से हृदय कांप उठता है। पुरुष ने नारी के कष्टों और यातनाओं को देखा और समझा मात्र है परन्तु नारी ने इन कष्टों और यातनाओं को समाज में, घर-परिवार में भोगा है। इस विषय में डॉ० बच्चन सिंह 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' में कहते हैं—“पुरुष कवियों ने स्त्री-स्वातन्त्र्य को वाणी दी। किन्तु महादेवी इस परतन्त्र्य की भोक्ता थीं।”²⁵ महादेवी वर्मा की पीड़ा वैयक्तिक न होकर सामन्ती पाशों में बद्ध एवं सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त भारतीय नारी जीवन की ही पीड़ा है। महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्य में भारतीय नारी

जीवन की पीड़ा को जोड़कर एक मौलिक योगदान प्रस्तुत किया। महादेवी की विशेषता यह है कि छायावाद ने व्यक्ति और समाज की जिस व्यापक असन्तोष भावना को अभिव्यक्ति दी, उसमें उन्होंने भारतीय नारी के असन्तोष, निराशा और आकांक्षा का स्वर भी जोड़ दिया।

महादेवी वर्मा अपने निबन्ध साहित्य में भारतीय स्त्री की प्रतिनिधि के रूप में और साथ ही उसकी इस विषम परिस्थिति, पराधीनता की पीड़ा की अभिव्यक्ति करती हुई प्रतीत होती हैं। मैनेजर पाण्डेय अपने लेख 'मुक्ति की राहें' में कहते हैं—“शृंखला की कड़ियाँ के माध्यम से वे एक स्त्रीवादी दार्शनिक के रूप में हमारे सामने आती हैं।”²⁶

प्रेमचंद स्त्री को पुरुष से बड़ा मानते हुए मेहता जी के माध्यम से 'गोदान' में कहते हैं 'संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं'। परन्तु प्रेमचंद के नारी संबंधी विचार निश्चित रूप से आदर्शवादी दृष्टिकोण लिए हुए हैं जो नारी को उसके परम्परागत रूप में देखने के पक्षधर हैं। यही नहीं, गोविन्दी के रूप में वे भारतीय नारी के आदर्श परम्परावादी रूप को प्रस्तुत करते हैं। वहीं महादेवी वर्मा भारतीय स्त्री-जीवन की जटिल समस्याओं, उसकी दासतापूर्ण करुण स्थिति और मुक्ति की दिशा का चित्रण अपनी मूलगामी दृष्टि से अपने निबन्धों में प्रस्तुत करती हैं, जो कि प्रेमचंद के दृष्टिकोण से भिन्नता तो रखती ही हैं साथ ही, स्त्री दृष्टि का परिचय भी देती हैं। महादेवी उस पीड़ा को जानती हैं जो स्त्री जन्म से भोग रही है साथ ही नारी शक्ति को भी पहचानती हैं। 'शृंखला की कड़ियाँ' में अपनी बात में महादेवी कहती हैं—“भारतीय नारी भी जिस दिन अपने सम्पूर्ण प्राणवेग से जाग सके, उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए सम्भव नहीं। उसके अधिकारों के सम्बन्ध में यह सत्य है कि वे भिक्षावृत्ति से न मिले हैं और न मिलेंगे,

क्योंकि उनकी स्थिति आदान-प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न है।²⁷

महादेवी वर्मा को पूरा विश्वास है कि भारतीय नारी को स्वाधीनता याचना से नहीं मिलने वाली इसके लिए उसे स्वयं संघर्ष करना होगा। महादेवी वर्मा यह जानती हैं कि संघर्ष के लिए शक्ति और विवेक की नितान्त आवश्यकता है इसलिए वह कहती हैं—“हमारे अधिकार, हमारी शक्ति और विवेक के सापेक्ष रहेंगे।”²⁸ महादेवी वर्मा भारतीय समाज में नारी की उस विषम परिस्थिति से भली प्रकार परिचित हैं जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति की प्राचीनता की दुहाई देकर भारतीय नारी को दासत्व प्रदान किये हुए है। महादेवी कहती हैं—“प्राचीनता की दुहाई देकर जीवन को संकीर्णतम बनाते जाना और विकास के मार्ग को चारों ओर से अवरुद्ध कर लेना किसी जीवित व्यक्ति पर समाधि बना देने से भी अधिक क्रूर और विचारहीन कार्य है।”²⁹ स्त्री को अपने व्यक्तित्व के विकास का अधिकार स्वयं है उस पर न की किसी धर्म, सभ्यता या समाज व्यवस्था का अधिकार है। उसके नैसर्गिक व्यक्तित्व विकास में बाधा बनना समाज या संस्कृति का सबसे अनैतिक कार्य है। स्त्री को अपने स्त्रीत्व के प्रति जागरूक और आग्रहशील स्थिति प्रदान करना ही उसके प्रति नैसर्गिक न्याय है। इसके विपरीत उसके व्यक्तित्व का हनन करना अन्याय है, जिसका प्रतिकार न्याय-चेतस व्यक्ति का कर्तव्य भी है और उसका मौलिक अधिकार भी है।

महादेवी वर्मा कहना यह चाहती हैं कि भारतीय समाज की अन्यायपूर्ण नीति ने ही उसे सभ्यता संस्कृति की बेड़ियाँ प्रदान कर दासता प्रदान की है और उसे एक संज्ञाशून्य प्राणी बनाकर अत्याचार और अनीतिपूर्ण कार्य किया है। इसी कारण भारतीय नारी अपनी वेदना का कारण स्वयं नहीं जानती है। वह अपने असहाय कष्टों के प्रति प्रतिकार की भावना से अनभिज्ञ है। इसी विषय में महादेवी वर्मा के ये शब्द

कितने उपयुक्त हैं—“जिन कष्टों से उसके जीवन का एक बार भी संस्पर्श हो जाता है उन्हें वह अपने कर्तव्य की परिधि में रख लेती है। कष्ट सहते-सहते उसमें क्लेश की तीव्रता के अनुभव करने की चेतना भी नहीं रही, उसकी उपयुक्ता, अनुपयुक्ता पर विचार करना तो दूर की बात है।”³⁰

महादेवी वर्मा भारतीय नारी की सामाजिक विषमता से दुखी होकर इस प्रकार करती हैं—“भारतीय स्त्री की सामाजिक स्थिति का इतिहास भी उसके विकृत से विकृतर होने की कहानी मात्र है।”³¹ इतना ही नहीं भारतीय नारी की सामाजिक दशा के लिए महादेवी वर्मा अपने निबन्धों में समकालीन व्यवस्था को ही नहीं बल्कि प्राचीन सामाजिक व्यवस्था, रूढ़ियों, परम्पराओं को भी दोषी मानते हुए कहती हैं—“भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति कभी बेहतर नहीं रही, अपितु बद से बदतर होती गयी है। बीती हुई शताब्दियाँ उसके सामाजिक प्रसाद के लिए नींव के पत्थर नहीं बनीं, वरन् उसे ढहाने के लिए वज्रपात बनती रही हैं।”³²

महादेवी ने अपने निबन्धों में भारतीय नारी के पीड़ित जीवन को सहानुभूति से परे वास्तविक अनुभवों को अभिव्यक्ति दी है। महादेवी ने समस्त भारतीय नारी के दुखों, कष्टों का अनुभव कर उसे अभिव्यक्त किया है। महादेवी ‘मैं नीर भरी-दुख की बदली’ कहकर जब अपनी व्यथा कहती हैं तो वह सिर्फ अपनी ही व्यथा नहीं कहतीं, अपने युग की समस्त भारतीय नारियों की व्यथा कहती हैं। महादेवी की व्यथा नारी की व्यथा थी। डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं—“कोई अपनी वास्तविक स्थिति निश्चल ढंग से व्यक्त करे तो उसमें सामाजिकता अपने आप खिंच आएगी, क्योंकि व्यक्ति की स्थिति भी विशिष्ट सामाजिक स्थितियों या संदर्भों का परिणाम है।”³³ महादेवी वर्मा के विषय में अमृतराय के ये शब्द—“महादेवी का कर्तव्यनिष्ठ सहज संवेदनशील, अन्याय का तत्पर विरोधी, सामाजिक तथा अन्य सभी

कुसंस्कारों का उच्छेदक, समग्र संघर्षशील यही जीवन उसके गद्य में प्राणों का ओज बनकर बोल रहा है।''³⁴

महादेवी वर्मा अपने निबन्धों में भारतीय समाज में, विशेष रूप से नारी के पत्नी, विधवा, वेश्या, विमाता के रूप में नारी की दयनीय स्थितियों और उसके जीवन की जटिल समस्याओं को उद्घाटित करती हैं। पद्मसिंह चौधरी इसी विषय में कहते हैं, भारतीय नारियों को महादेवी जैसा हमदर्द, चिन्तन की प्रौढ़ता, दायित्वबोध की सजगता से पूर्ण युग जीवन का संचित प्रहरी और नारी स्वतन्त्र्य का जबरदस्त वकील साहित्यकार मिल गया हो।''³⁵ महादेवी इन निबन्धों में भारतीय नारी की विवश करुण परिस्थितियों का स्पष्ट रूप से चित्रण करती हैं—''भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग-बिरंगे पक्षी पाल लेता है उसी प्रकार स्त्री को भी पालता है तथा पालित पशुओं के समान ही उसके शरीर और मन पर अधिकार समझाता है।''³⁶

यह भारतीय समाज की सच्चाई है जिसमें स्त्री की पुरुष से अलग कोई स्वतन्त्र पहचान नहीं है। उसका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं है। वह पति के नाम से ही जानी पहचानी जाती है। महादेवी स्त्री की इसी अस्तित्वहीन स्थिति तथा उसके परिणाम की ओर इंगित करते हुए कहती हैं—''स्त्री को अपने अस्तित्व को पुरुष की छाया बना देना चाहिए, अपने व्यक्तित्व को उसमें समाहित कर देना चाहिए,.....इस भ्रमात्मक धारणा को कि स्त्री स्वतन्त्र व्यक्तित्व से रहित पति की छाया मात्र है, सिद्धान्त का रूप दे दिया गया। इस भावना ने इतने दिनों में कितना अपकार कर डाला है, यह इस जाति की युगान्तर तक भंग न होने वाली निद्रा और निश्चेष्टता देख कर ही जाना जा सकता है। उसके पास न अपनापन है और न वह अपनापन चाहती ही है।''³⁷ महादेवी वर्मा भारतीय समाज में नारी की अधिकार हीन,

अस्तित्व शून्य मृतप्राय स्थिति के विषय में कहती हैं—“हमारे समाज ने उसे पाषणप्रतिमा के समान सर्वदा एकरूप, एकरस, जीवित मनुष्य के स्पन्दन, कम्पन और विकार से रहित होकर जीने की आज्ञा दी है, अतः युगों से इसी प्रकार जीवित रहने का प्रयास करते—करते यदि वह निर्जीव सी हो उठी तो आश्चर्य ही क्या है!”³⁸ अपने साहित्यिक निबन्ध ‘काव्य—कला’ में महादेवी कहती हैं—“किसी भी उत्थानशील समाज और उसके प्रबुद्ध कलाकारों में जो सक्रिय सहयोग और परस्पर पूरक आदान—प्रदान स्वाभाविक है, वह हमारे समाज के लिए कल्पनातीत बन गया। समाज की एक बिन्दु पर अचलता और कलाकार की लक्ष्यहीन गति विद्वलता ने उसे एक प्रकार से असमाजिक प्राणी की स्थिति में डाल दिया है।”³⁹ महादेवी वर्मा भारतीय नारी का पुनरुद्धार चाहती है। भारतीय समाज में नारी के दीन जीवन के प्रति महादेवी वर्मा के हृदय में गम्भीर ममता और करुणा का भाव व्याप्त है। महादेवी वर्मा का मनना है—“सृजन में रहस्यमयी विविधता रहती है। वास्तव में संसार का कोई महत्त्वपूर्ण सृजन बहुत स्पष्ट और निरावरण नहीं होता....उसके पूर्ण विकासशील सहयोग को प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक दृष्टि ही नहीं, हृदय का वह संस्कार भी अपेक्षित रहेगा, जिसके बिना मनुष्य का कोई सामाजिक मूल्य नहीं ठहरता।”⁴⁰

महादेवी चाहती हैं कि नारी की यथोचित स्थिति तथा सम्मान समाज में हो। उसके व्यक्तित्व का विकास सहज स्वाभिक वातावरण में हो उसे समाज में पर्याप्त अपनत्व प्राप्त हो उसे पुरुष के समकक्ष स्थान प्राप्त हो। महादेवी कहती हैं नारी पुरुष से किसी भी दशा में कमतर नहीं है। उसे समाज में बराबरी का दर्जा मिले, वह भी पूरे अपनत्व के साथ। नारी अपनी योग्यता का परिचय युगों—युगों से देती आ रही है। महादेवी वर्मा नारी की शक्ति पुरुष शक्ति से श्रेष्ठ मानती हैं। पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों को यह अभ्यस्त करा दिया है कि वह कमजोर है और

स्त्रियाँ भी यह मानकर बैठ गयी हैं कि वे कमज़ोर हैं। महादेवी कहती हैं—“परम्परागत संस्कार ने उसके हृदय में यह भाव भर दिया है कि पुरुष विचार, बुद्धि और शक्ति में उससे श्रेष्ठ है।”⁴¹ पुरुष यह मान बैठा कि वह अधिक ताक़तवर है। स्त्री पुरुष असमान नहीं है, दोनों भिन्न ज़रूर हैं। पुरुषों के पास निश्चित ही तर्क करने की क्षमता स्त्रियों से थोड़ी ज़्यादा है। वह थोड़ा ज़्यादा तर्क कर सकता है क्योंकि उसके पास भावना की क्षमता थोड़ी कम है। भावना की क्षमता स्त्रियों के पास ज़्यादा है, वे ज़्यादा प्रेम कर सकती हैं, ज़्यादा संवेदनशील हो सकती हैं, ज़्यादा अनुभूति पूर्ण हो सकती हैं। पुरुष ज़्यादा तर्क कर सकता है, ज़्यादा गणित कर सकता है। इसी विषय में महादेवी वर्मा इस प्रकार कहती हैं—“नारी का मानसिक विकास पुरुषों के मानसिक विकास से भिन्न परन्तु अधिक द्रुत स्वभाव, अधिक कोमल और प्रेम-घृणादि भाव अधिक तीव्र तथा स्थायी होते हैं। इन्हीं विशेषताओं के अनुसार उसका व्यक्तित्व विकास पाकर समाज के उन अभावों की पूर्ति करता रहता है जिसकी पूर्ति पुरुष-स्वभाव द्वारा सम्भव नहीं है।”⁴² महादेवी आगे कहती हैं—“नारी जाति केवल रूप और वय का पाथेय लेकर संसार-यात्रा के लिए नहीं निकली थीं। उसने संसार को वह दिया जो पुरुष नहीं दे सकता है, अतः उसके अक्षय वरदान का वह आज तक कृतज्ञ है।”⁴³ महादेवी मानती हैं कि पुरुष अधिक शक्तिशाली है, दोनों में भेद शारीरिक है लेकिन स्वभाव गत प्रवृत्तियों में उतना ही अन्तर है जितना बिजली और पानी में है। बिजली से शक्ति उत्पन्न होती है जो कठिन से कठिन काम को कर सकती है लेकिन प्यास केवल पानी से ही बुझ सकती है। पुरुष संघर्षशील है तो नारी शान्तिप्रिय। दोनों की उपयोगिता अपनी-अपनी जगह है दोनों अपने आप में पूर्ण हैं और अपनी पूर्णता से ही समाज में सामंजस्य लाकर सामाजिक विकास करते हैं। महादेवी वर्मा स्त्री और पुरुष के भेद को सत्य मानते हुए कहती हैं—“मनोवैज्ञानिक

दृष्टि से, शारीरिक विकास के विचार से और सामाजिक जीवन की व्यवस्था से स्त्री-पुरुष में विशेष अन्तर रहा है और भविष्य में भी रहेगा, परन्तु यह मानसिक या शारीरिक भेद न किसी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है और न किसी की हीनता का विज्ञापन करता है।⁴⁴ महादेवी मानती हैं दो वस्तुओं का अन्तर सदैव ही उनकी श्रेष्ठता और हीनता का धोतक नहीं होता। शारीरिक और मानसिक भेद की वजह से कोई नीचा और ऊँचा नहीं है। एक दृष्टि से पुरुष शक्तिशाली है क्योंकि वह कठिन से कठिन कार्य कर सकता है। वह शारीरिक दृष्टि से ताक़तवर अधिक है लेकिन दूसरे अर्थों में पुरुष कमज़ोर है वह ज़्यादा या सीमातीत पीड़ा नहीं झेल सकता है। पुरुष अपने व्यक्तिगत या समूहगत राग-द्वेष की प्रतिक्रिया वश वीर धर्म अपना सकता है, और अहंकार की तृप्ति मात्र के लिए अकाण्ड ताण्डव कर सकता है, लेकिन नारी अपने सृजन की बाधाएँ दूर करने के लिए या अपनी कल्याणी सृष्टि की रक्षा के लिए ही रुद्ध बनती है। महादेवी का कहना यह है कि स्त्री का त्याग बलिदान ऐसा नहीं है जो भूलाया जा सके। उसके दान से आज तक समाज कृतज्ञ है। “उस उथल-पुथल के युग में स्त्री ने जो किया वह अभूतपूर्व होने के साथ-साथ उसकी शक्ति का प्रमाण भी था। यदि उसके बलिदान, उसके त्याग भूले जा सकेंगे तो उस आन्दोलन का इतिहास भी भूला जा सकेगा।”⁴⁵

इससे भारतीय स्त्री को लाभ यह हुआ कि उसे शक्तिहीन मानने पर पुरुष को अफ़सोस हुआ। नारी पर लगा शक्तिहीनता का कलंक दूर हो गया। महादेवी वर्मा इसी विषय में कहती हैं—“पुरुष ने अपनी आवश्यकता वश ही उसे साथ आने की आज्ञा दी, परन्तु स्त्री ने उससे पग मिलाकर चलकर प्रमाणित कर दिया कि पुरुष ने उसकी गति पर बन्धन लगाकर अन्याय ही नहीं, अत्याचार भी किया है। जो पंगु है उसी के साथ गतिहीन होने का अभिशाप लगा है, गतिवान को

पंगु बनाकर रखना सबसे बड़ी क्रूरता है।”⁴⁶ महादेवी का कहना है कि भारतीय नारी यह युगों से प्रमाणित करती आ रही है कि वह शक्तिहीन नहीं है वह पुरुष के समान है तथा उसकी सहयोगी है। वह कभी किसी क्षेत्र में पुरुष से कम नहीं रही “उसने कभी किसी भी त्याग या बलिदान के सम्मुख कातरता नहीं दिखाई, किसी बन्धन से वह भयभीत नहीं हुई और समाज के कल्याण के लिए उसने अपने सारे जीवन को बिना विचारे हुए भी चिर-निवेदित कर दिया।”⁴⁷

महादेवी वर्मा कहना यह चाहती हैं कि स्त्री के इतने त्याग बलिदान के बाद स्त्री की समाज में स्थिति सिर्फ इतनी ही बदली है कि अब सीधे तौर पर स्त्री के लिए पुरानी सामाजिक स्थितियों की हिमायत नहीं की जाती है। लेकिन जहाँ तक व्यवहार की बात आती है वहाँ स्त्री के लिए बुनियादी तौर पर कुछ नहीं बदला है। जहाँ बदलाव है भी, वहाँ नगण्य है, क्योंकि स्त्रियों की सामाजिक स्थिति इस कठोरता के साथ व्याख्यायित की गयी है कि उसकी इस स्थिति में सुधार मात्र प्रयास बन कर रह जाता है। इसका कारण है कि समाज में पुरुष प्रधान वर्चस्व है। इस वर्चस्व में स्त्री-पुरुष के संबंध गैर-बराबरी के संबंध हैं। दोनों में सम्मान और बराबरी का भाव कभी नहीं रहा है। पुरुष को विशेष दर्जा देकर स्त्री का दर्जा अपने आप कम कर दिया गया है। जबकि सामाजिक विकास में दोनों की बराबरी रही है, किसी की कम या अधिक नहीं है। स्त्री को अनेक सम्बन्धों का केन्द्र तथा परिवार और समाज विशेष से सम्बन्धित रहने के कारण उसे सामाजिक विकास के लिए विशेष अधिकार और उत्तरदायित्व देना आवश्यक हो जाता है। महादेवी वर्मा स्त्री को समाज में विशेष दर्जा प्रदान करना चाहती हैं क्योंकि पुरुष के समान स्त्री भी नागरिक है और उसे एक नागरिक होने के कारण राजनीतिक तथा सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में पुरुष के ही समान स्थान तथा कर्तव्य ज्ञान होना चाहिए। महादेवी वर्मा

के शब्दों में—“नागरिक होने के कारण स्त्री को भी इन दोनों ही अधिकारों की आवश्यकता सदा से रही है और रहेगी, परन्तु प्राचीन काल से अब तक उसके अनुकूल स्वत्वों को देने तथा समयानुसार उनमें परिवर्तन की सुविधाएँ सहज करने की ओर कभी किसी का ध्यान नहीं गया।”⁴⁸ पुरुष का स्वार्थ उसकी दोहरी नीति है जो स्त्री का स्थान, उसके हक, अधिकार आदि को छीनता है। स्त्री की स्वतंत्रता उसके अधिकारों का अपहरण करती है। स्त्री को आत्मनिर्भरता प्रदान न करके ऐसी व्यवस्था गड़ी गयी है कि वह पुरुष पर आश्रित रहे, जिससे उसे यथासम्भव परजीवी बनाये रखा जा सके। स्त्री की वास्तविक स्थिति को जानने के लिए समाज में स्त्री की भूमिका को स्त्री के प्रति समाज के रवैये को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है। इसी विषय में महादेवी वर्मा कुछ इस प्रकार कहती हैं—“शासन-विधान ने उसे न्याय तथा कानून-विषयक कैसी सुविधाएँ प्रदान की थीं, यह तो उन शास्त्रों से प्रकट हो जाएगा जिसके आधार पर आज भी उसे अनेक कष्ट सहने के लिए बाध्य किया जा रहा है।”⁴⁹

महादेवी वर्मा स्त्री के प्रति सामाजिक बरताव को अलग-अलग दृष्टिकोण से अभिव्यक्त करती हैं। डॉ० लक्ष्मणदत्त गौतम कहते हैं—“महादेवी ने आज की भारतीय नारी के विविध प्रकार के शोषण, उसकी सामाजिक विषमताओं, बाल-वैधव्य एवं बहुविवाह जैसी नारी-जीवन की कुरीतियों का अपनी रचनाओं में बड़ा हृदयस्पर्शी, बहुत मार्मिक चित्रण किया है। नारी ही नारी-जीवन की विषमताओं पर मार्मिक एवं दर्द भरी चोट कर सकती है।”⁵⁰ यह सत्य है महादेवी वर्मा के निबन्धों में व्याप्त उनके जीवन एवं व्यक्तित्व की रेखाएँ एक संवेदनशील हृदयवाली नारी का परिचय देती हैं। महादेवी वर्मा का युग समग्र अभिव्यक्ति का प्रतीकमयी युग था। साथ ही नारी होने के कारण महादेवी वर्मा को प्रत्यक्षता की एक सीमा से आगे

बढ़ने से अपने आपको रोकना पड़ा। इसी विषय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं—“व्यक्तिगत अनुभूतियों की तीव्रता और मर्मस्पर्शिता में महादेवी की रचनाएँ अपूर्व हैं।”⁵¹

महादेवी वर्मा नारी के प्रति समाज के अन्ध-निर्णय से भली प्रकार परिचित थीं। वह जानती थीं समाज के भेदभाव से भरे अन्याय पूर्ण, अन्ध-निर्णय के सामने, निरीह करुणापूर्ण नारी का अस्तित्व ही क्या है। समाज का नारी के प्रति जो रवैया है उस पर महादेवी वर्मा ने व्यापक निरीक्षण किया, जो सूक्ष्म और यथार्थ से पूर्ण है। महादेवी वर्मा भारतीय समाज में पुरुष की अहंकारी प्रवृत्ति के कारण नारी पर किये गये अत्याचारों से भली प्रकार परिचित थीं। युगों से भारतीय नारी अपने त्याग, बलिदान, तपस्या में अपने व्यक्तित्व को खोकर, यहाँ तक अपनी स्वभाविक मानवीय इच्छाओं को त्याग कर एक आदर्श में ढलकर देवतुल्य वस्तु बन गयी। तब भी उसे पुरुष समाज से क्या प्राप्त हुआ। महादेवी कहती हैं—“अग्नि में बैठकर अपने आपको प्रतिप्राणा प्रमाणित करने वाली स्फटिक सी स्वच्छ सीता में नारी की अनन्त युगों की वेदना साकार हो गई है। कौन कह सकता है, उस भागते हुए युग ने अपनी उस अलौकिक कृति, अपने मनुष्यत्व की क्षुद्र सीमा में बँधे विशाल देवत्व की ओर एक बार मुड़कर देखने का भी कष्ट नहीं सहा! मनुष्य की साधारण दुर्बलता से युक्त दीन माता का वध करते हुए न पराक्रमी परशुराम का हृदय पिघला, न मनुष्यता की असाधारण गरिमा से गुरु सीता को पृथ्वी में समाहित करते हुए राम का हृदय विदीर्ण हुआ। मानो पुरुष-समाज के निकट दोनों जीवनों का एक ही मूल्य था। एक जीवित व्यक्ति का इतना कठोर त्याग, इतना निर्मम बलिदान दूसरा हृदयवान व्यक्ति इतने अकातर भाव से स्वीकार कर सकता है, यह कल्पना में भी क्लेश देती है, वास्तविकता का तो कहना ही क्या।”⁵²

नारी का त्याग पुरुष के लिए उसकी दुर्बलता के सूचक से अधिक कोई महत्त्व नहीं रखता। पुरुष ने नारी की कोमलता, उसके त्याग को दुर्बलता मानकर उस पर सदियों से अमानवीय अत्याचार के अतिरिक्त कुछ नहीं किया। महादेवी वर्मा के शब्दों में—“कम से कम इतिहास तो नहीं बताता कि उसके किसी बलिदान को पुरुष ने उसकी दुर्बलता के अतिरिक्त कुछ और समझने का प्रयत्न किया।”⁵³ भारतीय नारी की तथाकथित दुर्बलताएँ महादेवी की सहज सहानुभूति का लक्ष्य बन गयी। महादेवी के नारी-विषयक आदर्श वैचारिक सूत्र में बड़े ही प्रौढ़ हैं। महादेवी वर्मा कहती हैं—“नारी की वेदना का यथार्थ अनुभव करने के लिए उनके हृदय को संवेदनशील बना दे जिससे मनुष्य जाति के कलंक के समान लगने वाले इन अत्याचारों का तुरन्त अन्त हो जाय, अन्यथा नारी के लिए नारीत्व अभिशाप तो है ही।”⁵⁴

महादेवी वर्मा भावुकतावश भी गंभीर चिंतन के क्षणों में नारीत्व को लेकर असंतुलित नहीं हुई हैं। महादेवी वर्मा नारी की इस दशा के लिए जिम्मेदार उसकी दुर्बलता को मानती हैं। नारी की कोमलता ही उसकी दुर्बलता बनी है जिसके फलस्वरूप उसकी वर्तमान दशा यह है—“नारीत्व की कोमलता नाम से पुकारी जाने वाली दुर्बलता के साथ सदा से बँधी हुई वेदना और तज्जनित आपत्ति प्रत्येक युग तथा प्रत्येक परिस्थिति में नवीन रूप में आती रही है, परन्तु उसकी वर्तमान दशा करुणतम है।”⁵⁵ आगे महादेवी कहती हैं—“दुर्बलता मनुष्य जीवन का अभिशाप रही है और रहेगी।”⁵⁶ महादेवी वर्मा कहती हैं यही अभिशाप आज तक नारी भुगत रही है। समाज तथा पुरुष द्वारा नारी पर निरन्तर किये गये प्रतिबंधों तथा दबावों के कारण आज नारी की वर्तमान दशा यह है कि वह अपना मनोबल खो चुकी है। सुंदरता, भाव संवेदना, सेवा जैसी अनेक विशेषताओं के रहते हुए भी भारतीय नारी

इतने प्रतिबंधों, दबावों के बीच रहने के लिए बाधित है। भारतीय नारी का घर और समाज इन्हीं दोनों से सम्पर्क रहा है लेकिन इन दोनों ही जगहों में उसकी स्थिति करुणाजनक है। न पिता के घर में उसे सम्मान और अपनापन मिलता है और पति घर में उसे उपेक्षित प्राणी के रूप में सम्पूर्ण जीवन जीना होता है। उसकी घर तथा समाज में कोई विशेष स्थिति है न सम्मान। नारी की इन दोनों स्थानों पर स्थिति से महादेवी वर्मा भली प्रकार परिचित हैं—“जिस घर में उसके जीवन को ढलकर बनना पड़ता है, उसके चरित्र को एक विशेष रूप—रेखा धारणा करनी पड़ती है, जिस पर वह अपने शैशव का सारा स्नेह दुलकाकर भी तृप्त नहीं होती, उसी घर में वह भिक्षुक के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दुख के समय अपने आहत हृदय और शिथिल शरीर को लेकर वह उसमें विश्राम नहीं पाती, भूल के समय वह अपना लज्जित मुख उसके स्नेहांचल में नहीं छिपा सकती और आपत्ति के समय एक मुट्ठी अन्न की भी उस घर से आशा नहीं रख सकती। ऐसी ही है उसकी वह अभागी जन्मभूमि, जो जीवित रहने के अतिरिक्त और कोई अधिकार नहीं देती। पतिगृह, जहाँ इस उपेक्षित प्राणी को जीवन का शेष भाग व्यतीत करना पड़ता है, अधिकार में उससे कुछ अधिक परन्तु सहानुभूति में उससे बहुत कम है इसमें सन्देह नहीं। यहाँ उसकी स्थिति पल भर भी आशंका से रहित नहीं। यदि वह विद्वान पति की इच्छानुकूल विदुषी नहीं है तो उसका स्थान दूसरी को दिया जा सकता है, यदि वह सौन्दर्योपासक पति की कल्पना के अनुरूप अप्सरी नहीं है तो उसे अपना स्थान रिक्त कर देने का आदेश दिया जा सकता है, यदि वह पति—कामना का विचार करके सन्तान या पुत्रों की सेना नहीं दे सकती, यदि वह रुग्ण है या दोषों का नितान्त अभाव होने पर भी पति की अप्रसन्नता की दोषी है तो भी उसे उस घर में दासत्व स्वीकार करना पड़ेगा।”⁵⁷

पुरुष प्रधान समाज ने स्त्री के लिए कहीं पर भी स्थान नहीं छोड़ा

है और न ही उसे अपने मन से जीवन जीने का ही अवकाश दिया है। भारतीय समाज में एक स्त्री का सारा जीवन पिता, पति, भाई और अन्यो के लिए ही निर्धारित है, उसके जीवन में स्वयं उसके अपने लिए न समय है न इच्छा है। महादेवी के दुख की अभिव्यक्ति काल और सीमा में जकड़ी हुई असीम चेतना का क्रन्दन है, जो कि भारतीय समाज में परतन्त्र नारी के क्रन्दन का प्रतीक है। महादेवी वर्मा एक नारी है और इसी कारण नारी की दयनीय दशा से भली प्रकार अवगत है। जगदीश्वर चतुर्वेदी कहते हैं—“अनुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति तक ही संभव है जब अनुभवों की प्रत्यक्ष अनुभूति हो। अनुभव में शिरकत हो तब ही प्रामाणिक अभिव्यक्ति संभव है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि अनुभव की प्रामाणिकता के लिए स्त्री होना ज़रूरी है।”⁵⁸ पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री पर हुए अत्याचार और परिवार वालों का भेदपूर्ण व्यवहार किस तरह अमानवीय हो जाता है उसे सामाजिक तौर पर अभिव्यक्त करने वाली महादेवी वर्मा हैं उनके पहले मीराबाई भक्तिकाल में इसी रूप में सामने आयीं। स्त्री का दुख, उत्पीड़न एवं दमन सदा से निजी रहा है और भारतीय स्त्रियाँ इसे छुपाती रही हैं। इसका पुरुष वर्ग को लाभ होता रहा है। साथ ही अत्याचार करने का बढ़ावा। मीराबाई के समान महादेवी ने अपने व्यक्तिगत दुख को सामाजिक कर दिया। छायावाद युग की विशेषता के रूप में निज को सामाजिक करने के पीछे आधुनिकता का दृष्टिकोण है। जो सामंतवाद के विपरीत निज को सामाजिक रूप में व्यक्त करने का भावबोध है।

महादेवी वर्मा स्त्री की दमित इच्छाओं, आकाक्षाओं एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्त करती हैं। महादेवी वर्मा ने जीवन के यथार्थ को स्वीकार करके स्त्री की समस्या पर विचार किया। कुमुद शर्मा कहती हैं—“उन्हें हिन्दुस्तानी स्त्री की पल-पल धड़कने वाली नाड़ी की परख थी। उनकी आवाज़ उन स्त्रियों के लिए उठी जिनके

पास दिमाग और दृष्टि तो है मगर उस पर नियंत्रण है किसी और का। उनके पास ज़बान तो है मगर व तालू से चिपकी है।”⁵⁹

महादेवी वर्मा कहती हैं भारतीय नारी में ऐसा कौन सा गुण नहीं है जो उसे संसार में मानवी देवी बनाने का अधिकार नहीं देता है। उसमें सहन करने की शक्ति तथा क्षमता सीमातीत है। उसका बड़े से बड़ा त्याग घोर से घोर तप दूसरों के कल्याण के लिए होता है। उसमें पवित्रता की वो पराकाष्ठा है जो साधारण मनुष्य को देवता बनाने की क्षमता रखती है। वह त्यागमयी माँ, पतिव्रता पत्नी, स्नेही बहन और आज्ञाकारी पुत्री के रूप में है जो सिर्फ देना जानती है। इसी विषय में महादेवी वर्मा इस प्रकार कहती हैं—“स्त्री किस प्रकार अपने हृदय को चूर-चूर कर पत्थर की देव-प्रतिमा बन सकती है, यह देखना हो तो हिन्दू गृहस्थ की दुध मुँही बालिका से शापमयी युवती में परिवर्तित होती हुई विधवा को देखना चाहिए जो किसी अज्ञात व्यक्ति के लिए अपने हृदय की, हृदय के समान ही प्रिय इच्छाएँ कुचल-कुचल कर निर्मूल कर देती है, सतीत्व और संयम के नाम पर अपने शरीर और मन को अमानुषिक यंत्रणाओं के सहने का अभ्यस्त बना लेती है और इस पर भी दूसरों के अमंगल के भय से आँखों में दो बूंद जल भी इच्छानुसार नहीं आने दे सकती।”⁶⁰

महादेवी वर्मा पुरुष प्रधान समाज को दोषी मानते हुए कहती हैं समाज ने नारी की सीमातीत सहन शक्ति की, उसके अप्रतिम त्याग और कठिन साहस की प्रशंसा करते-करते उसे एक आदर्श देवत्व प्रदान कर मानवी रहने ही नहीं दिया है। उसे मानवीय सजीवता से वंचित कर पत्थर की मूर्ति बनाकर भारतीय नारी का सांचा गढ़ दिया गया है। वह एक मृतक के समान है जो न प्रतिकार करता है न ही साँस लेता है, न आह है, न कहार और न पथराई आँखों में आँसू ही हैं। भारतीय नारी की स्थिति मृतक के समान है और पुरुष प्रधान समाज में इसी आदर्श स्थिति को माना

जाता है, इसी स्थिति की प्रशंसा की जाती है। उसकी निर्जीवता की प्रशंसा कर उसे धर्म कर्तव्य बना दिया गया है। “आज हिन्दू स्त्री भी शव के समान निस्पन्द है। संस्कारों ने उसे पक्षाघात के रोगी के समान जड़ कर दिया है, अतः अपने सुख-दुख को चेष्टा-द्वारा प्रकट करने में भी वह असमर्थ है।”⁶¹

भारतीय नारी मानवीय सुविधाओं से बहुत दूर है। उसके स्वभावगत गुणों को दुर्बलता का नाम देकर उस पर अमानवीय अत्याचार और अन्याय किये गये हैं। उसकी सहनशक्ति की प्रशंसा कर कष्टों के प्रति प्रतिकार करने के लिए सदा के लिए वंचित कर दिया गया है। सहन करना ही उसका धर्म निश्चित कर दिया गया है। इस पर भी वह जीवित मानी जाती है, अतः कहा जा सकता है कि नारी का जीवन रहस्यपूर्ण है। समाज में उसकी पहचान एक निष्क्रिय प्राणी के रूप है। उसका श्रम बैल के समान है जो बोझ ढोने का अभ्यस्त है, प्रतिकार वो करना नहीं जानता। उसी प्रकार भारतीय स्त्री है जो जीवन भर कर्तव्य-बोझ से बेहाल रहती है फिर भी प्रतिकार करने का जो प्रश्न ही नहीं। भले ही किसी को उसकी स्थिति पर दया आ जाये पर स्वयं वह अफ़सोस तक नहीं करती। “पिता की अट्टालिका और वैभव से वंचित दरिद्र भगिनी को ऐश्वर्य का उपभोग करने वाले भाई की कलाई पर सरल भाव से रक्षा बंधन बाँधते देख कौन विश्वास कर सकेगा कि ईर्ष्या भी मनुष्य का स्वाभाविक विचार है और अनेक साहसहीन निर्जीव से पुत्रों द्वारा उपेक्षा और अनादर से आहत हृदय ले उनके सुख के प्रयत्न में लगी हुई माता को देख कौन ‘क्वचित् कुमाता न भवति’ कहने वाले को स्त्री स्वभाव के गंभीर रहस्य का अन्वेषक न मान सकेगा?”⁶² यँ तो भारतीय संस्कृति एवं दर्शन में नारी को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। हिन्दू धर्म-कथाओं में अर्द्धनारीश्वर की कल्पना नारी की महत्ता और प्रधानता की सूचक है। यह मान्यता रही है कि नर की सृष्टि नारी के सहयोग के

बिना अपूर्ण है। महादेवी वर्मा कहती है ऐसा नहीं है कि समाज में स्त्री की स्थिति कभी सम्मानपूर्वक नहीं रही प्राचीन काल में स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व रहा है। अपनी सर्जन प्रतिभा तथा कला से मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने में, पत्नी-पुत्रादि के लिए गृह और उसकी पवित्रता की रक्षा करने में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कोमल संवेदन-शील नारी सामाजिक व्यवस्था का एक आवश्यक अंग है। महादेवी वर्मा के शब्दों में—“उसके व्यक्तित्व के प्रति समाज का इतना आदर और स्नेह प्रकट करना सिद्ध करता है कि मानव-समाज की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति उसी से सम्भव थी।”⁶³ यही नहीं महादेवी वर्मा प्राचीन काल में स्त्रियों के उदाहरण देते हुए कहती हैं कि प्राचीन काल में कितनी ही स्त्रियाँ अपने स्वतंत्र व्यक्ति तथा कर्तव्यवृद्धि के लिए आज भी याद की जाती हैं क्योंकि वे सभी पुरुष की जीवन संगिनी रही हैं। सुख-दुख की सहयोगी रही हैं, मात्र छाया नहीं। महादेवी का मानना है—“छाया का कार्य, आधार में अपने आपको इस प्रकार मिला देना है जिसमें वह उसी के समान जान पड़े, और संगिनी का अपने सहयोगी की प्रत्येक त्रुटि की पूर्ण कर उसके जीवन को अधिक से अधिक पूर्ण बनाना।”⁶⁴

उपसंहार:

भारतीय नारी के जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यही रही है कि उसने दोनों ही अवस्थाओं का अनुभव किया है। भारत वर्ष में नारी की निन्दा और प्रशंसा दोनों बातें पायी जाती हैं। कभी वह पवित्र देव मन्दिर की अधिष्ठात्री बनी तो कभी उसे घर के एक कोने में बन्दिनी के रूप में रहना पड़ा, कभी समाज ने उसे अतुल श्रद्धा दी तो कभी उसे घोर अश्रद्धा और अनादर मिला। एक ओर सन्तों ने उसे काम-स्वरूपा और भव-बन्धन का मुख्य कारण जानकर घोर निन्दा की तो, वहीं दूसरी ओर यह भी कहा गया है कि जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहाँ देवता

विचरण करते हैं और शास्त्रों तथा कवियों ने उसके सतीत्व, मातृत्व, आत्म-त्याग तथा बलिदान और अन्य अनेक गुणों का गान किया।

महादेवी वर्मा कहती है ऐसा नहीं है कि समाज में स्त्री की स्थिति कभी सम्मान पूर्वक नहीं रही। प्राचीन काल में स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व रहा है। प्राचीन स्त्रियों का सहयोगी रूप आज भी स्मरणीय है—“त्यागी बुद्ध की करुण कहानी की आधार सती गोपा भी केवल उनकी छाया नहीं जान पड़ती, वरन् उसका व्यक्तित्व बुद्ध से भिन्न और उज्ज्वल है। निराशा में ग्लानि में और उपेक्षा में वह न आत्महत्या करती है, न वन-वन पति का अनुसरण। अपूर्ण साहस द्वारा अपना कर्त्तव्य पथ खोज कर स्नेह से पुत्र को परिवर्धित करती है और अन्त में सिद्धार्थ के प्रबुद्ध होकर लौटने पर धूलि के समान उनके चरणों से लिपटने न दौड़कर कर्त्तव्य की गरिमा से गुरु बनकर अपने ही मन्दिर में उनकी प्रतीक्षा करती है।”⁶⁵ महादेवी वर्मा कहना यह चाहती हैं कि यहाँ गोपा का व्यक्तित्व बुद्ध से अलग और उज्ज्वल इसलिए है क्योंकि वह अपने विवेक से निर्णय लेकर पति का अन्धानुसरण नहीं करती। वह अपने जीवन में पति के अभाव से रिक्तता नहीं आने देती और न ही उसे पति द्वारा उपेक्षित होने पर दुख, निराशा, अपमान महसूस होता है। वह अपने जीवन की गति को न रोक कर अपने कर्त्तव्य को पूरा करते हुए पुत्र का पालन पोषण करती है।

महादेवी वर्मा नारी के जीवन की कठिनाइयों के लिए न केवल पुरुष को दोष देती हैं बल्कि इसके लिए वे नारी को भी समान रूप से दोषी मानती हैं। भारतीय नारी को सदा से ही यही शिक्षा दी जाती रही कि सफल स्त्री वही है जो अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को पुरुष के व्यक्तित्व में समाहित कर जीवन यात्रा को पूरा करे, क्योंकि स्त्री का स्वतन्त्र व्यक्तित्व कोई नहीं है। उसे तो बस पति की छाया-बनकर जीना है। पुरुष के एक इशारे पर वह हँसते-हँसते अपने प्राणों पर

खेल सकती है, पर इस सब त्याग का मूल्य वही होती है जो बलि-पशु के निरुपाय त्याग का होता है। भारतीय नारी को यह भी ज्ञात नहीं की उनके जीवन की कठिनाइयाँ क्या हैं? समाधान तो बहुत दूर की बात है। महादेवी कहती हैं—“समस्या का समाधान समस्या के ज्ञान पर निर्भर है और यह ज्ञान ज्ञाता की अपेक्षा रखता है। अतः अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए। सामान्यतः भारतीय नारी में इसी विशेषता का अभाव मिलेगा। कहीं उसमें साधारण दयनीयता है और कहीं असाधारण विद्रोह है, परन्तु सन्तुलन से उसका जीवन परिचित नहीं।”⁶⁶

महादेवी वर्मा का मानना है—“सन्तुलन का अभाव हमारा जातीय गुण चाहे न कहा जा सके, परन्तु यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि एक दीर्घ काल से हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों में यही त्रुटि विशेषता बनती जा रही है।”⁶⁷ स्त्री की इस दशा का मुख्य कारण है धर्मशास्त्र-आधारित सामाजिक सोच और वह सामाजिक संरचना जिसके तहत जीवन-व्यवहार, मर्यादाओं तथा कर्तव्यों के नाम पर स्त्री के लिए एक नरक रचा गया है। थोड़े से सुभाषितों की आड़ में आजन्म, पराधीनता की एक नियति उसे दी गयी है। इस भेद भावपूर्ण सामाजिक संरचना के तहत स्त्री ने बहुत कुछ सहा और भोगा है। यह भी सच है इस भेदभावपूर्ण संरचना का विरोध किया जाता रहा है। इन विरोधों के बावजूद यह सामाजिक संरचना न केवल बरकरार है बल्कि पहले से अधिक पीड़ा दायक हुई है। कुछ भी क्यों नहीं बदला इसका कारण मात्र यह है कि सदिच्छाओं मात्र से या पीड़ा की वैयक्तिक अभिव्यक्तियों से, समाज नहीं बदल सकता। सामाजिक व्यवस्था में सारी तन्मयता, सारा समर्पण एक तरफ़ा है स्त्री के लिए समर्पण भाव आवश्यक है पुरुष के लिए नहीं। सामाजिक व्यवस्था जीवन-व्यवहार के तहत स्त्री को पुरुष के प्रति, पत्नी को पति के प्रति समर्पण भाव के रूप में, एक आदर्श के रूप में प्रचारित और व्याख्यायित करता है।

लेकिन इतिहास गवाह है इस व्यवस्था ने स्त्री को कमजोरी को हमेशा अपने हित और स्वार्थ के लिए भुनाया और इस्तेमाल किया है। धर्मशास्त्रों में स्त्री को जिन मर्यादाओं में बाँधा गया है वे मर्यादाएं संस्कार बनकर स्त्री मानस में इस तरह घुल गयी है कि उनसे उबर पाना, स्त्री के लिए कठिन ही नहीं असम्भव सा प्रतीक होता है। स्त्री समर्पण की यह निर्यात, गुलामी का यह सुख, इस सुख से स्त्री की यह रजामंदी ही सबसे बड़ी विडम्बना और परेशानी का कारण है। महादेवी वर्मा कहती है स्त्री मुक्ति की सबसे बड़ी बाधा यही है—“स्वयं अपनी इच्छा से स्वीकृत युगदीर्घ बन्धनों को काट देने के लिए हमें संसार भर की अनुमति लेने का न अवकाश है, न आवश्यकता।”⁶⁸ स्त्री उसी समाज का अविभाज्य अंग है, जिसे पुरुषों ने अपने स्वार्थ में निर्मित किया है। इसलिए नारी की मुक्ति इस सामाजिक ढाँचे में बदलाव के बिना असंभव है। क्योंकि नारी मुक्ति समूचे समाज की वास्तविक मुक्ति का अनिवार्य अंग है। समाज में जागृति के लिए सबसे पहले स्त्रियों की जागृत करना ज़रूरी है। उनकी गतिशीलता से ही परिवार, गाँव और देश में गतिशीलता पैदा होगी। व्यवस्था की प्रकृति बदलने से ही समाज बदलता है। महादेवी वर्मा स्त्री के सामाजिक अधिकारों की माँग करते हुए कहती हैं—“सामाजिक अधिकारों का फिर से निरीक्षण तथा उनमें से समय के प्रतिकूल परिस्थितियों को दूर करने का प्रयास ही भविष्य के लिए श्रेयस्कर हो सकेगा।”⁶⁹ आगे महादेवी वर्मा कहती हैं—“पुरुष तथा स्त्री के कार्य क्षेत्र पृथक्-पृथक् परन्तु समान रूप से महत्वपूर्ण है।.....यदि पुरुष धनोपार्जन कर अपने कर्तव्य का पालन करता हुआ समाज तथा देश का आवश्यक और उपयोगी अंग समझा जाता है, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों का यथेष्ट उपयोग कर सकता है, तो स्त्री गृह में भविष्य के लिए अनिवार्य सन्तान का पालन-पोषण कर अपने गुरु कर्तव्य का भार बहन करती हुई इन सब अधिकारों से अपरिचित तथा

वंचित क्यों रखी जाती है?"⁷⁰ समाज के सारे नियम पुरुषों द्वारा अपने हित साधन में ही गढ़े गये। इनमें समाज की आधी आबादी स्त्री की कोई भूमिका नहीं रही। महादेवी कहती हैं—“समाज अपने आधे-उत्तमांग की अवज्ञा करके कितने दिन जीवित रह सकेगा, यह कहना बाहुल्य मात्र है।”⁷¹

सामाजिक व्यवस्था इतनी भेदपूर्ण रही है और इस व्यवस्था ने स्त्री के मानसिक विकास का इतना अपकर्ष किया है कि स्त्रियों में से कम ही ऐसी होगी जो अपने अधिकारों से परिचित होगी। स्त्रियों को सम्पत्ति तथा अर्थ सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हो तो निश्चित रूप से उनकी स्थिति बेहतर हो सकती है “यदि उन्हें अर्थ-सम्बन्धी वे सुविधाएँ प्राप्त हो सकें जो पुरुषों को मिलती आ रही है तो न उनका जीवन उनके निष्ठुर कुटुम्बियों के लिए भार बन सकेगा और न वे गलित अंग के समान समाज से निकाल कर फेंकी जा सकेंगी, प्रत्युत् वे अपने शून्य क्षणों को देश के सामाजिक तथा राजनीतिक उत्कर्ष के प्रयत्नों से भर कर सुखी रह सकेंगी।”⁷² महादेवी वर्मा ने लिखा है—“अपने स्वत्वों के रूप तथा आवश्यकताओं से स्त्रियाँ जितनी परिचित हो सकती हैं उतने पुरुष नहीं।”⁷³ क्योंकि पुरुष दृष्टा है और स्त्री भोक्ता। भारतीय समाज में व्याप्त इन सभी सामाजिक रोगों की जड़ शिक्षा का अभाव है। समाज का आधार परिवार और परिवार की जड़ नारी है। अतः महादेवी वर्मा नारी-समस्याओं को देखते हुए स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के लिए स्त्री-शिक्षा का प्रसार मुख्य मानती हैं। स्त्री शिक्षा के पक्षाधर दयानन्द कहते हैं इन भेदभाव का तथा अपने सामाजिक अधिकारों का हनन होने पर स्त्री स्वयं उत्तर दे सकती है “यदि स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी होती, तो इन पण्डितों की बड़बड़ाहट का खण्डन करके एक घड़ी में उनका मुँह बन्द कर देतीं।”⁷⁴ यह सच है कि आज की स्थिति पहले जैसी नहीं रही। आज के पुरुष प्रधान समाज ने अपनी भूल को पहचान लिया और

वह जान गया है कि नारी समाज का एक आवश्यक और अनिवार्य अंग है। परन्तु आज भी समाज में कथनी और करनी में अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है, महादेवी कहती हैं। स्त्री को राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है, शासन-व्यवस्था में उनका कोई स्थान नहीं है। है भी तो सिर्फ शोभा के लिए या यह कहें स्थान मात्र देकर इति श्री की जाती है। महादेवी वर्मा कहती हैं—“परन्तु स्थान मिलने का अर्थ यह नहीं है कि उन्हें केवल पुरुष-परिषदों को अलंकृत करने के लिए रखा जाए। वास्तव में उनका पर्याप्त संख्या में रह कर अपनी अन्य बहिनों के हित-अनहित-विषयक अस्पष्ट विचारों को स्पष्ट करना और उन्हें क्रियात्मक रूप-रेखा देना ही समाज के लिए हितकर सिद्ध हो सकेगा।”⁷⁵

महादेवी वर्मा कहती हैं जब तक स्वयं स्त्री अपने तथा अपनी जाति के विषय में गंभीरता से चिंतन नहीं करेगी तब तक सुधार में क्षीणता ही रहेगी। उसे स्वयं जाग्रत होकर अपनी बहिनों को जाग्रत कर एक जुट संगठन बनाना होगा। महादेवी वर्मा कहती हैं हमारे समाज में सम्पन्न, शिक्षित नारी से लेकर अशिक्षित, अज्ञानी, श्रमजीवी स्त्रियों में अपने अधिकारों के प्रति अज्ञानता समान रूप से मिलती है। आधुनिक समाज में तीन श्रेणी की महिलाएँ हैं पहली वह जो सम्पन्न वर्ग में आती हैं। उनके पास सुख के सभी साधन व पर्याप्त समय है। दूसरा वर्ग मध्यम श्रेणी की महिलाओं का है जो शिक्षित है जिन्होंने समाज की विडंबना का समाधान न पाकर अपनी शिक्षा व जागृति को आजीविका का साधन बना दिया। इस श्रेणी की स्त्रियों के पास इतना अवकाश ही नहीं कि वह अपनी स्थिति पर विचार कर सकें। इन सभी स्त्रियों का जीवन पूर्वविधित है बचपन में खेल कूद, आदर्श पत्नी बनने के लिए स्वयं को गढ़ना अन्ततः विवाह के बाद मात्र कहने के लिए घर में उपेक्षा और अनादर का स्वयं को अभ्यस्त बनाते हुए मृत्यु प्राप्ति तक जीवित रहना इन स्त्रियों के लिए ही

शायद यह उक्ति बनी है पिता के घर से डोली उठे तथा पति गृह से अर्थी। अर्थात् विवाह के बाद मृत्यु की प्रतीक्षा करना। जीवन कहाँ है? नारी के पास। महादेवी के शब्दों में—“मध्यम गृहस्थ की गृहिणी को अपनी अनेक इच्छाएँ, अभिलाषा कुचल कर जीवित रहना पड़ता है और इसके साथ ही शारीरिक क्लेशों का अन्त न होने से उनका सम्पूर्ण जीवन अज्ञात पशु के जीवन की स्मृति दिलाता रहता है।”⁷⁶ तीसरी श्रेणी है श्रमजीवी स्त्रियों की, इनकी पारिवारिक स्थिति सम्पन्न और मध्यम श्रेणी की स्थिति से भिन्न है इन्हें अपने घर में न तो सम्मान प्राप्त होती है और न ही इनकी आवश्यकता अनुभव की जाती है। महादेवी इन स्त्रियों की स्थिति के विषय में कहती हैं—“उन्हें गृह का कार्य और सन्तान का पालन करके भी बाहर के कामों में पति का हाथ बटाना पड़ता है। सबेरे 6 बजे, गोद में छोटे बालक को तथा भोजन के लिए एक मोटी काली रोटी लेकर मजदूरी के लिए निकली हुई स्त्री जब 6 बजे सन्ध्या समय घर लौटती है तो संसार भर का आहत मातृत्व मानो उसके शुष्क ओठों से कराह उठता है। उसे श्रान्त, शिथिल शरीर से फिर घर का आवश्यक कार्य करते और उस पर कभी-कभी मद्यप पति के निष्ठुर प्रहारों को सहते देख का करुणा को भी करुणा आये बिना नहीं रहती।”⁷⁷ इन तीनों श्रेणी की महिलाओं की अपनी-अपनी भिन्न स्थिति व समस्याएँ हैं। अतः महादेवी वर्मा चाहती हैं स्थिति को जानकर ही समस्या का समाधान आवश्यक है। तीसरी श्रेणी की स्त्रियों की दुर्दशा तो प्रकट ही है इनके लिए तो ज्ञान के धन की ही मुख्य आवश्यकता है जिससे कि वह अपने हक और अधिकारों से परिचित हो सकें और अपने स्वत्वों की रक्षा स्वयं कर सकें तथा शोषण को पहचान कर उसका विरोध करने की हिम्मत कर सकें। दूसरी श्रेणी की महिलाएँ जिन्हें समाज मध्यम वर्ग की महिलाओं के नाम से जानता हैं तथा इसे एक अजीब दृष्टि से देखता है। इस वर्ग की महिलाओं के पास घर और बाहर दोनों

स्थानों पर महत्त्वपूर्ण कार्यों को करने के बाद समय ही नहीं मिल पाता है कि वह स्वयं की स्थिति पर विचार कर सकें इस श्रेणी की स्त्रियाँ घर के कामों में इस तरह पिस रही हैं कि उनका जीवन सरस न लग कर यंत्रवत प्रतीत होता है। अब बची समाज में पहली श्रेणी की स्त्रियाँ जिनके साथ पर्याप्त समय व सभी सम्पन्न साधन उपलब्ध हैं। महादेवी इस वर्ग की स्त्रियों से अपेक्षा करती हैं—“जब वे भारत की अन्धकार में भटकने वाली वाणीहीन असंख्य नारियों की प्रतिनिधि बन कर जागें और यहाँ की सम्भ्रान्त, साधारण तथा श्रमजीवी महिलाओं के अधिकारों, उन्नति के साधनों, अवनति के कारणों तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाले अन्य विषयों से परिचित हो सकें।”⁷⁸

सन्दर्भ-सूची

1. डॉ० कैलाश चंद्र भाटिया, विधा-विविधा, पृ० 47, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ 1987
2. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृ० 18, अनामिका पब्लिशर एण्ड लि०, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000
3. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 11-12, लोकभारती, इलाहाबाद 2001
4. डॉ० नामवर सिंह, छायावाद, भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पाँचवीं आवृत्ति: 2000
5. डॉ० बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ० 36, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति: 2000
6. डॉ० नामवर सिंह, छायावाद, पृ० 21, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पाँचवीं आवृत्ति: 2000
7. वही, पृ० 28
8. भारत यायावर, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० 12, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1995
9. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृ० 20, अनामिका पब्लिशर एण्ड लि०, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000
10. इन्द्रनाथ मदान, महादेवी: चिन्तन व कला, पृ० 15, राधाकृष्ण, दिल्ली 1965
11. डॉ० बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ० 361, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2000
12. लेखक प्रभाकर श्रोत्रिय, दैनिक जागरण, (दैनिक पत्र), अलीगढ़ संस्करण 19 दिसम्बर 2006
13. वही पृ० 10

14. वही, पृ० 10
15. इन्द्रनाथ मदान, महादेवी: चिन्तन व कला, पृ० 16, राधाकृष्ण, दिल्ली 1965
16. डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना, हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार, पृ० 285, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 1976
17. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 09, लोकभारती, इलाहाबाद 2001
18. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध पृ० 25, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962
19. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 36, लोकभारती, इलाहाबाद 2001
20. शचीरानी गुर्तू, महादेवी वर्मा: काव्य-कला और जीवन दर्शन, पृ० 132, आत्मारमा एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण: 1957
21. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 28-29, लोकभारती, इलाहाबाद 2001
22. वही, पृ० 09
23. लेखक प्रभाकर श्रोत्रिय, दैनिक जागरण (दैनिक पत्र) अलीगढ़ संस्करण 19 दिसम्बर 2006
24. मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पृ० 178, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2002
25. डॉ० बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ० 361, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति: 2000
26. मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पृ० 179, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2002
27. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 09, लोकभारती, इलाहाबाद 2001
28. वही, पृ० 09-10

29. वही, पृ० 22–23
30. वही, पृ० 38
31. वही, पृ० 76
32. वही पृ० 76
33. डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, पृ० 69, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1989
34. शचीरानी गुर्तू, महादेवी वर्मा: काव्य–कला और जीवन दर्शन, पृ० 112, आत्माराम एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली 1957
35. पद्मसिंह चौधरी, महादेवी साहित्य: एक दृष्टिकोण, पृ० 210, अपोलो प्रकाशन, जयपुर 1974
36. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 83 लोकभारती, इलाहाबाद 2001
37. वही, पृ० 14
38. वही, पृ० 38
39. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० 46, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962
40. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृ० 169–170, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962
41. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 48, लोकभारती, इलाहाबाद 2001
42. वही, पृ० 12
43. वही, पृ० 46
44. वही, पृ० 43
45. वही, पृ० 50

46. वही, पृ० 50—51
47. वही, पृ० 19
48. वही, पृ० 21
49. वही, पृ० 21
50. डॉ० लक्ष्मणदत्त गौतम, महादेवी वर्मा: कवि और गद्यकार, पृ० 13, काणांक प्रकाशन, दिल्ली 1972
51. वही, पृ० 99
52. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 36, लोकभारती, इलाहाबाद 2001
53. वही, पृ० 36
54. वही, पृ० 42
55. वही, पृ० 37
56. वही, पृ० 37
57. वही, पृ० 38—39
58. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य—विमर्श, पृ० 22, अनामिका पब्लिशर एण्ड लि०, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2000
59. सं० हरिभटनागर, साक्षात्कार (पत्रिका), जनवरी 2006 साहित्य अकादमी, म० प्र० संस्कृति परिषद, भोपाल।
60. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 147, लोकभारती, इलाहाबाद 2001
61. वही, पृ० 148
62. वही, पृ० 147—48
63. वही, पृ० 12
64. वही, पृ० 13

65. वही, पृ० 13
66. वही, पृ० 10
67. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृ० 140, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962
68. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 19, लोकभारती, इलाहाबाद 2001
69. वही, पृ० 24
70. वही, पृ० 24
71. वही, पृ० 24
72. वही, पृ० 22
73. वही, पृ० 23
74. स्वामी दयानन्द, उपदेश मंजरी, पृ० 176
75. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 23, लोकभारती, इलाहाबाद 2001
76. वही, पृ० 26
77. वही, पृ० 27
78. वही, पृ० 25

चतुर्थ अध्याय

महादेवी वर्मा के संस्मरणों और रेखाचित्रों में स्त्री की छवि

महादेवी वर्मा के संस्मरणों और रेखाचित्रों में स्त्री की छवि

संस्मरण और रेखाचित्र: साम्य और विभेद:

महादेवी वर्मा रहस्यवादी कवयित्री यथार्थवादी गद्यकार तथा समन्वयवादी आलोचक होने के साथ-साथ अद्वितीय रेखा-चित्रकार, संस्मरण-लेखिका, सामाजिक एवं ललित निबन्धकार, उच्चकोटि की चित्रकर्मी और परम प्रबुद्ध समाज तथा राष्ट्र-सेविका के रूप में विशिष्ट स्थान की अधिकारी हैं। महादेवी वर्मा छायावाद के प्रमुख चार आधार-स्तम्भ कवियों में तथा विशिष्ट गद्यकार के रूप में प्रमुख स्थान रखती हैं। महादेवी के गद्य के दो प्रमुख रूप मिलते हैं—एक विचारात्मक गद्य रूप तो दूसरा संस्मरणात्मक गद्य रूप।

महादेवी वर्मा के पहले गद्य रूप में उनके साहित्य-समीक्षा विषयक एवं नारी-समस्या सम्बन्धी निबन्ध आते हैं। महादेवी वर्मा के गद्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण रूप संस्मरण लेखिका का है। उनके प्रमुख संस्मरण ग्रन्थ हैं, 'अतीत के चलचित्र,' 'समृति की रेखाएं,' 'पथ के साथी' तथा 'क्षणदा' के दो प्रमुख यात्रा-संस्मरण-‘स्वर्ग का एक कोना’ तथा ‘सुई दो रानी’। महादेवी वर्मा की गद्य रचनाओं के विषय में पद्म सिंह चौधरी इस प्रकार कहते हैं—“जिस प्रकार काव्यकार महादेवी वर्मा के कवि का परिचय अधिकांशतः ‘यामा’ से प्राप्त हो जाता है। ठीक उसी प्रकार गद्यकार वर्मा को जानने और समझने के लिए उनके संस्मरण और रेखाचित्र पर्याप्त हैं।”¹

महादेवी वर्मा के गद्य-साहित्य को जानने के लिए आधुनिक युग में विकसित जीवनीपरक साहित्य की इन दो विधाओं संस्मरण और रेखाचित्र के विषय में जानना भी आवश्यक जान पड़ता है।

संस्मरण का स्वरूप:

‘संस्मरण’ शब्द का संबंध स्मृति से है। सम्यक् स्मृति की वह अमिट छाप जिसे शब्दों द्वारा साहित्यिक ढंग से अभिव्यक्त किया जाए ‘संस्मरण’ कहलाता है।

संस्मरण गद्य-साहित्य की उस आत्मनिष्ठ विधा को कहते हैं, जिसमें लेखक अपने जीवन की अनन्त स्मृतियों में से कुछ विशिष्ट अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अलंकृत करके लाक्षणिक शैली में आत्मीय राग एवं निजी विशिष्टताओं का सम्बल लेकर रोचक तथा आकर्षक रूप से चित्रित करता है।

संस्मरण का अर्थ:

जब लेखक अपने निकट सम्पर्क में आने वाले महान, विशिष्ट, प्रसिद्ध और प्रिय व्यक्तियों, घटनाओं या दृश्यों को अपने स्मृति पटल पर मूर्त करता है तथा इन्हें शब्दांकित करता है, तब वह रचना ‘संस्मरण’ कहलाती है। डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार “भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से रंगकर रोचक ढंग से यथार्थ व्यक्त कर देता है, तब उसे संस्मरण कह सकते हैं।”²

हिन्दी में संस्मरण लेखन बहुचर्चित एवं लोकप्रिय विधा रही है। यह एक वर्णनात्मक विधा है। संस्मरण में यादों में बसी अनुभूतियों की सहज ढंग से अभिव्यक्ति होती है। लेखक संपर्क में आये हुए व्यक्तियों, वस्तुओं और घटनाओं की यादों पर से समय का परदा हटाकर तादात्म्य स्थापित करते हुए उन्हें अभिव्यक्त करता है। इसमें सम्पूर्ण जीवन का चित्रण न करके कुछ घटनाओं का वर्णन होता है। वैयक्तिक अनुभूति संस्मरण का मेरुदण्ड है। व्यक्ति या घटना के कतिपय अंश ही

ऐसे होते हैं जो पर्याप्त समय बीत जाने पर भी लेखक के स्मृति-कोष में सुरक्षित रहते हैं और इन्हीं विशिष्ट अंशों से वह इतना प्रभावित भी होता है कि उनकी स्मृति उनके साथ ही नहीं चली जाती प्रत्युत उसके मस्तिष्क में अपनी एक अमिट छाप छोड़ जाती है। लेखक इन्हीं मार्मिक स्थलों के भावुकतापूर्ण वर्णन द्वारा ही अपने संस्मरणों को कलात्मक रूप दे पाता है। पाठक को इन संस्मरणों में एक साथ ही कविता, कहानी, नाटक सभी विधाओं का रस प्राप्त होता है। पाठक 'संस्मरण' में वर्णित पात्रों के व्यक्तित्व में अपने व्यक्तित्व को इस प्रकार प्रसार कर लेता है कि दोनों के बीच एक तादात्म्य भाव स्थापित हो जाता है। पात्र का सुख-दुख उसका अपना बन जाता है। लेखक उसकी व्यथा-कथा को अपनी ही व्यथा-कथा समझने लगता है। उनके लिए उसके हृदय में सहानुभूति का सागर उमड़ पड़ता है। यह कथात्मक साहित्य-विधा है। यह कथा काल्पनिक न होकर सत्य पर आधारित रहती है। कथा का ताना-बाना व्यक्ति-जीवन और घटनाओं से बुना जाता है और पाठक के साथ सहज तादात्म्य हो जाता है।

चित्रोपमता यद्यपि संस्मरण साहित्य की अनिवार्यता नहीं है, फिर भी हिन्दी संस्मरण साहित्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता अवश्य है, जिसके कारण संस्मरणों को रेखाचित्र कहा जाता रहा है। चित्रोपमता का अर्थ है आलम्बन का विवेचन इस ढंग से किया जाये कि उसका स्वरूप उभरकर सामने आये जैसे कैमरे द्वारा चित्र आता है। संस्मरण स्वतंत्र विधा के रूप में बीसवीं सदी के तीसरे दशक से प्रतिष्ठित होता है। इससे पूर्व भी प्राचीन पद्य साहित्य में किसी न किसी रूप में इसके दर्शन होते रहे हैं।

हिन्दी गद्य-साहित्य में संस्मरण लेखन की परंपरा भारतेन्दु-युग से ही मानी जाती है इस काल में संस्मरण का रूप पहले से और निखरा। इस काल

के संस्मरणों में विशिष्ट बात यह दिखायी देती है कि मानवतावादी स्वर ही सर्वत्र मुखरित होता हुआ दिखायी देता है। अंबिकादत्त व्यास द्वारा बीसवीं शताब्दी के प्रथम वर्ष में लिखा गया 'निज वृत्तांत' हिन्दी का सर्वांगपूर्ण आत्मकथापरक संस्मरण है। तत्कालीन पत्रिकाओं सरस्वती, हंस, चाँद, इंदु, विशाल भारत, वीणा इत्यादि से संस्मरण-लेखन को प्रोत्साहन मिला। बालमुकुन्द गुप्त ने स्वतंत्र रूप से प्रताप नारायण मिश्र पर संस्मरण लिखे। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा लिखे, 'बाबू अयोध्या प्रसाद के संस्मरण' 1905 के 'समालोचक' के अंकों में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए। उनके यह संस्मरण खड़ी-बोली हिन्दी गद्य में स्वतंत्र रूप से लिखे गये। बाबू श्यामसुन्दर दास का 'लाला भगवान दीन' विषयक संस्मरण एक महत्त्वपूर्ण कृति है। रामकृष्णदास का 'प्रसाधिका की प्राप्ति', सद्गुरुशरण अवस्थी का 'दरिद्र दर्पण,' विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक का 'मेरा वह बाल्यकाल' तथा रामदास गौड़ का 'पं० श्रीधर पाठक,' रामदेवी प्रसाद का 'पूर्ण' आदि इस काल के अत्यन्त रोचक संस्मरण हैं। हिन्दी में आदर्श संस्मरण छायावादोत्तर युग में लिखे गये। इस युग में संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की एक नयी विधा का प्रचलन हुआ, जिसके विकास में श्रीराम शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी तथा महादेवी वर्मा ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। महादेवी वर्मा का स्थान हिन्दी संस्मरणात्मक रेखाचित्र के विकास में सर्वोपरि है। डॉ० नगेन्द्र कहते हैं—“हिन्दी में संस्मरणात्मक रेखाचित्र साहित्य की श्रीवृद्धि में महादेवी ने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।”³

महादेवी के संस्मरणों की अनेक विशेषताएँ हैं। महादेवी ने सम्पर्क में आए सामान्य जनों को अपने संस्मरणों का विषय बनाया। साथ ही नारी समस्या एवं मानवीय गुणों को संस्मरणात्मक ढंग से चित्रित करना उनकी निजी कला है। महादेवी वर्मा के बाद साहित्य की इस विधा के विकास में रामवृक्ष बेनीपुरी का नाम

उल्लेखनीय है। उनका 'लाल-तारा' संस्मरण उनके विद्रोही स्वर को उद्भाषित करता है। रेखाचित्र तथा संस्मरण के तत्त्वगत अन्तर को ध्यान में रखते हुए इन दोनों विधाओं के विकास में प्रकाशचन्द्र गुप्त ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। राजा राधिकारमण तथा जगदीशचन्द्र का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। शान्तिप्रिय द्विवेदी का नाम हिन्दी संस्मरण लेखकों में श्रद्धा के साथ लिया जाता है। 'पथ चिह्न' में शान्तिप्रिय द्विवेदी ने माता-पिता तथा बहन की असीम स्नेहमयी मूर्ति को भावाकुल होकर संस्मरण का रूप दिया।

आज़ादी के बाद हिन्दी संस्मरण साहित्य का क्रमिक विकास हुआ। हिन्दी संस्मरण को सुदृढ़ आधार पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रदान किया। सन् 1954 में जैनेन्द्र के 'ये और वे' नामक संस्मरण प्रकाशित हुआ। प्रेमचंद तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि के संस्मरण बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किये गये। यशपाल के संस्मरण 'सिंहावलोकन' में प्रकाशित हुए। इन संस्मरणों में क्रान्ति की क्षीण धारा है। उपेन्द्रनाथ अशक के संस्मरण 'रेखाएँ और चित्र' में संकलित है। 'मंटो मेरा दुश्मन' के प्रकाशन से हिन्दी संस्मरण लेखन को एक नयी दिशा मिली। इसमें लेखक ने अपने बीते दिनों की मर्मस्पर्शी हृदयद्राविणी करुण कहानी सुनायी है।

आधुनिक संस्मरण लेखकों में तनसुख राम गुप्त का नाम भी उल्लेखनीय है। 'विस्मृति के भय से,' 'जीवन के कुछ क्षणों में' तथा 'संघर्ष के पथ पर' इनके संस्मरण हैं। सत्य एवं यथार्थ के प्रति ईमानदारी लेखक की प्रत्येक रचना में झलकती है, जिससे ये संस्मरण आधुनिक समाज का सही अंकन प्रस्तुत करने में सफल है। इसी समय मुंशी प्रेमचंद संबंधी संस्मरण भी बड़ी संख्या में लिखे गये। इनमें शिवरानी देवी कृत 'प्रेमचंद घर में' (1956) एक विशिष्ट संस्मरण है। जैनेन्द्र द्वारा लिखा गया 'प्रेमचंद, मैंने क्या जाना और क्या पाया' और 'ये और वो' अपना विशेष स्थान रखते

है। उपन्यासकार और निबन्धकार महान मानवतावादी लेखक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को भी संस्मरण लेखक के रूप में भुलाया नहीं जा सकता। उनकी 'एक कुत्ता और एक मैना' रचना संस्मरणात्मक दृष्टि से लिखी गयी है। वही 'मृत्युंजय रविन्द्रनाथ' की प्रस्तुति रवि-बाबू के दिव्य व्यक्तित्व का प्रभावपरक संस्मरण ही अंकित करती है।

हिन्दी संस्मरण के विकास में रायकृष्ण दास 'त्रिपथगा' (1956) भी एक उल्लेखनीय रचना है। इसमें 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' शीर्षक से संकलित संस्मरण में उनके जीवन की अनुपम झाँकी का चित्रांकन है। सन् 1958 में कन्हैयालाल मिश्र-प्रभाकर का नाम उभर कर सामने आता है 'भूले हुए चेहरे,' 'माटी हो गयी सोना,' 'क्षण बोले कण मुस्काये' इनके संस्मरणात्मक संग्रह हैं। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' (1958) में प्रकाशित विजेन्द्र स्नातक का 'साहित्य मनीषी' और 'बाबू गुलाबराय' भी उत्कृष्ट संस्मरण हैं। सन् 1959 में सेठ गोविन्द दास द्वारा रचित 'स्मृति कण' में गाँधी, नेहरू जैसे प्रख्यात व्यक्तियों के साथ-साथ मख्दूम बख्श जैसे सामान्य पात्रों तक के संस्मरण हैं।

अज्ञेय का संस्मरण लेखन 'आत्मनेपद' (1960) में प्रकाशित हुआ और 'लिखि कागद कोरे' (1972) में। इन दोनों संस्मरणों से अज्ञेय को जाना जा सकता है। सन् 1960 में विनोद शंकर व्यास की रचना 'प्रसाद और उनका समकालीन' प्रकाशित हुई। इसी वर्ष बृजमोहन व्यास कृत 'बालकृष्ण भट्ट' संस्मरणों में जीवन प्रकाशित हुआ।

साहित्यिक संस्मरणों के साथ-साथ राजनैतिक संस्मरण भी लिखे गये। महात्मा गाँधी, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, पं० नेहरू आदि नेताओं के अनेक संस्मरण आज़ादी से पहले ही प्रकाशित होने शुरू हो गये। काका कालेलकर की 'बापू की

झाँकियाँ' सन् 1942 में प्रकाशित हो चुकी थी। आज़ादी के बाद तो अनेक संस्मरण ग्रंथ सामने आये। सन् 1950 में राजेन्द्र बाबू ने 'बापू के कदमों में' लिखा। मनमोहन गुप्त ने क्रान्तिकारियों पर संस्मरण लिखे। माखनलाल चतुर्वेदी ने 1962 में 'समय के पाँव' लिखा। रामधारी सिंह 'दिनकर' की रचना 'लोकदेव नेहरू' उल्लेखनीय है।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के संस्मरण 'जिन्हें नहीं भूलूँगी' 1964 में प्रकाशित हुये। सन् 1965 में 'संस्मरण और श्रद्धांजलि' छपा, जिसे दिनकर ने लिखा। डॉ० नगेन्द्र की 'चेतना के बिम्ब' रचना 1967 में प्रकाशित हुई।

इस शताब्दी के आठवें और नवें दशक में भी अनेक संस्मरण ग्रंथ प्रकाशित हुए। बद्री नारायण चतुर्वेदी का नाम संस्मरण लेखन में विशेष महत्त्व रखता है। उनका 1977 में प्रकाशित 'पावन स्मरण' बहुत ही सरस, सहज और हृदयग्राही संस्मरण है। अमृतलाल नागर के 1973 में प्रकाशित 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' और 'जिनके साथ जिया' उल्लेखनीय संस्मरण है। अमृता प्रीतम के संस्मरण 'लाल धागे का रिश्ता' भी अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के संस्मरण सन् 1979 में 'सुगन्धित संस्मरण' शीर्षक से प्रकाशित हुए। इसी वर्ष 1979 में भगवतीचरण वर्मा की रचना 'अतीत के गर्भ से' प्रकाशित हुयी। डॉ० शंकरदयाल सिंह का नाम भी संस्मरण लेखकों में उल्लेखनीय है। उनकी रचना 'यादों की पगडंडियाँ' सन् 1982 में प्रकाशित हुई। सन् 1983 में विष्णु प्रभाकर की उल्लेखनीय रचना 'मेरे अग्रज और मेरे गीत' लिखी गयी। सन् 1986 में अनेक संस्मरण ग्रंथ प्रकाशित हुए जिनमें महादेवी के 'मेरे प्रिय संस्मरण' एस० एम० जोशी का 'यादों की जुगाली' उल्लेखनीय है। शंकरदयाल सिंह के 'पहली बारिश की छिटकती बूंदें,' 'अपने आप से कुछ बातें,' 'मैंने उन्हें जाना' आदि उल्लेखनीय हैं।

इसी वर्ष रामनारायण उपाध्याय का 'दूसरा सूरज' प्रकाशित हुआ। सन्

1989 में आचार्य क्षेमेन्द्र सुमन कृत 'जाने अनजाने' प्रकाशित हुई। सन् 1990 में शोभाकान्त के लिखे हुए संस्मरण 'नागार्जुन मेरे बाबूजी' प्रकाशित हुआ।

रेखाचित्र:

रेखाचित्र शब्द चित्रकला के स्केच शब्द का पर्याय है। रेखाचित्र गद्यकाव्य की समीपवर्ती एक विधा है। इसमें संस्मरणों की भांति वर्णन का प्राधान्य होता है। रेखाचित्र में रेखाओं के सहारे व्यक्ति या वस्तु का भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाता है। रेखाचित्र को व्यक्ति-चित्र, शब्द-चित्र, चरित्र-चित्र, शब्दांकन आदि भी कहा जाता है। रेखाचित्र में लेखक शब्दों द्वारा वही कार्य करता है जो चित्रकला में चित्रकार रेखाओं द्वारा करता है। माजदा असद कहती हैं—“रेखाचित्र में कुछ चुने हुए शब्दों द्वारा विषय-वस्तु, व्यक्ति, स्थान, घटना एवं दृश्य को साकार रूप में इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि पाठक के सामने पूरी तरह चित्रित हो सके।”⁴ हिन्दी साहित्य कोष के अनुसार—“रेखाचित्र किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना या भाव का कम से कम शब्दों में मर्मस्पर्शी, भावपूर्ण एवं सजीव अंकन है।”⁵

रेखाचित्र में लेखक व्यक्ति के स्वरूप की बाहरी रेखाओं को उभार कर उसकी चेष्टाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। इसी विषय में माजदा असद इस प्रकार कहती हैं—“रेखाचित्र में किसी व्यक्ति के आन्तरिक स्वभाव का उद्घाटन करने वाले बाह्य गुणों को विभिन्न घटनाओं के द्वारा प्रभावपूर्ण शैली में अभिव्यक्त किया जाता है।”⁶

रेखाचित्र में संस्मरण की भांति यह आवश्यक नहीं है कि किसी वस्तु-घटना या व्यक्ति से साक्ष्य हुआ हो। रेखाचित्र में शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। रेखाचित्र एक यथार्थवादी रचना है। रेखाचित्र साहित्य के विकास में 'हंस' (पत्रिका) का रेखाचित्र विशेषांक (1939) सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। स्वतंत्र रूप से रेखाचित्र का

विकास द्विवेदी युग में हुआ। रेखाचित्र का श्री गणेश 'श्रीराम शर्मा' के द्वारा माना जाता है। इनके प्रमुख रेखाचित्र हैं—'बोलती प्रतिमा'। जिसमें बोलती प्रतिमा, प्राणों का सौदा, जंगल के जीव, वे जीते कैसे हैं आदि हैं। अन्य रेखाचित्रकार हैं बनारसी दास चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, महादेवी वर्मा, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवपूजन सहाय, जैनेन्द्र, सत्यवती मलिक, दिनकर, उपेन्द्रनाथ अशक, शान्तिप्रिय द्विवेदी, राधिकारमण प्रसाद, डॉ० रामविलास शर्मा, विष्णु प्रभाकर, जगदीश चन्द्र माथुर आदि। प्रवृत्तियों के आधार पर रेखाचित्र मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, घटना प्रधान, वातावरण प्रधान, व्यंग्य प्रधान, व्यक्ति प्रधान, भावात्मक प्रधान होते हैं।

हिन्दी की सभी साहित्यिक विधाओं में संस्मरण और रेखाचित्र ही ऐसी विधा है जो परस्पर सर्वाधिक निकट है। दोनों में ही अतीत की घटनाओं, स्मृतियों, भावानुभूतियों का ऐसा चित्रण रहता है कि उसमें वर्णित वस्तु, घटना एवं स्मृति के यथार्थ चित्र सामने उभर कर आयें और भावनामूलक तथा कल्पनामूलक रोचकता, यथार्थ के साथ मिली-जुली रहे। दोनों में ही लेखक की व्यक्तिगत रुचियों की महत्ता होती है। रेखाचित्र में संस्मरणों की भांति वर्णन का प्राधान्य होता है। ये वर्णनात्मक होते हैं, इनमें व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का प्रकाशन होता है, कहीं-कहीं व्यंग्य का पुट मिलता है, परन्तु व्यंग्य सत्य के अधिक निकट होना चाहिए। संस्मरण और रेखाचित्र में अतीत का वर्णन रहता है। लेखक अतीत को वर्तमान के साथ इस प्रकार आस्यूत कर देता है कि वह कल्पना का समावेश होने पर भी सहज ग्राह्य हो, साथ ही उसमें लेखक की व्यक्तिगत रुचियाँ-अरुचियाँ भी व्यक्त होती हैं। संस्मरणकार रेखाचित्र की धुँधली रेखाओं को उजाले की परिधि में और भी स्पष्ट कर देता है। अनुभूति संस्मरण और रेखाचित्र दोनों विधाओं का एक अनिवार्य तत्त्व है। ये दोनों ही विधाएं लेखक वैयक्तिक स्वानुभूति के चित्रपट पर ही अंकित होती हैं। महादेवी वर्मा

के कथनानुसार—“दोनों ही विधाओं में किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना आदि का मानसिक प्रत्यक्षीकरण है जिसके लिए वे कुछ विशेष रेखाओं का अंकन करती है। किन्तु संस्मरण अतीत का ही हो सकता है और रेखाचित्र वर्तमान से भी सम्बद्ध रह सकता है।”

रेखाचित्र और संस्मरण में निकटतम सम्बन्ध होने के साथ-साथ पर्याप्त अन्तर भी है। संस्मरण अधिकतर प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा प्रसिद्ध व्यक्तियों के सम्बन्ध में लिखे जाते हैं, पर रेखाचित्र सामान्य व्यक्ति पर भी लिखा जा सकता है। रेखाचित्र चरित्र उभारने का कार्य करता है, अतः उसे चारित्रिक चित्र भी माना जा सकता है, जबकि संस्मरण व्यक्ति-विशेष के चरित्र का दर्पण बनकर सामने आता है। जबकि रेखाचित्र उसका वर्णन करता है। संस्मरण परिस्थिति विशेष का, क्षण-विशेष का एक सजीव बिम्ब उभारकर पाठक के मन में उस बिम्ब को साकार कर देता है। ‘काव्य के रूप’ में गुलाबराय संस्मरण और रेखाचित्र का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए कहते हैं—“संस्मरण भी रेखाचित्र की भांति व्यक्ति से सम्बन्धित होते हैं। जहाँ रेखाचित्र वर्णनात्मक अधिक होते हैं वहाँ संस्मरण विवरणात्मक अधिक होते हैं। संस्मरण जीवनी साहित्य के अन्तर्गत आते हैं। वे प्रायः घटनात्मक होते हैं किन्तु वे घटनाएं सत्य होती हैं और साथ ही चरित्र का परिचायक भी। उनमें थोड़ा चटपटेपन का भी आकर्षण रहता है। संस्मरण चरित्र के किसी एक पहलू की झाँकी देते हैं किन्तु रेखाचित्र व्यक्ति के व्यापक व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं। उनमें कुछ-कुछ व्यंग्य-चित्रकार की सी प्रवृत्ति रहती है। उसमें व्यक्ति की प्रवृत्तिगत विशेषताएं कुछ बढ़ा-चढ़ा कर कही जाती हैं जिससे वे सहज में आकर्षण का विषय बन सकें। रेखाचित्र जितना सत्य के निकट हो उतना ही अच्छा है। उसमें थोड़ी अतिरंजना विनोद की सामग्री अवश्य उपस्थित कर देती है किन्तु विनोद चुटीला नहीं

होना चाहिए। रेखाचित्र में भी सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् का आदर्श पालन करना पड़ता है।⁸

इस प्रकार हम देखते हैं कि रेखाचित्र और संस्मरण दो स्वतंत्र विधाएं होते हुए भी बहुत अधिक समानता रखती हैं। दोनों में भिन्नता बहुत ही सूक्ष्म है। वैयक्तिकता, एकात्मकता, अनुभूति की गम्भीरता आदि विशेषताएं संस्मरण और रेखाचित्र दोनों ही विधाओं में समान रूप से मिलती हैं। ये विशेषताएं दोनों ही विधाओं के अनिवार्य तत्त्व हैं। भिन्नता भी इन्हीं विशेषताओं की न्यूनाधिक मात्रा के समावेश से उत्पन्न होती है। चित्रोपमता ऐसी ही विशेषता है जो रेखाचित्र में अधिक और संस्मरणों में कम मात्रा में उपलब्ध रहती है। इसी विषय में महादेवी वर्मा इस प्रकार कहती हैं—“किन्तु संस्मरण और रेखाचित्रों में विभाजक रेखा इतनी सूक्ष्म रहती है कि एक का दूसरे में समाहित हो जाना स्वाभाविक हो जाता है।”⁹

ये दोनों वास्तव में एकदम निकट की यानी मिली-जुली विधाएं हैं। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में—“इनकी जाति एक है अथवा कहा जा सकता है ‘संस्मरण’ रेखाचित्र का एक प्रकार है, जिसमें किसी वास्तविक व्यक्ति का चित्र होता है। वस्तुतः शब्द-चित्र या रेखाचित्र किसी के संस्मरण का कलात्मक संगठन है। संस्मरण किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के होते हैं और प्रायः मृत्यु के बाद लिखे जाते हैं, पर रेखाचित्र में किसी भी व्यक्ति की प्रभावकारी विशेषताओं का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत किया जाता है।”¹⁰

दोनों विधाओं में इतनी अधिक समानता के कारण एक को प्रायः दूसरा समझने की भूल हो जाती है। इसी कारण लेखक भी इनमें व्यतिरेक अधिक नहीं रख पाता है। महादेवी वर्मा की रचनाओं में भी इसी स्थिति को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद मिलता है कि उनकी ये रचनाएं रेखाचित्र हैं या संस्मरण अथवा कहानी हैं।

प्रसिद्ध आलोचक श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी महादेवी की रचनाओं के विषय में इस प्रकार कहते हैं—“उनके रेखाचित्र संस्मरण में कहानी और कहानी में संस्मरण हैं।”¹¹

संस्मरणों और रेखाचित्रों में महादेवी की स्त्री चिंता :

महादेवी वर्मा की रचनाओं को रेखाचित्र मानते हुए सूर्यप्रसाद दीक्षित कहते हैं—“महादेवी जी की इन कृतियों में यद्यपि कहानीपन भी है, संस्मरण भी, रिपोर्ताज जैसे विवरण भी है, गद्य काव्य जैसी क्रमहीन काव्य—कल्पना भी है, पर अपनी चित्रात्मकता के कारण इन्हें आनुपातिक दृष्टि से स्केच (रेखाचित्र) ही स्वीकार किया जा सकता है।”¹² केवल रेखाचित्र और संस्मरण विधाओं तक ही महादेवी वर्मा की रचनाएं विवादित नहीं रही हैं। कुछ आलोचक उनकी रचनाओं में पर्याप्त कहानीपन के कारण इन्हें कहानी की भी संज्ञा देते हैं। इस विषय में सूर्यप्रसाद दीक्षित कहते हैं—“श्री रामकृष्ण प्रभूति विद्वान इन्हें संस्मरण मानते हुए भी कहानी की परिधि में स्वीकर करने को तैयार हैं।”¹³ इसी प्रकार डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित ‘हिन्दी—साहित्य का इतिहास’ में लिखा है—“इन्हें निबंध, संस्मरण और कहानी में से कोई एक संज्ञा भी दी जा सकती है, किंतु अधिकांश विद्वान उन्हें संस्मरणात्मक रेखाचित्र ही मानते हैं।”¹⁴

इसी विषय में ‘साहित्य—सन्देश’ में प्रकाशित एक निबंध में इस प्रकार कहा गया है—“पात्रों का कौशल पूर्ण रेखांकन जहाँ इन कृतियों को रेखाचित्र की कोटि में पहुँचा देता है वहाँ इनमें उपलब्ध लेखिका के निजी राग—विराग और क्षोभ—क्रोध की भावना उन्हें संस्मरण के निकट ले आती है। अतः ये शुद्ध रूप रेखाचित्र या संस्मरण न होकर संस्मरणात्मक रेखाचित्र बन गए हैं।”¹⁵ महादेवी वर्मा ने स्वयं अपनी कृतियों को संस्मरण या स्मृति चित्र माना है। ‘अतीत के चलचित्र’ में वे कहती हैं—“इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है।”¹⁶

संस्मरण जीवनीपरक साहित्य का एक ऐसा खण्डरूप है, जो घटनाओं की विकृति और कथात्मक अंकुशित प्रवाह से कहानी का रूप लेता है, विचार प्रधान या चिंतन-मनन की निबंधता अथवा स्थिति, स्वभाव, रूप, विषय-प्रतिपादन से निबन्ध कहा जा सकता है। संस्मरण में वर्णित व्यक्ति के रूप-आकृति-प्रकृति के चित्रण से रेखाचित्र का रूप आ जाता है और कई बार तो ऐसा होता है कथा, निबंध, रेखाचित्र, शब्द-चित्र आदि मिश्रित शैलियाँ अपनाता है।

महादेवी जी के संस्मरणों में प्रायः संस्मरणों की सभी शैलियों की विविधता पायी जाती है। उनके संस्मरण संस्मरणात्मक निबन्ध की कोटि में, संस्मरणात्मक कहानियों तथा रेखाचित्र में भी आते हैं। इसी विषय में चरनसखी शर्मा इस प्रकार कहती हैं—“महादेवी के अधिकांश संस्मरणों में कहानी, निबन्ध, रेखाचित्र, शब्द-चित्र, गद्य-काव्य आदि कई गद्य रूप-विधाओं की मिश्रित शैली पायी जाती है। महादेवी के संस्मरणों की रूप-विधाओं और निबन्ध शैलियों का विश्लेषण अपने में एक बड़ा रोचक विषय है।”¹⁷ डॉ० राजनाथ शर्मा के अनुसार—“इनमें संस्मरण के साथ-साथ रेखाचित्र की विशेषताओं का समावेश होने के कारण उनके प्रभाव और मार्मिकता में आशातीत वृद्धि हुई है।”¹⁸

साहित्य जीवन की चेतना है। चूँकि मानव एक सामाजिक प्राणी है। अतः साहित्य का सृजन जन-जीवन के धरातल पर ही होता है। परसाई जी कहते हैं—“साहित्य के मूल्य जीवन-मूल्यों से बनते हैं।”¹⁹ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी मनुष्य का अध्ययन ही साहित्य का लक्ष्य मानते हुए कहते हैं—“वास्तव में हमारे अध्ययन की सामग्री प्रत्यक्ष मनुष्य है। आपने इतिहास में इसी धारावाहिक जययात्रा की कहानी पढ़ी है, साहित्य में इसी के आवेगों, उद्वेगों, उल्लासों का स्पन्दन देखा है।”²⁰ इसी प्रकार प्रेमचंद साहित्य को जीवन की सच्चाईयों का दर्पण मानते हुए

कहते हैं—“मेरे विचार से सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबन्ध के रूप में हो, चाहे कहानियों के रूप में या काव्य के। उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।”²¹ प्रेमचन्द्र आगे लिखते हैं— “हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो— जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।”²²

हिन्दी की सभी साहित्यिक विधाओं में संस्मरण और रेखाचित्र ही ऐसी विधा है जो मनुष्य के सर्वाधिक निकट है। संस्मरण और रेखाचित्र ऐसी कलात्मक विधाएं हैं जिन्हें साहित्य की सर्वाधिक ललित एवं मानवीय विधा स्वीकारा जा सकता है।

महादेवी ने अपने संस्मरणात्मक रेखाचित्र में वर्ण्य—विषय के रूप में समाज के उपेक्षित एवं शोषित वर्ग को ग्रहण कर मानवतावादी स्वर को अभिव्यक्ति दी है। इस विषय में चरनसखी शर्मा इस प्रकार कहती हैं—“उनके संस्मरणों में व्याप्त मानवता, करुणा, संवेदना एवं व्यंग्य—विनोद की विशिष्टताओं ने इस गद्य—रूप को सम्पन्नता प्रदान कर संस्मरण की विधा के लिए साहित्य में एक सुरक्षित स्थान बना लिया।”²³ महादेवी वर्मा का सम्पूर्ण साहित्य करुणा, दुख एवं पीड़ा की कहानी है। मानवतावाद उनके जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य है। काव्य में वह प्रत्यक्ष रूप से अपने दुख एवं पीड़ा को अभिव्यक्त करती हैं वहीं गद्य में अपने दुख—पीड़ा को ‘स्व’ से ‘पर’ में अभिव्यक्त करती हैं। अमृतराय कहते हैं—“कलाकार अपनी सृष्टि के आग्रह से जीवन के तथ्य को अपनी कला का सत्य बनाने की क्रिया में, उस हृदय जगत

को एक नये रूप में संयोजित करके, संघटित या विघटित करके प्रस्तुत करता है।''²⁴

इस विषय में महादेवी वर्मा स्पष्ट रूप से अपने विचार व्यक्त करते हुए सरल शब्दों में इस प्रकार कहती हैं—“साहित्य जीवन का अलंकार नहीं है वह स्वयं जीवन है। साहित्यकार सृजन के क्षणों में उस जीवन में जीता है और पाठक पढ़ने के क्षणों में।''²⁵ महादेवी के संस्मरणों में संस्मरण्य का यथार्थ एवं सजीव चरित्र—चित्रण हुआ और साथ ही इनमें महादेवी का जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का स्वयं पर प्रभाव दिखायी देता है। हर्षनन्दिनी भाटिया कहती हैं—“महादेवी ने अतीत के अंतस् में प्रवेश करके बिखरे हुए पात्रों में से क़ूड़ सामग्री संचित कर उसे सरसता के साथ सहज रूप में प्रस्तुत कर दिया है।''²⁶

महादेवी का पात्रों से निकटतम सम्बन्ध है। महादेवी ने अपने संस्मरणों में अपनी स्वानुभूत जीवन—यात्रा के अनेक कटु—मधुर अनुभवों को अपने संस्मरणों का विषय बनाया। ‘अतीत के चलचित्र’ की भूमिका में महादेवी कहती हैं—“इन संस्मरणों के आधार प्रदर्शनी की वस्तु न होकर मेरी अक्षय ममता के पात्र रहे हैं।.....इन स्मृति—चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं, उनके बाहर तो वे अनन्त अंधकार के अंश हैं। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं, वह बाहर रूपान्तरित हो जाएगा।''²⁷

महादेवी के संस्मरणों में सर्वत्र मानवीय करुणा ही परिव्यात है। इस विषय में डॉ० गुलाबराय का कहना यह है—“उनके हृदय की परमदुःखकातरता और सहानुभूति, उनके प्राणों की पीड़ा और क्रन्दन, वास्तविकता के प्रति यथार्थ मार्मिक दृष्टि और समाज के प्रति तीव्र व्यंग्यात्मक आक्रोश उनकी इन्हीं रचनाओं में मिलेगा।''²⁸

महादेवी मानवीयता को सर्वोपरि मानने की पक्षधर हैं। फलतः शोषित एवं समाज के प्रचलित मानदण्डों के कारण बने दलितों और उपेक्षितों को अतिरिक्त करुणा प्राप्त करने का अधिकारी मानती हैं। इसीलिए शोषितों के स्वच्छन्द व्यवहार को अमानवीय मानकर उनके प्रति आक्रोश व्यक्त करती हैं। वह स्वयं करुण है और इसीलिए दूसरों से भी उसी कोटि की करुणा की आशा करती हैं। महादेवी वर्मा का मानवीय चिन्तन अत्यन्त गंभीर और करुण है। उनके संस्मरणों—रेखाचित्रों में कोरी भावुकता नहीं है। अपितु ठोस धरातल एवं पार्थिव आकार भी है। इस विषय में डॉ० ब्रजमोहन गुप्त कहते हैं—“लेखिका का निरीक्षण इतना सूक्ष्म और संवेदना का रंग इतना गहरा और उज्ज्वल है कि स्मृति में वैसी रेखाएं मथी थी, कागज पर उतरकर उनसे करुणा और व्यंग्य—हास्य के छाया—प्रकाश में हँसते—खेलते, उच्चतम मानवीय तत्त्वों से अनुप्राणित स्पन्दनशील चित्र बन गए हैं।”²⁹ महादेवी की संस्मरण—कथाएँ करुणा के रस—सी भीगी हुई हैं। उन्होंने लोक—संवेदना से उत्प्रेरित होकर अपनी रचनाओं को उन चरित नायकों को समर्पित किया है जो इन धूमिल चित्रों के चिर—परिचित आधार हैं—ये चरित नायक इतने सरल हैं जो अपने उपकारों से अनजान, दूसरों की कृतज्ञता से अपरिचित सुन्दर ममता, शिव सरलता और सत्य मनुष्यता के प्रतीक हैं। महादेवी की मानवीय करुणा इन पंक्तियों में स्पष्ट होती है—“रंगो पर उसके प्राण जाते ही थे, उस पर मैंने गुड़ियों और खिलौनों से दूर अकेले बैठे—बैठे अपने नन्हें हाथों से उसके लिए उतनी लम्बी—चौड़ी ओढ़नी काढ़ी थी। आश्चर्य नहीं कि वह उस क्षण भर के लिए अपनी उस स्थिति को भूल गयी, जिसमें ऐसे रंगीन वस्त्र वर्जित थे.... उन बचपन भरी आँखों में विषाद का गाढ़ा रंग चढ़ चुका था और ओठ, जिन पर किसी दिन हँसी छिपी सी जान पड़ती थी, ऐसे काँपते थे, मानों भीतर का क्रन्दन रोकने के प्रयास से थक गये हों। उस एक घटना

से बालिका प्रौढ़ हो गयी थी और युवती वृद्धा।''³⁰

सामान्यता संस्मरण प्रसिद्ध—प्रतिष्ठित व्यक्ति से सम्बन्धित होते हैं जैसे राजनीतिक नेताओं से सम्बद्ध, धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में ख्याति प्राप्त समाज—सुधारकों, साहित्यकारों से सम्बन्धित आदि। जनवादी प्रवृत्तियों के प्रसार से आज का साहित्यकार सामान्य व्यक्तियों की ओर आकृष्ट होकर उन्हें अपने साहित्य के वर्ण्य—विषय के रूप में चुनता है। संस्मरणकार ने भी मानवीय गुणों से सम्पन्न सामान्य व्यक्तियों पर संस्मरण लिखे। इनमें महादेवी वर्मा, तनसुखराम आदि इसी प्रकार के संस्मरणकार हैं। महादेवी वर्मा के 'स्मृति की रेखाएँ,' 'अतीत के चलचित्र,' तनसुखराम के 'जीवन के कुछ क्षणों में,' 'विस्मृति के भय से' तथा 'संघर्ष के पथ पर' इसी प्रकार के संस्मरण हैं। वैसे तो सभी विषयों पर संस्मरण पर्याप्त मात्रा में लिखे गये हैं। परन्तु सामान्य व्यक्तियों को कम ही लेखकों ने अपने वर्ण्य—विषय के लिए चुना है। महादेवी के प्रत्येक संस्मरण में मानवता का ही रेखांकन दिखाई देता है। अपने संस्मरणों में महादेवी वेदना के भावलोक से निकल कर सहानुभूति के वास्तविक धरातल पर आयी हैं। महादेवी ने अपने इन संस्मरणों में दुखी एवं सन्तप्त जीवन का अत्यन्त निकट से अध्ययन किया है जिससे उनके ये संस्मरण अत्यन्त हृदय—स्पर्शी होने के साथ ही सहानुभूति तथा अन्याय के प्रति घृणा का भाव जगाने में समर्थ हो सके हैं। महादेवी के संस्मरणों में विशेष रूप से उद्घाटित समाज चित्रण तथा शोषण के विषय में डॉ० नगेन्द्र कहते हैं—''महादेवी वर्मा ने समाज के दीन—हीन तथा शोषित व्यक्तियों को कथ्य के रूप में चुनकर भारतीय समाज का जीवन चित्र प्रस्तुत किया है।''³¹

महादेवी वर्मा ने उपेक्षित समाज के चित्रों को चुना जिससे भारत के दरिद्र निम्न वर्ग की ज्वलन्त समस्याएं उभर कर सामने आ गयी हैं। इस संदर्भ में

शचीरानी गुटू कहती हैं, सामाजिक जीवन की गहरी पतों को छूने वाली इतनी तीव्र दृष्टि, नारी-जीवन के वैषम्य और शोषण को तीखेपन से आँकने वाली इतनी जागरूक प्रतिभा और निम्न वर्ग के निरीह, साधनाहीन प्रणियों का ऐसा हार्दिक और अनूठा चित्रण अन्यत्र कम ही मिलेगा।³²

महादेवी वर्मा के संस्मरण समाज-सापेक्ष हैं उनके रेखाचित्रों व संस्मरणों में समाज के प्रति एक जागरूक दृष्टिकोण स्पष्ट दिखायी देता है। वह घृणा से अधिक ममता और सहानुभूति में विश्वास करती है, इसलिए उनके विद्रोह की आग पर करुणा का, सहानुभूति का निर्मल आवरण है। महादेवी का करुणापूर्ण हृदय अपनी समस्त नारी-सुलभ दया, करुणा, ममता, वात्सल्य एवं प्रेम के रूप में अपने संस्मरणात्मक गद्य में मुखरित हुआ है। कुमुद शर्मा कहती हैं, “एक स्वतंत्र चेतना सम्पन्न स्त्री की स्त्रीविरोधी मानसिकता के विरोध में उपजने वाली चेतना का प्रमुख उत्स था। इसने महिलाओं को अधीन रखने वाली जटिल संरचना की पहचान की।”³³ इसी प्रकार सूर्यप्रसाद दीक्षित कहते हैं, “उनके रेखाचित्र केवल अभिधेय ही नहीं हैं उनमें विवेच्य वस्तुओं के बहुरंगी चित्र हैं, जो विषम-स्थिति की तीखी अनुभूति उत्पन्न करते हैं साथ ही अपनी अभिव्यक्ति-कौशल और भाव-भंगिमा द्वारा नूतन शिल्प की सृष्टि करते हैं।”³⁴

लेकिन फिर भी कहीं-कहीं वह अपने विद्रोह को दबा नहीं सकी विशेष रूप से नारी के प्रति होने वाले अत्याचारों के प्रति वह अधिक व्यथित हो उठी है। जैसा की ‘अतीत के चलचित्र’ में वह कहती हैं—“यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि बर्बरो! तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब लिया पर हम अपना मातृत्व, किसी प्रकार न देंगी, तो इनकी समस्याएं पूर्णतया सुलझ जाएं।”³⁵ महादेवी वर्मा की ‘अतीत के चलचित्र’ संस्मरण पुस्तक भारतीय समाज के विशेष रूप

से निम्न वर्ग की भारतीय नारी की विषय परिस्थिति को चित्रित करती है। भारतीय नारी के सुख-दुख, दीनता, विषमता साथ ही समाज में विधवा, बाल-विवाह, परिव्यक्त नारी, अनाथ, विमाता के अत्याचारों से दुःखी बालकों की कथा को बड़े ही मार्मिकता पूर्ण अभिव्यक्त करती हैं। महादेवी वर्मा अपने संस्मरणों में समाज की व्यवस्था तथा परम्परागत संस्कारों पर करारी चोट करते हुए भारतीय समाज में नारी की उस स्थिति को दिखाती हैं जिसने उसे अपनी प्राचीन गौरव-गाथा का प्रदर्शन-मात्र बनाकर रख छोड़ा है। भारतीय समाज ने उसे मूक प्राणी बनाकर उसे दासता के अलावा कुछ नहीं दिया। उसे पति के गर्व प्रदर्शन की वस्तु के रूप में ही देखा जाता है। उसमें कोमलता करुणा। आज्ञाकारिता, पवित्रता जैसे गुणों को संसार कल्याण करने के लिए नहीं अपितु पुरुष की दासी बनने के लिए खोजा जाता है।

भारतीय समाज में नारी सामाजिक शृंखलाओं में आबद्ध है। महादेवी वर्मा के संस्मरण पारिवारिक अत्याचारों से पीड़ित और उपेक्षापूर्ण वातावरण में मूक रहकर साथ ही घुट-घुटकर धुला देने वाली नारी के चित्र है। वह एक निर्बल प्राणी है। उसकी स्वयं कोई सत्ता नहीं है। भारतीय समाज में नारी का सर्वाधिक उपेक्षित, पीड़ित और पराश्रित रूप विधवा का है। महादेवी ने स्त्री के इस रूप का अपने संस्मरणों में सबसे अधिक चित्रण किया है। पतिहीन होने का परिणाम समाज में उसका सभी अधिकारों से वंचित हो जाना है। उस पर भी बाल-विधवा का होना। 'अतीत के चलचित्र' का 'भाभी' संस्मरण एक ऐसी ही अभागिनी मारवाड़ी बाल-विधवा की विवशता का चित्रण है—'उस समाधि-जैसे घर में लोहे के प्राचीर से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका बिना किसी संगी-साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद के, मानो निरन्तर वृद्धा होने की साधना में लीन थी।'³⁶ इस संस्मरण के माध्यम से महादेवी भारतीय समाज में विधवा स्त्री की उस विषम परिस्थितियों को दिखाती हैं

जिसमें दूसरे समय का भोजन उसके चरित्र पर संदेह करने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है। “वृद्ध एक ही समय भोजन करते थे और वह तो विधवा ठहरी। दूसरे समय भोजन करना ही यह प्रमाणित कर देने के लिए पर्याप्त था कि उसका मन विधवा के संयम—प्रधान जीवन से ऊबकर किसी विपरीत दिशा में जा रहा है।”³⁷

इस संस्मरण में महादेवी 19 वर्ष की युवती की उस दयनीय दशा की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं जिस अवस्था में युवती सुनहरे सपने देखती है नये सपनों को मन में जगाती है, रोमांचित होती है। वही यह बाल—विधवा अपने सपनों, इच्छाओं, आशाओं को मारना ही जीवन की साधना मानकर भारतीय नारी के धर्म को निभा रही है। जब बालिका महादेवी उसके लिए ओढ़नी तैयार कर उसे चकित करने के उद्देश्य से दबे पाँव जाकर चुपके से सिर पर ओढ़नी खोलती है “तो वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। रंगों पर उसके प्राण जाते ही थे,...आश्चर्य नहीं कि वह क्षण भर के लिए उस स्थिति को भूल गयी, जिसमें ऐसे रंगीन वस्त्र वर्जित थे।”³⁸

पर्दे के कठोर अनुशासन में बंद यह अनाथिनी विधवा नारी अनेक प्रकार के अपवादों चंचलता, निर्लज्जता झूठे आरोपों से अपमानित और लांछित की जाती है। विधवा का संयम—प्रधान जीवन, निराहार, मिताहार, कठोर यातना पूर्ण परिश्रम, विषादपूर्ण मनःस्थिति का अभ्यास करते हुए भी वह कठोर क्रूर यातनाओं को भोगती हुई उस स्थिति में पहुँच गयी है। “उन बचपन भरी आँखों में विषाद का गाढ़ा रंग चढ़ चुका था और ओंठ, जिन पर किसी दिन हँसी छिपी—सी जान पड़ती थी, ऐसे काँपते थे, मानों भीतर का क्रन्दन रोकने के प्रयास से थक गये हों। उस एक घटना से बालिका प्रौढ़ हो गयी थी और युवती वृद्धा।”³⁹

महादेवी स्पष्ट रूप से भारतीय समाज में विधवा नारी की उस स्थिति की ओर ध्यान खींचती हैं जिसमें एक विधवा नारी को अनेक प्रकार के कष्ट देकर

जबरन उपेक्षित जीवन जीने पर मजबूर किया जाता है। महादेवी वर्मा अपने निबंध 'जीने की कला' में इस विषय में कहती हैं—“स्त्री किस प्रकार अपने हृदय को चूर—चूर कर पत्थर की देव—प्रतिमा बन सकती है, यह देखना हो तो हिंदू गृहस्थ की दुधमुँही बालिका से शापमयी युवती में परिवर्तित होती हुई विधवा को देखना चाहिए जो किसी अज्ञात व्यक्ति के लिए अपने हृदय की, हृदय के समान ही प्रिय इच्छाएँ कुचल—कुचल कर निर्मूल कर देती है, सतीत्व और संयम के नाम पर अपने शरीर और मन को अमानुषिक यंत्रणाओं के सहने का अभ्यस्त बना लेती है और इस पर भी दूसरों के अमंगल के भय से आँखों में दो बूंद जल भी इच्छानुसार नहीं आने दे सकती।”⁴⁰

इसी प्रकार 'बिट्टो' संस्मरण के माध्यम से महादेवी यह बताती है जैसे एक विधवा को भारतीय समाज उसके विधवा होने के लिए दोषी ठहराता है तथा उसे किस प्रकार पति अभाव को सबसे बड़े अभाव का अनुभव कराते हुए व्यंग्य किये जाते हैं। फिर सिलसिला शुरू होता है उसे रोज नये—नये मानसिक और शारीरिक कष्ट देने का “घर के नौकर—चाकर कम किये गये, पहले संकेत में, फिर स्पष्ट रूप से और अन्त में आज्ञा के स्वर में उससे सब काम संभालने के लिए कहा जाने लगा।”⁴¹ भाभियों के तानों और पड़ोसियों के आरोपों से वह मर्माहत हो जाती है। प्रताड़ित करने के लिए उससे अधिक से अधिक काम कराया जाता है उस पर भी उसे भाभियों द्वारा भाई की कृतज्ञता मानने को कहा जाता है—“उसके भाई सतयुग के हैं, नहीं तो कौन एक निठल्ले व्यक्ति को घर बैठे—बैठे खिला सकता है।”⁴²

यह किस प्रकार की कृतज्ञता है “वह समझ ही न पाती कि जिस घर में उसका जन्म और पालन हुआ है, उसी में यदि रात—दिन काम करके अपने ही सहोदरों से उसे भोजन वस्त्र मिल जाता है, तो उसे कृतज्ञता के समुद्र में क्यों डूब

जाना चाहिए। अकेले बड़े भाई ही नौकर थे, शेष दोनों उसी ज़मीन-जायदाद की देख-रेख में लगे रहते थे जो उसके भी पिता की थी।⁴³

यहाँ महादेवी भारतीय समाज में नारी की विवशता का प्रमुख कारण उसकी आर्थिक पराधीनता मानती हैं। साथ ही महादेवी वर्मा समाज द्वारा स्त्री के सम्बन्ध में अर्थ के विषम विभाजन को चित्रित करती हैं जिसमें साधारण सामान्य श्रमजीवी वर्ग की स्त्री से लेकर सम्पन्न वर्ग की स्त्री की समान दयनीय स्थिति को चित्रित करती हैं। महादेवी कहती हैं स्त्री को केवल उत्तराधिकार से ही समाज ने वंचित नहीं रखा है, वरन् अर्थ के सम्बन्ध में सभी क्षेत्रों में विवशता के बन्धन में बाँध रखा है। पुरुष का अन्याय यह है कि उसने कहीं न्याय का सहारा लेकर तो कहीं अपने स्वामित्व का लाभ उठाकर उसे इतना परावलम्बी बना दिया है कि वह पुरुष की सहायता के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा सकती। मनोबल तो उसका बचपन से ही गिराना शुरू कर दिया जाता है। सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं दिया जाता है। एक विधवा को समाज में परिवार की प्रतिष्ठा के साथ सम्पत्ति में अधिकार से वंचित रखा है। परिणामस्वरूप अर्थ के आभाव में वह सम्मान से जीवन-यापन करने से वंचित रहती है। वह आश्रित जीवन व्यतीत करती है। वह या तो ससुराल वालों पर आश्रित रहती या फिर मायके वालों पर दोनों ही पक्ष उसे एक बोझ से अधिक नहीं समझते हैं। उसका भरण-पोषण करना उनकी विवशता होती है इस विवशता से छुटकारा पाने के लिए फिर उसके पुनर्विवाह की योजना बनायी जाती है साथ ही उपकार सुख बटोरा जाता है। महादेवी का कहना यह है कि विधवा-विवाह को भारतीय समाज अभी भी आत्मसात् नहीं कर सका है उसे अपनी स्वार्थ सुविधा तथा छुटकारे के विकल्प के रूप में ही स्वीकार किया गया है “निरुपाय होकर बड़ी भाभी ने स्नेहस्निग्ध कण्ठ से अपने पति महोदय से कहा—अब तो

विधवा-विवाह होने लगे हैं। बेचारी बिट्टो का विवाह कर दिया जाए तो कैसा हो।”⁴⁴

उससे विवाह के विषय में राय लेने के स्थान पर पहले से ही उसे भाभी द्वारा लज्जाशील घोषित कर दिया जाता है और साथ ही विवाह के न होने पर स्वयं ही बिट्टो का घुट-घुट कर मर जाना निश्चित कर दिया जाता है। भारतीय समाज में स्त्री का विवाह बिना स्त्री की राय के ही सम्पन्न होने की प्रथा को दर्शाता है। बिट्टो के समान अनेक भारतीय नारी बिना इच्छा के विवाह-बंधन में बलात् बाँध दी जाती है। आर्थिक तथा सामाजिक विवशता के कारण जीवन-भर इस बिना मन के बाँधे गये इस विवाह-सम्बन्ध को अपने कंधों पर ढोती रहती है। महादेवी कहना यह चाहती हैं कि भारतीय पुरुष प्रधान समाज ने कभी स्त्री मन को जानना उचित नहीं समझा।

भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री के जीवन में सामाजिक अधिकारों तथा आर्थिक स्वतंत्रता का अभाव रहा है जिसके कारण उसकी सामाजिक स्थिति सोचनीय ही रही है। उसके जीवन का लक्ष्य निर्धारण कुछ इस प्रकार है, पहला तो पत्नीत्व और दूसरा और आखिरी मातृत्व का निर्वाह समझा जाता है। अतः ऐसी दशा में उसके जीवन का एक मात्र उद्देश्य और आजीविका का साधन निश्चित रूप से विवाह प्रथा को माना जाता है। भारतीय समाज में स्त्री के लिए विवाह अनिवार्य कार्य के रूप मान्य है। यह सम्बन्ध परस्पर प्रेम पर आधारित न होकर विवशता का रूप ग्रहण किये हुए है। महादेवी ‘बिट्टो’ संस्मरण के माध्यम से इसी बात को इस प्रकार कहती हैं—“बिट्टो ने बहुत करुण-क्रन्दन के साथ विवाह का विरोध किया, पर परोपकारियों का मार्ग न समुद्र रोक सकता है और न पर्वत।”⁴⁵

ऐसा नहीं है स्त्री द्वारा विरोध नहीं किया जाता वह चाहे तो बहुत कुछ

कर सकती है। महादेवी स्त्री के जन्मजात स्वाभाविक गुणों को जानती हैं। वह स्वयं एक नारी हैं और एक नारी ही नारी स्वभाव को भली प्रकार जान सकती हैं—“स्त्री जब किसी साधना को अपना स्वभाव, किसी सत्य को अपनी आत्मा बना लेती है तब पुरुष उसके लिए न महत्त्व का विषय रह जाता है, न भय का कारण, इस सत्य को मान लेना पुरुष के लिए कभी सम्भव नहीं हो सका। अपनी पराजय को बलात् जय का नाम देने के लिए सम्भवतः वह अनेक विषम परिस्थितियों और संकीर्ण सामाजिक, आर्थिक बन्धनों से उसे बाँधने का प्रयास करता रहता है।”⁴⁶

स्त्री को निर्बल मान लेना ही पुरुष की सबसे बड़ी भूल है। स्त्री विवेकहीन है यह अपवाद का विषय है क्योंकि भले ही कम संख्या में विवेकशील स्त्री भारतीय समाज में है पर हैं अवश्य ही। महादेवी का संस्मरण ‘घीसा’ इस बात को स्पष्ट करता है “परन्तु उसने केवल कोरा उत्तर ही नहीं दिया, प्रत्युत् उसे नमक—मिर्च लगाकर तीत भी कर दिया। कहा—‘हम सिंध के मेहरारू होइके का सियारन के जाब।’”⁴⁷

इस पर पुरुष प्रधान समाज भला कहाँ चुप रहने वाला है उसे कलंकित करना अनिवार्य रूप से आवश्यक बन जाता है “घीसा बाप के मरने के बाद हुआ है। हुआ तो वास्तव में छः महीने बाद, परन्तु उस समय के सम्बन्ध में क्या कहा जाए, जिसका कभी एक क्षण वर्ष—सा बीतता है और कभी एक वर्ष एक क्षण हो जाता है। इसी से यदि वह छः मास का समय रबर की तरह खिंचकर एक साल की अवधि तक पहुँच गया, तो इसमें गाँव वालों का क्या दोष।”⁴⁸

इसी प्रकार महादेवी ‘स्मृति की रेखाएँ’ के ‘भक्तन’ संस्मरण में भक्तन के माध्यम से विवेकशील नारी को चित्रित करती है जो स्पष्ट शब्दों में दूसरा विवाह न करने की घोषणा करते हुए कहती है, “हम कुकुरी—बिलारी न होयँ, हमार मन

पुसाई तौ हम दूसरा के जाब नाहिं त तुम्हार पचै के छाती पै होरहा भूजब औ राज करब, समुझे रहौ।”⁴⁹

यही नहीं महादेवी के संस्मरणों में चित्रित नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी है भक्तिन संस्मरण में भक्तिन अपने हक के लिए अपने ससुराल पक्ष से अपने अधिकार को लेने में तनिक भी संकोच नहीं करती है—“उसने ससुर अजिया ससुर और जाने कै पीढ़ियों के ससुरगणों की उपार्जित जगह—जमीन में से सुई की नोंक के बराबर भी देने की उदारता नहीं दिखायी। इसके अतिरिक्त गुरु से कान फुँकवा, कण्ठी बाँध और पति के नाम पर घी से चिकने केशों को समर्पित कर अपने कभी न टलने की घोषणा कर दी।”⁵⁰

महादेवी कहना यह चाहती हैं स्त्री को दूसरा विवाह अपनी इच्छा के अनुसार ही करना चाहिए किसी संस्कारवश या दबाव में आकर नहीं, क्योंकि विवाह बंधन मन का बंधन है किसी विवशता का नहीं। इसी प्रकार महादेवी भारतीय समाज में विधवा की विषम परिस्थिति के विषय में भी यह मत रखती हैं कि विधवा को यह अधिकार होना चाहिए कि वह स्वेच्छा से इस स्थिति को स्वीकार करे किसी परम्परा के निर्वाह के लिए नहीं। उसे मन से उस अभाव को स्वीकार करना चाहिए की मात्र रंगीन वस्त्र, आभूषण, भोजन, जीवन से विरक्त होकर नहीं। उसे अपने तथा बच्चों के भविष्य के विषय में उचित निर्णय करना चाहिए जो उसके तथा बच्चों के लिए सही हो। जैसा कि ‘स्मृति की रेखाएँ’ की भक्तिन करती है “भविष्य में भी सम्पत्ति सुरक्षित रखने के लिए उसने छोटी लड़कियों के हाथ पीले कर उन्हें ससुराल पहुँचाया और पति के चुने हुए बड़े दामाद को घरजमाई बनाकर रखा।”⁵¹

महादेवी कहती हैं माँ को अपनी बेटी को ऐसे संस्कार देने चाहिए जो उसे एक विवेकशील नारी बनने में मदद करें न कि उसे रूढ़िगत परम्पराओं को

निभाने का पाठ पढ़ाना चाहिए, क्योंकि संस्कारों का बालक पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

महादेवी वर्मा अपने संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में 'सबिया' तथा 'बिट्टो' के रूप में समाज द्वारा प्रवंचित नारी के सरल हृदय की वेदना, उपेक्षित नारीत्व को दर्शाती हुई सामाजिक विद्रूपता को व्यक्त करती है।

महादेवी वर्मा की हृदय संवेदना सामाजिक दृष्टि से तुच्छ और कुरूप स्त्री को भी महत्त्वपूर्ण आकार देती है। वे कुरूपता का सौन्दर्यशास्त्र ही जैसे रच देती हैं। बदसूरती को भी रचनात्मक वर्णन के द्वारा वे सुन्दर और मार्मिक बना देती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सौन्दर्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—“सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है”⁵² मुक्तिबोध ने सौन्दर्य को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—“किसी वस्तु या दृश्य या भाव से मनुष्य जब एकाकार हो जाता है तब सौन्दर्य—बोध होता है। सब्जेक्ट और ऑब्जेक्ट, वस्तु और उसका दर्शन, इन दो पृथक् तत्त्वों का भेद मिटकर जब सब्जेक्ट ऑब्जेक्ट से तादात्म्य प्राप्त कर लेता है तब सौन्दर्य भावना उद्बुद्ध होती है।”⁵³ आचार्य शुक्ल और मुक्तिबोध की तरह महादेवी वर्मा का भी सौन्दर्य जितना बाह्य का है उतना ही आंतरिकता का। कुल मिलाकर यह मानवीय सौन्दर्य है। बाहर से कोई कितना ही कुरूप क्यों न हो, अपनी आंतरिक उदार—उदात्त भावनाओं और आचरण के कारण वह सुन्दर हो जाता है। इस बात को महादेवी वर्मा ने अपने जीवन—व्यवहार और लेखन में अच्छी तरह उतारा है। लछमा की कुरूपता को महादेवी वर्मा इस प्रकार चित्रित करती हैं—“धूप से झुलसा हुआ मुख ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी ने कच्चे सेब को आग की आँच पर पका लिया हो। सूखी—सूखी पलकों में तरल—तरल आँखें ऐसी लगती हैं, मानो नीचे आसुँओं के अथाह जल में तैर रही हों और ऊपर हँसी की धूप से सूख गयी हो।

शीत सहते-सहते ओठों पर फैंली नीलिमा सम दाँतों की सफेदी से और भी स्पष्ट हो जाती है। रात-दिन कठिन पत्थरों पर दौड़ते-दौड़ते पैरों में और घास काटते-काटते और लकड़ी तोड़ते-तोड़ते हाथों में जो कठिनता आ गई है, उसे मिट्टी और गोबर की आद्रता ही कुछ कोमल कर देती है।”⁵⁴

यही कारण है कि सबिया, भाभी, भक्तिन, लछमा जैसे चरित्रों की बाहरी कुरूपता के फूटते सौंदर्य की पहचान महादेवी वर्मा ही कर सकती थीं। ऐसा नहीं है कि महादेवी वर्मा केवल कर्मशील स्त्री का ही चित्रण करती हैं, वे उन पुरुषों को भी अपने लेखन का विषय बनाती हैं जो कर्मशील है और समाज की दृष्टि में कुरूप। उन्होंने रामा का चित्र इस प्रकार उतारा है—“साँप के पेट जैसी सफेद हथेली और पेड़ की टेढ़ी-मेढ़ी गाँठदार टहनियों जैसी उगँलियाँ.....अनगढ़ मोटी नाक, साँस के प्रवाह से फूले हुए से नथुने, मुक्त हँसी से भरकर फूले हुए से होठ तथा काले पत्थर की प्याली में दही की याद दिलाने वाली सघन और सफेद दँत पंक्ति”⁵⁵

महादेवी वर्मा के संस्मरण और रेखाचित्र किसी क्षेत्र विशेष तक ही सीमित नहीं हैं। उन्होंने अपने समय के सभी विषय जैसे धर्म, संस्कृति, राष्ट्रीयता, भाषा और विशेष रूप से स्त्रियों की समस्याओं को चित्रित किया है। उनका गद्य स्त्री-जीवन की आन्तरिक पीड़ा का गद्य है। महादेवी वर्मा के सामने जीवन और जगत की कठोर वास्तविकताएँ ही सत्य का प्रतीक रूप रही हैं। यही कारण है कि महादेवी वर्मा का व्यक्तित्व उनके पात्रों के रूप में हमारे सामने आता है। ये पात्र न पौराणिक हैं न ऐतिहासिक और न ही समाज के प्रतिष्ठित उच्च वर्ग से संबद्ध ही हैं। वे जनजीवन के ऐसे कुरूप चिह्न हैं, जो प्रारंभ से ही समाज की उपेक्षा के शिकार रहे हैं। महादेवी वर्मा ने बिट्टो और बिंदो जैसी असहाय विधवाओं तथा रधिया कुम्हारिन और लछमा जैसी असहाय स्त्रियों का चित्र खींचा है।

महादेवी वर्मा के लेखन में संघर्षशील नारी की छवि देखना हो तो लछमा और रधिया के जीवन में झाँकना आवश्यक हो जाता है। लछमा के पिता की आँखें खराब हैं और माँ का हाथ टूटा हुआ है भतीजी-भतीजे को पालने का भार भी लछमा पर ही है, क्योंकि उनकी माता परलोकवासिनी हो गयी है और पिता विरक्त हो चुका है। इन सब लोगों की सेवा का भार अकेली लछमा पर ही है। महादेवी वर्मा ने लिखा है—“इस अभागी स्त्री की छाया में मानो दुख स्थायी रूप से बस गया है। उसके लौटते ही भौजाई ने एक बालिका और एक मास-भर के शिशु पुत्र को उसकी गोद में रखकर चिर काल के लिए विदा ली। टूटे शरीर और फूटे भाग्य के साथ लछमा को जो पूर्ण और स्वस्थ हृदय मिला है, उसी को लेकर उसने यह मधुर कटु कर्तव्य-भार सँभाला।”⁵⁶ लछमा का विवाह जिस परिवार में हुआ था वहाँ वैसे तो सब कुछ था लेकिन उसके पति के मस्तिष्क का विकास नहीं हुआ था। पति के सही न होने से ससुराल वाले लछमा पर सम्पत्ति के अधिकार के कारण अत्याचार करते और मारते थे। एक बार तो उसे इतना पीटा गया कि मरा समझकर उसे एक खाई में फेक दिया था। वहाँ से किसी तरह बचकर अपने घर आयी तो इस अभागी स्त्री पर बहुत से व्यक्तियों का भार आ गया।

लछमा अपने परिवार का पालन पूरी निष्ठा से कर रही थी। वह बाहर से तो मैली-कुचैली रहती थी, पर हृदय से वह बिल्कुल साफ़ थी। इसलिए वह दुर्गा की मूर्ति के सामने अंगारे रखकर प्रार्थना करती है कि जो पुरुष उसे बुरी आँख से देखे तो उसकी आँखें जलकर क्षार हो जावें। ससुराल वालों को लछमा के जिन्दा होने की खबर मिली तो उसके अबोध पति के साथ उसको लेने आये। अपने ससुराल वालों के साथ न जाने पर आस-पास के लोगों में असन्तोष की लहर-फैली गयी। इसकी प्रतिक्रिया महादेवी वर्मा इस प्रकार लिखती हैं—“समाज के मनोविज्ञान का

जैसा परिचय समतल में मिलता है, वैसा ही पर्वत की विषम-भूमि में। एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष-समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाये बिना नहीं रहती।⁵⁷ इतना सब झेलकर भी वह अपने पति की सेवा करने को तैयार है। लेकिन ससुराल न जाकर उसे अपने यहाँ रखना चाहती है। यहाँ अन्याय के प्रति स्त्री का लछमा के रूप में विद्रोह दिखाई देता है।

महादेवी वर्मा ने 'बदलू' नाम से एक रेखाचित्र लिखा है। रधिया बदलू की पत्नी है। बदलू एक ऐसा कुम्हार है जो एक ओर मिट्टी के कच्चे-पक्के बर्तनों का ढेर लगाता रहता है तो दूसरी ओर मैले-कुचैले नंगे-दुबले बच्चों की संख्या बढ़ाता रहता है। महादेवी वर्मा ने लिखा है—“मैंने उसे सदा एक ओर कच्चे, पक्के, टूटे, पूरे बर्तनों के ढेर से और दूसरी ओर मौले-कुचैले, नंगे, दुबले बच्चों की भीड़ से घिरा हुआ ही देखा। जैसे मिट्टी के बर्तन कुछ सुखाने, कुछ पकाने और कुछ उठाने-रखने में टूटते रहते थे, उसी प्रकार बच्चे भी कुछ जन्म लेते ही, कुछ घुटनों के बल चलते हुए और कुछ टेढ़े-मेढ़े पैरों पर डगमगाकर माता-पिता के काम में सहायता देते हुए चल बसते थे।”⁵⁸ रधिया प्रसव के दिनों में दूध और घी न खाकर बाजरे की रोटी खाती है। बच्चा होने पर दाई का प्रबन्ध इसलिए नहीं किया जाता क्योंकि वह रूपया मांगती है। ऐसी हालत में लेखिका के पौष्टिक पदार्थों की चर्चा करने पर रधिया यह कहकर बात समाप्त कर देना चाहती है कि घी खाने से उसके पेट में शूल उठता है। अर्थात्, बदलू जिस वस्तु का प्रबन्ध नहीं कर सकता वह वस्तु रधिया के लिए हानिकारक हो जाती है। महादेवी कहती हैं—“रधिया के किसी बच्चे के जन्म के समय कोई कोलाहल नहीं होता। छोटे लक्खी का जिस रात को जन्म

हुआ, उसकी सन्ध्या तक मैंने रधिया को बड़ा घड़ा भरकर लाते देखा। घड़ा रखकर उसने मेरे लिए वही चिर-परिचित साढ़े तीन पायों वाली मचिया निकाल दी। उस पर बहुत सतर्कता से अपना सन्तुलन करती हुई मैं जब बच्चों से इधर-उधर की बातें करने लगी, तब रधिया ने अपने धारहीन हँसिये को चबूतरे के नीचे-पड़े पत्थर के टुकड़े पर घिस-घिसकर धोना आरम्भ किया।⁵⁹ बदलू की आर्थिक स्थिति ऐसी है कि वह अपने जन्मजात व्यवसाय से दो वक्त के भोजन की भी व्यवस्था नहीं कर सकता। अपना घर चलाने के लिए रधिया आस-पास के खेतों में काम करने जाती है। खेतों में काम करने के बाद शाम को हारी-थकी घर लौटती है तो बच्चों को पुरानी मैली-धोती के बिछौने पर एक पंक्ति बनाकर सुला देती है। यदि इस प्रक्रिया में कोई उठ बैठता है तो उसे रोटी का टुकड़ा भेंट कर दिया जाता है और जो सोता रहता है वह सोता ही रहता है।

ये सभी पात्र महादेवी वर्मा के स्नेहांचल के पात्र हैं। महादेवी वर्मा में भावनाओं की पकड़ इतनी मजबूत है कि वह जो भी लिखती हैं वह हृदय पर सीधे प्रभाव डालता है। महादेवी वर्मा ने लिखा है—“स्त्री जब किसी साधना को अपना स्वभाव और किसी सत्य को अपनी आत्मा बना लेती है तब पुरुष उसके लिए न महत्त्व का विषय रह जाता है, न भय का कारण, इस सत्य को मान लेना पुरुष के लिए कभी सम्भव नहीं हो सका। अपनी पराजय को बलात् जय का नाम देने के लिए सम्भवतः वह अनेक विषम परिस्थितियों और संकीर्ण सामाजिक, धार्मिक बन्धनों में उसे बाँधने का प्रयास करता रहता है। साधारण रूप से वैभव के साधन नहीं, मुट्ठी भर अन्न भी स्त्री के सम्पूर्ण जीवन से भारी ठहरता है। फिर भी स्त्री को हारा हुआ मेरा मन कैसे स्वीकार करे, जब तक उसके परिस्थितियों से चूर-चूर हृदय में भी आलोक की लौ जल रही है।”⁶⁰

महादेवी वर्मा की गद्य रचनाओं में स्त्री के लिए एक जागरूक दृष्टिकोण मिलता है। महादेवी वर्मा से पहले अधिकतर बड़े लोगों के रेखाचित्र और संस्मरण लिखे गये थे। महादेवी वर्मा ने जीवन में आने वाले उन उपेक्षित चरित्रों को अपनाया है, जिनमें भारतीय समाज की ज्वलंत समस्याएँ सामने आती हैं। महादेवी वर्मा ने सामाजिक-व्यवस्था और परंपरागत संस्कारों पर इतना दारुण अघात किया है कि पाठक वर्ग तिलमिला उठता है। स्त्री के शोषण को तीखेपन से आँकने वाली जागरूक प्रतिभा महादेवी वर्मा में थी। स्त्री के प्रति होने वाले अत्याचार से वे व्याकुल हो उठती थी। यही कारण है कि महादेवी वर्मा के स्त्री पात्र समाज के सामने एक चुनौतीपूर्ण व्यक्तित्व लेकर खड़े हैं। महादेवी वर्मा के गद्य-साहित्य को गहराई से पढ़ते हुए यह अहसास होता है जैसे हम भारतीय समाज की यात्रा कर रहे हो। महादेवी वर्मा के सभी पात्र चाहे वे स्त्री हों या पुरुष भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। महादेवी वर्मा ने अपने निबन्धों में स्त्री सम्बन्धी जो प्रश्न उठाये हैं उनको सकार रूप संस्मरण और रेखाचित्रों में दिया है। इसलिए महादेवी वर्मा के निबन्धों की कसौटी उनके संस्मरण और रेखाचित्र हैं।

महादेवी वर्मा स्त्री की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता जैसे प्रश्नों को बार-बार उठाती हैं। वे स्त्री स्वातंत्र्य को भारतीय परिवेश में रखकर देखती हैं और उसके हर पक्ष पर विचार करती हैं। 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' तो 'शृंखला की कड़ियाँ' के उदाहरण की जान पड़ते हैं। निबन्धों में जिन सिद्धान्तों को महादेवी ने गढ़ा है उसे व्यवहारिकता में अपने संस्मरणों में चित्रित किया है। इन रेखाचित्रों में पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था के पुरुषोन्मुखी चरित्र के उद्घाटन के साथ-साथ स्त्रियों की सहनशीलता, विडम्बना और विद्रोही रूप मिलता है। बिबिया का विद्रोह, विधवा भाभी पर छाया सास-ससुर के आतंक की छाया, न मरने

के लिए जीवन संघर्ष करती सबिया और ससुराल वाले के अत्याचार को सहते-सहते निडर हुई लछमा भारतीय स्त्री की सामाजिक स्थिति को चित्रित करती हैं। बिबिया पर हुए अत्याचार का वर्णन महादेवी वर्मा इस प्रकार करती हैं—“बिबिया के शरीर पर घूसों के भारीपन के स्मारक के गुम्मड़ उभर आये थे, लकड़ी के आयातों की संख्या बताने वाली नीली रेखाएँ खिंच गयी थीं और लातों की सीमा नापने वाली पीड़ा जोड़ों में फैल रही थी। उस पर द्वार का बन्द हो जाना उसके लिए क्षमा की परिधि से निर्वासित हो जाना था। वह अन्धकार में अदृष्ट की रेखा जैसी पगडण्डी पर गिरती पड़ती रोती कराहती अपने नैहर की ओर चल पड़ी। इनकू को पति का कर्तव्य सिखाने के लिए कभी एक पंचदेवता भी आविर्भूत नहीं हुए पर बिबिया को कर्तव्यच्युत कोने का दण्ड देने के लिए पंचायत बैठी।”⁶¹

भारतीय समाज में विधवाओं की स्थिति प्रारंभ से ही दयनीय रही है। विधवा होने पर कोई भी स्त्री न तो परिवार के विकास में कोई भूमिका निभा सकती है और न ही समाज के। यह अजीब विडंबना है कि वे स्त्रियाँ जो एक समय उस परिवार की जिंदगी की मुख्यधारा में होती हैं, पति के निधन के बाद उन्हें हर मामले से अलग कर दिया जाता है। दूसरी ओर उनके मौलिक और दैनिक जीवन की आवश्यकता पर भी पाबंदी लगा दी जाती है। विधवा बिट्टो का चित्र महादेवी वर्मा इस प्रकार करती हैं—“विवाह के साल ही पुत्र की मृत्यु हो जाने के कारण ससुराल वाले वधू का नाम लेना भी अशुभ मानने लगे और दुःखी माता-पिता ने भी नवनीत की पुतली के समान सँभाल कर पाली हुई कन्या को उस ज्वाला में झोंकना उचित न समझा।”⁶² लेकिन माता-पिता की एक-एक करके मृत्यु होने पर अपने ही घर में उसकी क्या स्थिति हो जाती है। बिबिया की भाभियाँ जो खुद स्त्री होते हुए भी पति की मृत्यु का दोषी उसी को ठहराती हैं। उसे अपने ही शारीरिक और मानसिक

यातनाएँ दी जाती हैं। महादेवी वर्मा लिखती हैं—“घर के नौकर—चाकर कम किये गये, पहले संकेत में, फिर स्पष्ट रूप से और अन्त में आज्ञा के स्वर में उससे सब काम सँभालने के लिए कहा जाने लगा। अभ्यास से उत्पन्न भूलों के लिए भाभियों के द्वारा कुछ विशेष पूजा भी मिलने लगी। उस पर किसी दिन उसका मन हाथों पर लिए रहने वाली भाभियाँ कहती थीं कि उसके भाई सतयुग के हैं, नहीं तो कौन एक निठल्ले व्यक्ति को घर बैठे—बैठे खिला सकता है। यह स्वर तो उसके लिए एकदम नया था। वह समझ ही न पाती कि जिस घर में उसका जन्म और पालन हुआ है, उसी में यदि रात—दिन काम करके अपने ही सहोदरों से उसे भोजन वस्त्र मिल जाता है, तो उसे कृतज्ञता के समुद्र में क्यों डूब जाना चाहिए।”⁶³

विधवा के प्रति उपेक्षा का व्यवहार परिवार और समाज दोनों एक जैसा ही करते हैं जिसके कारण वह अपने जीवन में कदम—कदम पर अपमान और तिरस्कार सहने को अभिशप्त हो जाती हैं। ‘अतीत के चलचित्र’ में एक बाल विधवा का चित्रण है जो परिवार के अत्याचार और उपेक्षापूर्ण वातावरण में बिना बोले ही घुट—घुटकर अपना जीवन बिताती है। बिना बोले ही उस विधवा भाभी की करुण आँखें उसके जीवन की सम्पूर्ण वेदना को व्यक्त कर देती हैं। महादेवी ने लिखा है—“उस दिन से वह घर, जिसमें न एक भी झरोखा था न रोशनदान, न एक भी नौकर दिखायी देता था, न अतिथि और न एक भी पशु रहता था, न पक्षी, मेरे लिए एक आकर्षण बनने लगे। उस समाधि—जैसे घर में लोहे के प्राचीर से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका बिना किसी संगी—साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद—प्रमोद के, मानो निरन्तर वृद्धा होने की साधना में लीन थी। वृद्ध एक ही समय भोजन करते थे और वह तो विधवा ठहरी। दूसरे समय भोजन करना ही यह प्रमाणित कर देने के लिए पर्याप्त था कि उसका मन विधवा के संयम—प्रधान जीवन से ऊबकर किसी

विपरीत दिशा में जा रहा है।⁶⁴ ससुर के दुकान पर चले जाने के बाद उस बंद घर के दरवाजे पर परदे के पीछे से बाहर देख भर लेने से आप-पास की स्त्रियाँ ही उसे निर्लज्ज कहती हैं। ससुराल से ननद वापस आती है तो वह विधवा की खूब ठुकाई करती है। इस पर भी विधवा को किसी से कोई शिकायत नहीं थी। पर किस्मत को तो अभी एक और खेल खेलना था। कुछ दिनों बाद वह वृद्ध अपनी वधू की रक्षा का भार संसार को सौंप कर आप इस दुःख भरे संसार से छुट्टी पा गये और उस बाल विधवा को इतने बड़े संसार का सामना करने के लिए अकेला छोड़ गये। महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में पात्र स्वयं कम बोलते हैं। लेखिका स्वयं उनके विषय में अधिक बोलती है। इसका कारण स्पष्ट है कि रेखाचित्रों में संस्मरण के अंश भी विद्यमान हैं, इसलिए महादेवी वर्मा की दृष्टि चरित्रों को चारों ओर से घेरे रहती है। वे अपने पात्रों को करुणा-सहानुभूति की गोद में बिठाकर उनकी रेखाएँ खींचती हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में एक ऐसी स्त्री-छवि उभर कर आती है जो अपने परिवार, समाज और सम्पूर्ण मानवता के लिए संघर्ष करती है। अपने मातृत्व को बचाने के लिए वह किसी परिस्थितियाँ से लड़ने को तैयार है। महादेवी वर्मा ने लिखा है—“स्त्री अपने बालक को हृदय से लगाकर जितनी निर्भर है, उतनी किसी और अवस्था में नहीं। वह अपनी संतान की रक्षा के समय जैसी उग्र चण्डी है वैसी और किसी स्थिति में नहीं। इसी से कदाचित् लोलुप संसार उसे अपने चक्रव्यूह में घेर कर बाणों से छालनी करने के लिए पहले इसी कवच को छीनने का विधान कर देता है। यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सके कि ‘बर्बरो! तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया; पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी’ तो इनकी समस्याएँ तुरन्त सुलझ जावें।”⁶⁵ महादेवी वर्मा का विद्रोही रूप हमें उनके गद्य में देखने को मिलता है। दुख इस बात

का है कि इस ओर ध्यान ही नहीं दिया जा रहा है। स्त्री-विमर्श को साहित्य में स्थान दिलाने वाले लेखक भी महादेवी वर्मा के सृजन पर बात नहीं कर रहे हैं। जबकि महादेवी वर्मा के साहित्य से जो स्त्री-छवि उभरती है उस पर पूरे संयम के साथ गंभीर विमर्श की आवश्यकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. पद्मसिंह चौधरी, महादेवी साहित्य : एक नया दृष्टिकोण, पृ० 209, अपोलो प्रकाशन, जयपुर, 1974
2. डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, हिन्दी गद्य साहित्य का विकास, पृ० 206
3. सं० डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 725, मयूर पेपर बैक्स, नौएडा, 1998
4. माजदा असद, गद्य के विविध रूप, पृ० 12, ग्रन्थ अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
5. सं० धीरेन्द्र वर्मा तथा अन्य, हिन्दी साहित्य कोश, भाग—एक, पृ० 731, ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी वि० सं० 2020
6. माजदा असद, गद्य के विविध रूप, पृ० 12, ग्रन्थ अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
7. डॉ० श्रीमती हर्षनन्दिनी भाटिया, साहित्यकार महादेवी, पृ० 57, ज्ञान प्रकाशन, दिल्ली, 1984
8. डॉ० लक्ष्मणदत्त गौतम, महादेवी वर्मा: कवि और गद्यकार, पृ० 115 काणांक प्रकाशन, दिल्ली, 1972
9. डॉ० श्रीमती हर्षनन्दिनी भाटिया, साहित्यकार महादेवी, पृ० 57 ज्ञान प्रकाशन, दिल्ली, 1984
10. डॉ० राजनाथ शर्मा, भारतीय काव्यशास्त्र, पृ० 206, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1993
11. डॉ० लक्ष्मणदत्त गौतम, महादेवी वर्मा : कवि और गद्यकार, पृ० 119, काणांक प्रकाशन, दिल्ली 1972

12. सूर्यप्रसाद दीक्षित, महादेवी का गद्य, पृ० 19, मैकमिलन कंमनी, दिल्ली 1974
13. वही, पृ० 15
14. सं० डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 725, मयूर पेपर बैक्स, नौएड़ा 1998
15. सं० महेन्द्र, साहित्य-सन्देश (पत्रिका), दिसम्बर 1966, पृ० 216
16. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ० 9, लोकभारती, इलाहाबाद 2003
17. चरनसखी शर्मा, महादेवी वर्मा का संस्मरणात्मक गद्य, प्रस्तावना
18. डॉ० राजनाथ शर्मा, भारतीय काव्यशास्त्र, पृ० 207, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ 1993
19. सं० कमला प्रसाद, आँखन देखी, पृ० 14, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1981
20. हजारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ० 182, राजकमल, दिल्ली 1981
21. सं० राम आनंद, प्रेमचन्द्र रचनावली, खण्ड: 7, पृ० 500 जनवाणी प्रकाशन, दिल्ली
22. वही, पृ० 510-511
23. चरनसखी शर्मा, महादेवी का संस्मरणात्मक गद्य, मुखबन्ध ख
24. अमृतराय, विचारधारा और साहित्य, पृ० 119, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1984
25. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा निबन्ध, पृ० 27, लोकभारती, इलाहाबाद 1962
26. डॉ० श्रीमती हर्षनन्दिनी भाटिया, साहित्यकार महादेवी, पृ० 61, ज्ञान प्रकाशन, दिल्ली 1984
27. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ० 9, लोकभारती, इलाहाबाद 2003
28. डॉ० गुलाबराय, हिन्दी गद्य का विकास और प्रमुख शैलीकार, पृ० 173

29. डॉ० श्रीमती हर्षनन्दिनी भाटिया, साहित्यकार महादेवी, पृ० 60, ज्ञान प्रकाशन दिल्ली 1984
30. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ० 29–30, लोकभारती, इलाहाबाद 2003
31. सं० डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 597, मयूर पेपर बैक्स, नौएड़ा 1998
32. सं० शचीरानी गुर्दू, महादेवी वर्मा: काव्य–कला और जीवन दृष्टि, पृ० 13–14, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली 1957
33. सं० हरि भटनागर, साक्षात्कार (पत्रिका) 2006 पृ० 72
34. सं० इन्द्रनाथ मदान, महादेवी: चिन्तन व कला पृ० 210, राधाकृष्ण, दिल्ली 1965
35. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ० 56, लोकभारती, इलाहाबाद 2003
36. वही, पृ० 27
37. वही, पृ० 27
38. वही, पृ० 29
39. वही, पृ० 30
40. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ० 147, लोकभारती, इलाहाबाद 2001
41. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ० 49, लोकभारती, इलाहाबाद 2003
42. वही, पृ० 49
43. वही, पृ० 49
44. वही, पृ० 49
45. वही, पृ० 50
46. वही, पृ० 50
47. वही, पृ० 61

48. वही, पृ० 62
49. महादेवी वर्मा, स्मृति के रेखाएँ, पृ० 11, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2003
50. वही, पृ० 12
51. वही, पृ० 12
52. रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, भाग—एक, पृ० 113, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद 1999
53. मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की डायरी, पृ० 06, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1964
54. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ० 94 लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2003
55. वही, पृ० 11
56. वही, पृ० 95—96
57. वही, पृ० 101
58. वही, पृ० 85
59. वही, पृ० 88
60. वही, पृ० 51
61. महादेवी वर्मा, स्मृति की रेखाएँ, पृ० 97, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2003
62. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ० 48, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2003
63. वही, पृ० 49
64. वही, पृ० 27
65. वही, पृ० 56

उपसंहार

उपसंहार

स्त्री-विमर्श के सन्दर्भ में महादेवी वर्मा के साहित्य पर विचार पिछले दो दशकों में शुरू हुआ है। उसके पहले तक महादेवी वर्मा को विरह और पीड़ा की छायावादी कवयित्री के रूप में ही देखा जाता रहा। आज भी महादेवी की इस परंपरागत छवि को अस्वीकार करने वाले कम ही हैं। महादेवी की इसी बनी बनाई छवि ने आलोचकों और पाठकों का ध्यान उनके महान गद्य-सृजन की ओर न जाने दिया। इस ओर हिंदी जगत का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय डॉ० मैनेजर पाण्डेय को है। सबसे पहले उन्होंने ही 'शृंखला की कड़ियाँ' में निहित प्रखर स्त्री-चेतना को उद्घाटित किया। उनका यह महत्त्वपूर्ण निबंध उनके आलोचनात्मक लेखों के एक महत्त्वपूर्ण चयन 'अनभै साँचा' में संकलित है।

डॉ० मैनेजर पाण्डेय ने इस निबंध में उदाहरण, तर्क और विश्लेषण के जरिये अकाट्य रूप से सिद्ध किया है कि महादेवी की स्त्री-चेतना उस चेतना के प्रायः समकक्ष है, जिसे आजकल स्त्री-विमर्श की संज्ञा दी जाती है। डॉ० पाण्डेय के इस निबंध ने न केवल महादेवी की एक नयी छवि प्रस्तुत की, बल्कि उनकी रहस्यवादी समझी गयी कविताओं के पुनर्पाठ के भी दरवाजे खोले। इस शोधकार्य के पीछे तात्कालिक प्रेरणा यही थी। महादेवी वर्मा के संपूर्ण गद्य-साहित्य का गंभीर अनुशीलन स्त्री-विमर्श के संदर्भ में करना अब समकालीन शोध और आलोचना का आवश्यक कर्तव्य हो चला है। प्रस्तुत शोधकार्य इसी दिशा में एक छोटी-सी शुरुआत मात्र है।

इस शोधकार्य को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। ये चार अध्याय इस प्रकार हैं। पहला-स्त्री-विमर्श और हिंदी साहित्य। दूसरा महादेवी वर्मा की

साहित्य दृष्टि और स्त्री-विमर्श। तीसरा महादेवी वर्मा के निबंधों में स्त्री-प्रश्न। चौथा महादेवी वर्मा के संस्मरणों और रेखाचित्रों में स्त्री की छवि। इन्हीं अध्यायों में पाये गये निष्कर्षों को संयोजित करना इस 'उपसंहार' का उद्देश्य है।

महादेवी के संपूर्ण गद्य-साहित्य से गुज़रकर यह बात प्रामाणिक रूप से कही जा सकती है कि स्त्री की मुक्ति की चिंता ही गद्यकार महादेवी वर्मा की केन्द्रीय चिंता है। उनका समस्त गद्य लेखन न केवल अपनी अंतर्वस्तु में बल्कि अपनी शैली में भी स्त्री के द्वारा स्त्री की मुक्ति के लिए लिखा गया साहित्य है। महादेवी की गद्य रचनाओं की अंतर्वस्तु सर्वत्र एक ही है। स्त्री शोषण की बहु-आयामी प्रक्रियाओं को उद्घाटित करना जो जितनी सूक्ष्म हैं उतनी ही जटिल हैं। इसी के अनुरूप महादेवी एक ऐसी सहज और स्वच्छ भाषा-शैली ईजाद करती हैं, जहाँ भाषा की उस छल-कपट और बनावट-बुनावट की कोई गुंजाइश नहीं है जो पुरुषवादी लेखन की पहचान है।

पहला अध्याय विषय की पृष्ठभूमि की खोज करता है। इसमें एक ओर तो अंतर्राष्ट्रीय स्त्री-आंदोलन के विकास पर नज़र डाली गयी है तो दूसरी ओर हिंदी साहित्य में स्त्री की छवि, स्त्री-कल्याण की भावना और स्त्रीवादी चेतना के विकास-क्रम को पहचानने का प्रयास किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि स्त्री की मुक्ति की आकांक्षा गार्गी-मैत्रेयी के युग से मीरा और महादेवी तक भारतीय साहित्य के इतिहास में एक अंतर्वर्ती धारा के रूप में मौजूद है। फिर भी स्त्रीवादी चेतना के विकास अंतर्राष्ट्रीय स्त्री आंदोलन की ऐतिहासिक भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। इस पहले अध्याय में स्त्री-चेतना और हिंदी साहित्य में स्त्री-छवि के विकास के बीच के संबंध की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया गया है।

दूसरे अध्याय में स्त्री विमर्श के संदर्भ में महादेवी वर्मा की साहित्य-दृष्टि को समझने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि महादेवी की स्त्री-दृष्टि ने ही उनकी साहित्यिक दृष्टि का निर्माण किया है। यह एक पुरुषवादी साहित्य-संसार में एक स्त्री का हस्तक्षेप है। इसकी सीमाएं हो सकती हैं, लेकिन इसका होना ही महत्वपूर्ण है। इस अध्याय में महादेवी की इसी साहित्यिक दृष्टि को उनकी कविताओं और उनकी गद्य रचनाओं के संदर्भ में विश्लेषित किया गया है। स्वाभाविक रूप से इस अध्याय में 'शृंखला की कड़ियाँ' पर विशेष ध्यान दिया गया है।

तीसरे अध्याय में स्त्री-प्रश्न के संदर्भ में महादेवी के समस्त निबंधों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। यहाँ न केवल 'शृंखला की कड़ियाँ' के निबंधों का, बल्कि महादेवी के सभी उपलब्ध निबंधों का पुनर्पाठ करते हुए उनकी प्रखर स्त्री-चेतना को रेखांकित किया गया है।

चौथा अध्याय महादेवी के संस्मरणों और रेखाचित्रों पर केन्द्रित है। प्रायः आलोचक महादेवी की इन रचनाओं को उनके लालित्य के लिए सराहते आए हैं। प्रायः उनकी चिंताएं इस प्रश्न तक सीमित रही हैं कि इन रचनाओं को संस्मरण विधा के अंतर्गत रखा जाए, अथवा 'रेखाचित्र' समझा जाए। इस अध्याय में एक तो इस अकादमिक बहस की व्यर्थता को रेखांकित करने के लिए संस्मरण और रेखाचित्र का विधागत विश्लेषण करते हुए उनके बीच मौजूद एक समान तत्त्वों के महत्व पर बल दिया गया है। दूसरे सबसे अधिक जोर इस बात पर दिया गया है कि इन रचनाओं को ललित निबंधों की तरह केवल आनंद के लिए पढ़ना इनका कुपाठ करना है। संस्मरण-रेखाचित्र की सारी जीवंतता और सरसता लिए हुए भी ये

रचनाएं लगभग संपूर्णतः एक स्त्री की उस चिंता को दिखाती हैं जो स्त्री-जाति की दशा और दिशा से संबंधित है।

महादेवी के गद्य के इन सभी आयामों का अनुशीलन महादेवी के लेखन में स्त्री-मुक्ति के प्रश्न की केन्द्रीयता को प्रामाणिक रूप से स्थापित करता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ

- ओंकार शरद (सं०) : महादेवी साहित्य, सेतु प्रकाशन, झांसी 1969
- निर्मला जैन (सं०) : महादेवी साहित्य समग्र, भाग-1,2,3 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2000
- महादेवी वर्मा : अतीत के चलचित्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण: 2003
- महादेवी वर्मा : शृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद तृतीय संस्करण: 2001
- महादेवी वर्मा : संकल्पिता, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1987
- महादेवी वर्मा : साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1962
- महादेवी वर्मा : स्मृति की रेखाएँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण: 2003
- महादेवी वर्मा : पथ के साथी, भारतीय भण्डार, इलाहाबाद 1976
- महादेवी वर्मा : मेरा परिवार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1972

सहायक ग्रंथ

- अमृतराय : कलम का सिपाही, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962
- अमृतराय : विचारधारा और साहित्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1984
- अमरेश्वर अवस्थी तथा : आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन,
रामकुमार अवस्थी रिसर्च पब्लिकेशन, 1985
- इंद्रनाथ मदान (सं०) : महादेवी : चिंतन व कला, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1965
- उषा पाण्डेय : मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी-भावना, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली 1959
- एम०एन० श्रीनिवास : आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1975
- ओमप्रकाश ग्रेवाल : साहित्य और विचारधारा, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा) 1941
- कमला प्रसाद (सं०) : आँखन देखी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1981
- कमला प्रसाद (सं०) : परसाई रचनावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तीसरा संस्करण 1998
- कैलाश चन्द्र भाटिया : विधा-विविधा, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ प्रथम संस्करण 1987

- कृष्णा सोबती : मित्रों मरजानी, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली 1979
- गजानन शर्मा : प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद 1971
- गंगाप्रसाद पाण्डेय : महीयसी महादेवी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1969
- चित्रा मुद्गल : आवां, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2001
- जगदीश्वर चतुर्वेदी : स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर एण्ड लि०, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000
- जर्मेन ग्रीयर : विद्रोही स्त्री, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण 2001
- देवदत्त शास्त्री (सं०) : महादेवी वर्मा अभिनन्दन ग्रन्थ, भारती परिषद, प्रयाग, विक्रम संवत् 2021
- देवेन्द्र इक्सर : साहित्य और आधुनिक युगबोध, कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर 1973
- देवराज : साहित्य समीक्षा और संस्कृतिबोध, मैकमिलन कम्पनी, नई दिल्ली, संस्करण: 1977
- द्वारिका प्रसाद सक्सेना : हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 1976
- धीरेन्द्र वर्मा (सं०) : हिन्दी साहित्य बोध, ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी विक्रम संवत् 2020
- नामवर सिंह : छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवीं आवृत्ति 2000

- नामवर सिंह : अलोचक के मुख से, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2005
- नामवर सिंह : बात बात में बात, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006
- नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली चौथी आवृत्ति 1999
- नामवर सिंह : कहानी नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1966
- नगेन्द्र : विचार और अनुभूति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1965
- नगेन्द्र (सं०) : हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, पच्चीसवाँ पुनर्मुद्रित 1998
- नित्यानंद तिवारी : आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1982
- नेमिचन्द्र जैन : बदलते परिप्रेक्ष्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1968
- पंकज चतुर्वेदी : आत्मकथा की संस्कृति, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003
- पद्मसिंह चौधरी : महादेवी साहित्य: एक नया दृष्टिकोण, अपोलो प्रकाशन, जयपुर 1974
- पी० सी० जोशी : परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1987
- प्रभा खेतान : उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2003

- प्रेमचंद : गोदान, सरस्वती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद 1996
- प्रेमचंद : साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1983
- प्रेमचंद : सेवासदन, हिन्दी पॉकेट बुक्स, दिलशाद गार्डन, दिल्ली
- प्रेमशंकर : प्रसाद का काव्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति: 1998
- बच्चन सिंह : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति: 2000
- बच्चन सिंह : हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण: 2001
- भारत यायावर : महावीर प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1995
- मन्नू भण्डारी : आपका बंटी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, अठारहवाँ संस्करण 2000
- मनीषा : हम सभ्य औरतें, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002
- माजदा असद : गद्य के विविध रूप, ग्रन्थ अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1990
- मुक्तिबोध : एक साहित्यिक की डायरी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1964
- मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1971

- मुक्तिबोध : कामायनी: एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति: 2000
- मैनेजर पाण्डेय : साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2000
- मैनेजर पाण्डेय : अनभै साँचा, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002
- राकेश कुमार : नारीवादी विमर्श, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा) 2001
- राजनाथ शर्मा : महादेवी वर्मा और स्मृति की रेखाएँ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा पंचम संस्करण 1972
- राधा कुमार : स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी, नई दिल्ली 2002
- राम आनंद (सं०) : प्रेमचंद रचनावली, खण्ड: सात, जनवाणी, दिल्ली 1996
- रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, चौतीसवाँ संस्करण, विक्रम सम्वत्, 2056
- रामचंद्र शुक्ल : चिंतामणि, भाग-एक, इंडियन प्रेस प्राईवेट लिमिटेड, इलाहाबाद 1999
- रामचंद्र तिवारी (सं०) : निबन्ध निकष, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1997
- रामस्वरूप चतुर्वेदी : समकालीन हिन्दी साहित्य: विधि परिदृश्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1995

- रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास लोकभारती प्रकाशन, बारहवाँ संस्करण 1999
- रामविलास शर्मा : प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति 1998
- रोमिला थापर : भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सत्रहवीं आवृत्ति: 2002
- लक्ष्मणदत्त गौतम : महादेवी वर्मा: कवि और गद्यकार, काणांक प्रकाशन, दिल्ली 1972
- विजय प्रकाश उपाध्याय: महादेवी का गद्य: एक मूल्यांकन, रेणुका, तारकपुर 1988
- विश्वनाथ त्रिपाठी : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, एन. सी. ई. आर. टी., नौवां पुनर्मुद्रण 1998
- विश्वनाथ त्रिपाठी : मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989
- विश्वनाथ त्रिपाठी : देश के इस दौर में, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2000
- विश्वनाथ त्रिपाठी : हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पाँचवीं आवृत्ति 2000
- वेद प्रकाश : नेहरू युग और अकविता, नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली संस्करण: 2004

- शचीरानी गुर्दू (सं०) : महादेवी वर्मा: काव्य-कला और जीवन-दर्शन, आत्माराम एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण 1957
- श्यामाचरण दुबे : मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण: 1969
- सरला महेश्वरी : नारी प्रश्न, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1998
- साधना आर्य (सं०) : नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे, हिन्दी माध्यम कार्योन्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली
- सीमोन द बोउवार : स्त्री: उपेक्षिता (द सेकण्ड सेक्स का हिन्दी अनुवाद), अनु० प्रभा खेता, सरस्वती विहार, दिल्ली 1991
- सुमित्रानंदन पंथ : महादेवी संस्मरण ग्रन्थ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद तथा शान्ति जोशी 1967
- हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति 1999
- हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 1991,1997,1998
- हर्षनंदिनी भाटिया : साहित्यकार महादेवी, ज्ञान प्रकाशन, दिल्ली 1984

पत्र-पत्रिकाएँ

- अमर उजाला (दैनिक पत्र), अलीगढ़, संस्करण, दिसम्बर 12, 1999
- उत्तर प्रदेश (पत्रिका), (सं०) ममता कालिया, स्त्री विशेषांक, मई 2003, लखनऊ ५
- उद्भवना (पत्रिका), (सं०) अजेय कुमार, प्रेमचंद विशेषांक, अंक 64 उद्भावना प्रकाशन शाहदरा, दिल्ली

वसुधा (पत्रिका), (सं०) कमला प्रसाद, विशेषांक 59–60, म०प्र० भोपाल

हंस (पत्रिका), (सं०) राजेन्द्र यादव, जनवरी–फरवरी, 2000 अक्षर प्रकाशन दिल्ली

हंस (पत्रिका), (सं०) राजेन्द्र यादव, मार्च 2001, अक्षर प्रकाशन दिल्ली

अनभै साँचा (पत्रिका), (सं०) द्वारिका प्रसाद चारुमित्र (अप्रैल–जून) 2006, रोहिणी,
दिल्ली